आदिकालीन हिन्दी रासो काव्य परम्परा

में

प्रतिविम्बित भारतीय संस्कृति

(१००० ई० – १४०० ई०)

[इलाहाबाद विश्वविद्यालय की डी० लिट्० उपाधि के लिए प्रस्तुत]

शोध - प्रबन्ध

●

निर्देशक

डॉ० लक्ष्मीसागर वार्ष्णेय

एम० ए०, डी० फिल्०, डी० लिट्०

प्रोफेसर तथा अध्यक्ष

हिन्दी तथा आधुनिक भारतीय भाषा विभाग

इलाहाबाद विश्वविद्यालय, इलाहाबाद

●

अनुसंधित्सु

डॉ० अश्वनी कुमार चतुर्वेदी 'राकेश'

एम० ए० (हिन्दी तथा भाषाविज्ञान), पी-एच० डी०

प्रवक्ता

हिन्दी तथा आधुनिक भारतीय भाषा विभाग

इलाहाबाद विश्वविद्यालय, इलाहाबाद

१९७६

पुरोवाक् एवं प्रणति

प्रस्तुत शोधकार्य, फरवरी,१६७२ई० में आकाशधर्मा गुरुवर डॉ० लक्ष्मीसागर वार्ष्णेय का प्रेरक निर्देशन प्राप्त कर प्रारम्भ किया गया था ।

सामग्री-संकलन के लिए न केवल भारत में ही इतस्तत: भ्रमण करना पड़ा, वरन् शोधित्सु द्वारा मई,'७४ई० में ब्रिटिश म्यूज़ियम लन्दन आदि स्थानों में जाकर विविध पाण्डुलिपियों का परीक्षण भी किया गया, इसके लिए अनुशोधक अन्तर्राष्ट्रीय श्रम-संगठन, जिनेवा का आभारी है, जिसके आमन्त्रण पर, भारत सरकार का प्रतिनिधि बनकर अन्तर्राष्ट्रीय श्रम-सम्मेलन न्यूयार्क में सम्मिलित होते हुए लगभग पन्द्रह देशों की यात्रा के साथ ही अनुसंधान-कार्य हेतु इंगलैण्ड में रहकर पाण्डुलिपियों के निरीक्षण का अवसर मिल सका ।

विश्वविद्यालय अनुदान आयोग, नई दिल्ली के प्रति आभार व्यक्त करना कर्तव्य है, जिसके द्वारा दिसम्बर,'७२ में भारत के समस्त विश्वविद्यालयों से हिन्दी में एकमात्र शोधार्थी को ही उक्त विषय पर शोध के लिए वरिष्ठ अनुसंधानवृत्ति प्रदान की गई थी ।

वह सभी विद्वान जिनकी निर्भ्रान्ति प्रज्ञा और गवेषणा का अनेकान्तिक योगदान, प्रबन्ध के लिए हुआ है--अनुसंधित्सु की एकान्त श्रद्धा के पात्र हैं ।

प्रस्तुतीकरण-पद्धति के लिए `रसानां समूहो रास:` में अभिभूत `रसो वै स:` के प्रति प्रणति-प्रत्यर्पण सहित, भारतीय, संस्कृति-संरूपों के समष्टिगत सर्वेक्षण तथा तत्कालीन सांस्कृतिक द्वन्द्व और सन्तुलन के विकासवादी चिन्तन को आधायिका शक्ति संयोजित की गई है ।

ब्राह्मण, जैन एवं इस्लामिक संस्कृतियों का त्रिकोणात्मक संघर्ष, पारस्परिक आदान-प्रदान, और उनका संगमन-- आलोच्यकालीन रासो काव्यों की मूल चिन्तन धारा है ।

पुनश्च, समस्त आदिकालीन हिन्दी के जैन-अजैन रासो काव्यकृतिकारों का अभिवन्दन करते हुए यथासम्भव मौलिक विचार-सरणि समवेत, शोध-प्रबन्ध को परीक्षणार्थ प्रस्तुत किया जा रहा है, जिसमें समग्रत: संस्कृति-संकुल प्रेरणा-स्रोत ही संग्रथित हैं ।

(अश्वनीकुमार चतुर्वेदी `राकेश`)

अनुसन्धान-अनुक्रमणिका

अनुसन्धान अनुक्रमणिका

विषय	पृष्ठसंख्या
१. पुरोवाक् एवं प्रणति	1-2
२. अनुसन्धान अनुक्रमणिका	3-11
३. प्रेक्षणीय संकेतिका	12-13
४. विषय-प्रवेश तथा शोध-कार्य की मौलिकता	13-42

प्रकाशित एवं अप्रकाशित सम्प्राधिक रासो काव्य; आदिकालीन लगभग पैंतालिस हिन्दी रासो काव्य; रासो काव्य-कृतियों का क्रमिक - विकास; रासो रचनाओं के पांच वर्ग--धार्मिक, आध्यात्मिक, नैतिक, लौकिक प्रेमपरक तथा इतिवृत्तात्मक; रासो काव्य-शैली, स्वरूप, सोपान, सम्प्रदाय, विषय और भाषा आदि दृष्टियों से विभाज्य; रासो काव्यों में प्राणतत्व, रूप तत्व और स्वर तत्व; शोधकार्य के कथ्य और तथ्य का अनुक्रम-- विकासवादी प्रक्रियामूलक प्रस्तुतीकरण; रासोकाव्य-- संस्कृति एवं सभ्यता के ज्ञानकोश; सामन्ती संस्कृति और लोकसंस्कृति के भाण्डागार; संस्कृति का अर्थ; भारतीय संस्कृति का तात्पर्य; भारतीय संस्कृति की सीमाएं; भारतीय संस्कृति के प्रमुख उपादान, तत्कालीन रासो काव्यों में भारतीय संस्कृति के समस्त अवयव; इस्लामिक मान्यताओं की आवृत्ति, जैन दार्शनिक संस्कृति का समावेश; आलोच्यकालीन संस्कृति का साहित्यिक अभिव्यंजन; प्रस्तुत प्रबन्ध की मौलिकता; अद्यावधि सम्पन्न सांस्कृतिक अनुसन्धानों का सर्वेक्षण तथा विषय की नवीनता; प्रबन्ध प्रस्तुतीकरण : विकासवादी सिद्धान्ताधारित; महापंडित राहुल सांकृत्यायन से विचार-वैभिन्य; इस्लामिक मान्यताओं का भारत में

विषय | पृष्ठसंख्या

भारतीयकरण ; जाति, वर्ण और धर्माधारित संघर्षों का अभाव, रासो काव्यों में प्रदर्शित पट्ट-महिषी- प्रशासन; सन्दर्भ-सरणि ।

५. प्रथम अध्याय -- 43-69

आदिकालीन हिन्दी रासो काव्य परम्परा : प्रकृत उद्भूति, प्रवृत्ति, व्याप्ति और सीमाएं

एक हजार रासो ग्रन्थ तथा उनकी परम्परा; रासो शब्द-व्युत्पत्ति,उत्पत्ति एवं विकास; रासो अथवा रासक की विकसनशीलता; रासो काव्य का विभिन्न कालखण्डों में अर्थ, उद्देश्य, रूप, स्रोत एवं विषय-विन्यास; रासो-शैली-विकास के पांच सोपान; प्रागैतिहासिककालीन नृत्य और रासो; रासोकाव्यों का रूप-गठन, रासो काव्य-रूप : समस्त काव्य रूपों का संगम; बंध की दृष्टि से रासो काव्यों के दो रूप --कथानक शृंखलाबद्ध अथवा प्रबंध श्रेणी तथा अबंध श्रेणी; प्रबन्धात्मक रासोकाव्य-- विविध छन्द बहुल, गीतात्मक और मिश्रित छन्दगीत युक्त; अबन्धात्मक रासो काव्य--छन्दात्मक तथा गीतात्मक; रासो काव्यरूप का काव्यशास्त्रीय वर्गीकरण, रासो काव्यों के विविध वर्गीकरण--कलात्मक,प्रवृत्तिमूलक, विषयपरक, धर्माधारित एवं संस्कृतिनिष्ठ आदि; सांस्कृतिक परिदृश्य और रासो काव्य; सन्दर्भ-सरणि ।

६. द्वितीय अध्याय -- 70-119

साहित्येतर स्रोताधारित तत्कालीन भारत : परम्परामूलक संस्कृति-निकष

आलोच्यकालीन भारत का संस्कृति-निकष-- अभिलेख,स्मारक, मुद्राएं, ~~धर्म तथा दर्शन~~, धर्म तथा दर्शन ग्रन्थ, देशी-विदेशी इतिहास-ग्रन्थ,ललित कलाएं एवं अन्यदेशीय सम्पर्क सूत्र; तत्कालीन सांस्कृतिक पीठिका के दो काल-- राजपूतयुग (१०००ई०-१२०६ई०),मुस्लिम युग(१२०६ई०-१४१५ई०); सांस्कृतिक परम्परावलम्बित हिन्दी प्रदेश के चार खण्ड; मध्यदेशीय संस्कृति के संरूप-- आर्य संस्कृति, जैन संस्कृति,बौद्ध संस्कृति,इस्लामिक संस्कृति तथा

अन्यदेशीय संस्कृति; प्रकारान्तर से सामन्ती संस्कृति और जन संस्कृति; राष्ट्रनीति और राजदर्शन-- राजपूत राजदर्शन तथा मुस्लिम राजदर्शन; समाजदर्शन, मुख्यतः तीन प्रकार की समाज-संरचनाएं-- वर्णाश्रमवादी समाज, वर्ण-जाति विरोधी समाज और मुस्लिम समाज; जीवन दर्शन-- सामाजिक विघटन और विभाजन का काल, विभिन्न जातियां--उप-जातियां, आर्थिक परिदृश्य, अर्थतंत्र, औद्योगिक संस्थान, राष्ट्रीय एवं अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार; तत्कालीन वैभव एवं वैषम्य; कृषियंत्र,कृषि उपज, मुद्राएं एवं मूल्य; कलात्मक निदर्शन, कलात्मक साधना में भारत की आत्मा और संस्कृति, कलात्मक आदान-प्रदान; विविध कलाएं; स्थानीयता, क्षेत्रीयता और प्रान्तीयता के परिधान में राष्ट्रीयता; लम्बन में तत्कालीन दो सचित्र कल्पसूत्र; विविध धर्म,मत,सम्प्रदाय, लोकमान्यताएं, साधनाएं, पूजापद्धतियां एवं आचार-संहिताएं; सन्दर्भ-सरणि ।

७. तृतीय अध्याय -- 120-161

आदिकालीन हिन्दी रासो काव्य परम्परा में प्रतिबिम्बित भारतीय समाज: समाज-संगठन, वर्ण, जाति,कुलकर्म और आश्रम

भारतीय समाज में वर्ण,जाति और संस्कृति का सम्बन्ध; जैन धर्म तथा वर्ण-जाति; इस्लाम धर्म तथा जातियां-- उपजातियां;सामाजिक संरचना; रासो काव्यों में चार वर्ण; षट्भेष तथा दरस-षट्; परम्परागत वर्णचतुष्टय तथा दरस-षट्; पृथ्वीराज रासो में १८ वर्ण, व्यवसायिक चतुर्वर्ण; नए मुस्लिम; जातियों की आकृतिमूलकता;जातियों के गुण-कर्म; ब्राह्मण, पुरोहित और ज्योतिषी ; क्षत्रियों की जाति- उत्पत्ति, वंशावली, सामाजिक प्रतिष्ठा, क्षत्र-क्षात्रियत्व, आकृति-प्रकृति, कर्तव्य-चरित्र, शौर्य-शिक्षा, स्वामिभक्ति और शरणागत-संरक्षा; वणिक और उनका मुख्य धर्म, चरित्र, आकृति-प्रकृति,दया-दान-शीलता; शूद्र, नाई,नट, नर्तक, माली,सुनार; अहीर,कायस्थ,दसौंधी, जाट,भाट,चारण, विच्छिन्न आश्रम-व्यवस्था; सन्दर्भ-सरणि ।

विषय | पृष्ठसंख्या

८. चतुर्थ अध्याय -- 162-198

आदिकालीन हिन्दी रासो काव्य-परम्परा में प्रतिबिम्बित पारिवारिक जीवन :

परिवार, संस्कार, त्योहार, अभिवादन व तथा सत्कार

संयुक्त परिवार--व्यष्टि और समष्टि का समतावादी समन्वय; पाश्चात्य एवं भारतीय दृष्टिपथ ; परिवार -- व्यक्ति की शारीरिक, मनोवैज्ञानिक तथा सामाजिक शक्ति का आधार; रासो काव्यों में वर्णित परिवार और पारिवारिक सदस्य; मानव जीवन चक्र और षोडश संस्कार, संस्कारों की संख्या; तत्कालीन भारत के प्रमुख चार संस्कार--जातिकर्म, नामकरण, विवाह एवं अन्त्येष्टि; रासो काव्यों में शुद्धि-कर्म, जात कर्म, मुख-दर्शन, नांदी-श्राद्ध, पुत्र-जन्म पर बधाई, जन्म मुहूर्त, नामकरण, स्वयंवर प्रथा, कन्या हरण-वरण प्रथा, वैवाहिक मांगलिक कार्य, दहेज प्रथा, पतिधर्म शिक्षा, गौना एवं अन्य वैवाहिक कार्यकलाप; बहुपत्नी प्रथा, अन्त्येष्टि क्रिया, षोडशदान; सती-प्रथा, विभिन्न त्यौहार और उत्सव; अभिवादन एवं आशीर्वाद प्रणालियां; आतिथ्य कर्म; सन्दर्भ-सरणि ।

९. पंचम अध्याय -- 199-23

आदिकालीन हिन्दी रासो काव्यों में वर्णित सामान्य जन-जीवन : बसति, भोजन-पेय, परिधान, आभूषण, शृंगार, मनोविनोद और वाहन

भारतीय जन-जीवन की अनिवार्य आवश्यकताएं; अभिरुचि; पुरुषार्थ चतुष्टय; आवासीय व्यवस्था; भोजन-पेय, सामान्य एवं विशेष भोज्य-पदार्थ, भोजन-विधि, भोजन-स्थल, भोजन निर्माण, दैनिक भोजन एवं विशेष भोज, ओंकार मन्त्र के साथ भोजनारम्भ; भोजन करते समय पशु-पक्षी; बच्चों का भोजन, राजकुमारियों का भोजन, भोज्य पदार्थ, भोजनोपरान्त कपूर मिश्रित पान, सुरापान से घृणा, निम्नवर्ग में मदिरापान, सुगन्धित वस्तुएं; वस्त्र-विन्यास, आभूषण, शृंगार-सज्जा, पुरुष-परिधान, सोलह शृंगार, निर्धन वर्ग के आभूषण, पुरुष वर्ग के आभूषण; कलात्मक

विषय | पृष्ठसंख्या

विनोद तथा मनोरंजन, शौर्य-प्रदर्शन-प्रतियोगिताएं; विवाद-वाद, वेश्या-नृत्य, नाटक-संगीत समारोह, पशु-पक्षी युद्ध, बालकों के विविध खेल; महिलाओं के विनोद; यातायात, वाहन, सन्दर्भ-सरणि ।

१०. षष्ठ अध्याय -- 239-26

आदिकालीन हिन्दी रासो काव्य परम्परा में प्रतिबिम्बित आर्थिक जीवन : अर्थतंत्र, कृषि-उद्योग, मुद्रा-मूल्य, आयात-निर्यात, आर्थिक-वर्ग और राजकोष

भारतीय अर्थतंत्र; वाणिज्य एवं व्यवसायमूलक प्रवृत्तियां; आलोच्यकालीन आर्थिक स्थिति; वाणिज्य, व्यवसाय, कृषि, उद्योग, खनिज पदार्थ, मुद्राएं, मूल्य, क्रय-विक्रय, आयात-निर्यात, यातायात, जन-धन, आय-व्यय, आर्थिक वर्ग, विविध जीविका-स्रोत, सामान्य आर्थिक जीवन, भिक्षावृत्ति, ग्रामीण अर्थ तंत्र का आधार कृषि, कृषि - यंत्र; कुटीर-उद्योग, वस्त्र-उद्योग, स्वर्ण-उद्योग, वेश्यावृत्ति भी आय का स्रोत : नगरसेठ और उनके निवास-स्थल; हाट-वर्णन; व्यापारिक केन्द्र नगर; सेवावृत्ति; मुद्राएं- दीनार (हेम), मोहर, हून, रुपया (रूप), दाम, कौड़ी; वस्तु-विनिमय; व्यवसायिक जातियां; कृषि-उत्पादन; विशेष वर्ग-- बुद्धिजीवी वर्ग, श्रमजीवी वर्ग, मनोरंजक वर्ग, तथा तिरस्कृत वर्ग; राजकोष तथा विभिन्न कर; राजकीय धन का आय-व्यय; सन्दर्भ-सरणि ।

११. सप्तम अध्याय -- 261-311

आदिकालीन हिन्दी रासो काव्यों में अंकित राजनीतिक पर्यावरण और राजनय

भारतवर्ष में राजशास्त्र और राजधर्म की विराट् परम्परा; भारतीय राजतंत्र-- जनतंत्र और नृप तंत्र का समन्वय; पुरुषार्थ प्रधान हिन्दू राजतंत्र तथा असवियत प्रधान, मुस्लिम राजतंत्र का मिलन-बिन्दु; राजा का रूप, राजा-प्रजा-संबंध; प्रजा वर्ग का राजा पर अंकुश; प्रजाजन राजनीतिक चेतना-सम्पन्न;

विषय | पृष्ठसंख्या

तत्कालीन प्रमुख राज्य; राजा और सुल्तानों के लिए प्रयुक्त संज्ञाएं; राजा के कर्तव्य और अधिकार; रानियों का प्रशासन में हस्तक्षेप; राजपुरोहित, राजगुरु, प्रधान, राजसभा, सामन्त, सूर, भूप, गुणीजन, दूत, दूती, भृत्य, शहजादे, वजीर, दीवान, भण्डारी, सेनापति, प्रतिहार, नकीब, बसीठी, खवास, राजकवि, बन्दीजन; युद्धप्रियता; स्वामिभक्ति; युद्धों के कारण; युद्धों के परिणाम; रणभेरी और रसकेलि; सैन्य शक्ति; सामन्त शक्ति; 'खान' और 'मोरी' की लघु सेनाएं; चतुरंगिणी सेना; सेना के छः अंग; सैन्य पताकाएं; रणवाद्य, रक्षा-साज; सेनाओं की व्यूह-रचना; अस्त्र-शस्त्र; राजाओं की रणक्षेत्र में उपस्थिति; शत्रुओं एवं अपराधियों को कठोर दण्ड; सामन्तों की जागीरें और उपाधियां; सामन्त-विद्रोह; सामन्तों एवं राजाओं का पारस्परिक विद्वेष; घोड़ा रखवा, वीरों का सम्मान; धर्मशास्त्र और धर्मद्वार; युद्धक्षेत्र में रनिवास; जौहर अथवा मरण का खेल; विविध वेशधारी गुप्तचर; सन्दर्भ-सरणि ।

312-369

१२. अष्टम अध्याय --

आदिकालीन हिन्दी रासो काव्य-परम्परा में चित्रित धार्मिक परिवेश, दर्शन तथा आचारनिष्ठा :

धर्म, धर्म के तत्व; रासो काव्यों का धार्मिक परिपार्श्व; जैन धर्माश्रित चौंतीस रासो काव्य; अजैन रासो रचनाओं में आर्य धर्म, जैन धर्म, बौद्ध धर्म, इस्लाम धर्म; अनेक सम्प्रदाय; धार्मिक कृत्य; उपास्य देवी-देवता; साधना-पद्धतियां; धार्मिक विश्वास, धार्मिक मान्यताएं; विभिन्न धर्मों की पारस्परिक सहिष्णुता; हिन्दू-मुसलमानों का एक ईश्वर; राजनीतिक सत्ता लोलुपता के कारण, धर्म युद्ध एवं धार्मिक संघर्ष; यत्किंचित् हिन्दू-मुसलमान तथा वैदिक-बौद्ध-जैन वैमनस्य; भगवान के दस अवतार; बहुदेववाद की प्रवृत्ति; तीर्थयात्राएं; तीर्थस्थल; तीर्थों में सम्पादित कृत्य; भक्ति के विविध रूप; विविध दान, षोडशदान, यज्ञ, तपश्चर्या, अड़सठ तीर्थ,

विषय | पृष्ठसंख्या

समाधि, योग, मुद्रा, रासोग्रन्थ पढ़ने-सुनने का माहात्म्य; अजपा जाप, ईश्वर और सृष्टि सम्बन्धी विचार; अभिशाप एवं वरदान; स्वप्न, बलि; मंत्र-शक्ति और तंत्र-क्रियाएं; मंत्र-युद्ध; शकुन-अपशकुन; मुहूर्त-लग्न; जीव, जगत्, माया, मोक्ष; जैन रासो काव्यों में जैन दार्शनिक संस्कृति; जैन जीवन दर्शन, संयमश्री, आत्मविनय, चित्तशुद्धि; रागरहित तपस्या; आत्मा के उत्क्रान्ति और मोक्ष के १४ सोपान ; ६ तत्वों का सम्यक्त्व, जैन धर्म की मूल मान्यताएं; सन्दर्भ-सरणि ।

१३. नवम अध्याय -- | 370-405

आदिकालीन हिन्दी रासो काव्यों में साहित्य, कला और विज्ञान की अभिव्यक्ति

साहित्य का अभिप्राय-- भारतीय वाङ्मय; वेद, पुराण, रामायण, महाभारत, काव्यशास्त्र, नाट्यशास्त्र, पिंगल, षडंग, चौदह विद्याएं तथा जैन धर्मशास्त्रादि की अभिव्यक्ति ; परम्परागत चौंसठ कलाओं का अभिनिवेश; ललित कलाओं-- वास्तु, मूर्ति, चित्र, संगीत, नृत्य, नाटक आदि का समायोजन ; वैज्ञानिक परिवेश -- ज्योतिर्विज्ञान, जीव विज्ञान, वनस्पति विज्ञान, ऋतु विज्ञान, धातुविज्ञान, भूविज्ञान, कृषिविज्ञान, आयुर्वेद विज्ञान, भौतिक विज्ञान, रसायन विज्ञान, गणित तथा भाषा विज्ञान का चौतन ; सन्दर्भ-सरणि ।

१४. दशम अध्याय -- | 406-419

आदिकालीन हिन्दी रासो काव्यों में निदर्शित सांस्कृतिक द्वन्द्व और समन्वय

साहित्य की विकास-प्रक्रिया; सांस्कृतिक परिपार्श्व में साहित्य की व्याख्या; आलोच्यकालीन रासो साहित्य में सांस्कृतिक द्वन्द्व और समन्वय; भारतीय और इस्लामिक संस्कृतियों का विविध क्षेत्रों में आदान-प्रदान; भारत में इस्लाम का भारतीयकरण; तत्कालीन सामन्ती संस्कृति और

विषय | पृष्ठसंख्या

सुलतानी संस्कृति की समरूपता; अल्लाह और राम का एकत्व; इतिवृत्तात्मक, पुरातात्त्विक, अभिलेखीय एवं साहित्यिक साक्ष्यों का निष्कर्ष; सांस्कृतिक सामंजस्य का स्वरघोष; सन्दर्भ-सरणि ।

१५. अनुवाक् एवं उपसंहार 420-431

१६. परिशिष्ट -- 432-449

प्रथम परिशिष्ट -- संस्कृति सम्बन्धी सहायक ग्रन्थ

द्वितीय परिशिष्ट-- आदिकालीन हिन्दी रासो साहित्य ग्रन्थ

तृतीय परिशिष्ट -- हिन्दी साहित्येतिहास सन्दर्भ ग्रन्थ

चतुर्थ परिशिष्ट -- उपलब्ध सांस्कृतिक आधार ग्रन्थ

पंचम परिशिष्ट -- पत्र-पत्रिका, पाण्डुलिपियां तथा अन्य सहायक ग्रंथ

षष्ठ परिशिष्ट -- आदिकालीन हिन्दी रासो साहित्य भण्डार एवं पुरातत्व संस्थान ।

-o-

प्रयुक्त- संकेतिका

अनु०	-- अनुवादक, अनुवादकर्त्री
उ०प्र०	-- उदयपुर प्रकाशन
क०मो०	-- कविराव मोहन सिंह
का०प्र०	-- काशी प्रकाशन
खं०	-- खण्ड
छं०	-- छन्द
डॉ०	-- डॉक्टर
तृ०सं०	-- तृतीय संस्करण
द्वि०सं०	-- द्वितीय संस्करण
ना०प्र०स०	-- नागरी प्रचारिणी सभा
प०रा०	-- परमाल रासो
पृ०	-- पृष्ठ
पृ०रा०	-- पृथ्वीराज रासो
पृ०रासउ	-- पृथ्वीराज रासउ
प्र०	-- प्रकाशन
प्र०सं०	-- प्रथम संस्करण
प्रा०भा०सा०	-- प्राचीन भारतीय साहित्य
प्रा०लि०	-- प्राइवेट लिमिटेड
भा०वि०शो०प्र०	-- भारतीय विद्या शोध प्रतिष्ठान
म०म०	-- महामहोपाध्याय
मा०प्र०गु०	-- माताप्रसाद गुप्त
ले०	-- लेखक
वि०वि०प्र०	-- विश्वविद्यालय प्रकाशन
सं०	-- सम्पादक
सा०सं०	-- साहित्य संस्थान
हि०सा०	-- हिन्दी साहित्य
एडी०	-- एडीटर
मोह०	-- मोहम्मद
प्रो०	-- प्रोफेसर

आदिकालीन हिन्दी रासो काव्य परम्परा में प्रतिबिम्बित भारतीय संस्कृति

(१०००ई० - १४००ई०)

विषय-प्रवेश तथा शोधकार्य की मौलिकता

विषय-प्रवेश तथा शोधकार्य की मौलिकता

(विषय- विवरणिका)

प्रकाशित एवं अप्रकाशित सहस्त्राधिक रासो काव्य; आदिकालीन लगभग पैंतालीस हिन्दी रासो काव्य, रासो काव्यकृतियों का क्रमिक विकास-- रिपुदारण-रास(संस्कृत, संवत् ९६२), मुकुटसप्तमी रास, माणिक्यप्रस्तारिका रास, अम्बिकादेवीरास, तथा अन्तरंग रास(दसवीं शती), उपदेशरसायनरास (उपलब्ध प्राचीनतम रासो काव्य), सनेह-रासय (भाषा काव्य,१२ वीं शती), उन्नीसवीं शताब्दी तक सातत्य; रासो रचनाओं के पांच वर्ग-- धार्मिक, आध्यात्मिक, नैतिक, लौकिक प्रेमपरक तथा ऐतिवृत्तात्मक; रासोकाव्य-शैली, स्वरूप, सोपान, सम्प्रदाय, विषय और भाषा आदि दृष्टियों से विभाज्य; रासो काव्यों में प्राणतत्व, रूपतत्व और स्वर तत्व; शोधकार्य के कथ्य और तथ्य का अनुक्रम-- विकासवादी प्रक्रिया मूलक प्रस्तुतीकरण; रासोकाव्य-- संस्कृति एवं सभ्यता के ज्ञानकोश; सामन्ती संस्कृति और लोक संस्कृति के भाण्डागार; संस्कृति का अर्थ; भारतीय संस्कृति का तात्पर्य; भारतीय संस्कृति की सीमाएं; भारतीय संस्कृति के प्रमुख उपादान, तत्कालीन रासो काव्यों में भारतीय संस्कृति के समस्त अवयव; इस्लामिक मान्यताओं की आवृत्ति, जैन दार्शनिक संस्कृति का समावेश; आलोच्यकालीन संस्कृति का साहित्यिक अभिव्यंजन; प्रस्तुत प्रबन्ध की मौलिकता; अद्यावधि सम्पन्न सांस्कृतिक अनुसन्धानों का सर्वेक्षण तथा विषय की नवीनता; प्रबन्ध-प्रस्तुतीकरण : विकासवादी सिद्धान्ताधारित; महापंडित राहुल सांकृत्यायन से विचार-वैभिन्य; इस्लामिक मान्यताओं का भारत में भारतीयकरण; जाति, वर्ण और धर्माधारित संघर्षों का अभाव, रासो काव्यों में प्रदर्शित पट्ट-महिषी-प्रशासन; सन्दर्भ-सरणि ।

विषय-प्रवेश तथा शोधकार्य की मौलिकता

अद्यावधि उपलब्ध रासो ग्रन्थों की संख्या सहस्राधिक है[१] और इनमें आदिकालीन हिन्दी साहित्य (१०००ई० से १४००ई०तक) के अन्तराल में लगभग पैंतालीस रास-काव्य संग्रथित किए गए हैं[२]। विवेच्य साहित्य का बहुलांश प्रकाशित है, किन्तु अप्रकाशित सामग्री भी कम नहीं, जो कि अभी तक ज्ञानभण्डार जैसलमेर[३], अभय जैन ग्रन्थालय, बीकानेर[४] आदि में ही द्रष्टव्य है[५]।

विक्रम सम्वत् ९६२ में रचित रिपुदारण रास ही संस्कृत में प्रथम और अन्तिम रास-शैली की कृति है[६]। दसवीं शती की ही केवल चार और रास-रचनाओं का नामोल्लेख मात्र मिलता है[७] -- मुकुट सप्तमी रास, माणिक्य प्रस्तारिका रास, अंबिका देवी रास और अन्तरंग रास। वस्तुत: भाषा - काव्यान्तर्गत रासो काव्य-परम्परा का प्रारम्भ बारहवीं शती से और मुसलमान लेखक अब्दुल रहमान की कृति संदेश-रासक (सनेह- रासय) से माना जा सकता है। यद्यपि राहुल सांकृत्यायन ने इसे १०१० ई० की रचना मानकर, हिन्दी काव्य-धारा में समाविष्ट किया है[८] तथापि मुनिजिनविजय और डॉ० हजारीप्रसाद द्विवेदी[९] की सम्मति ही, ऐतिहासिक तथ्यों के आधार पर अधिक समीचीन प्रतीत होती है कि संदेश रासक मुहम्मदगोरी के आक्रमण के पहले अथवा ११९२ ई० के पूर्व ही लिपिबद्ध हुआ[१०]। संदेश-रासक के साथ ही अनिर्णीत

कालावधि में प्रणीत जिनदत्त सूरिकृत `उपदेश रसायन रास` को अनुसंधेतव्य एवं उपलब्ध रचनाओं में प्राचीनतम निरूपित किया जा सकता है[११]। जैन - धर्मावलम्बित यह काव्य-ग्रन्थ, गायकवाड़ ओरिएण्टल सीरीज़ के अन्तर्गत अपभ्रंश काव्यत्रयी में प्रकाशित है[१२] और राहुल सांकृत्यायन ने हिन्दी काव्य-धारा में इसका रचनाकाल १०७५ई० से ११५४ई० के बीच निर्धारित किया है[१३] कृतिकार के द्वारा इसे `रसायन` नाम से अभिहित किया गया है[१४], परन्तु टीकाकार जिनपाल उपाध्याय ने इसे `रासक` माना है[१५]। इसी शताब्दी के अनेक रास-काव्यों की चर्चा[१६] जैन-ग्रन्थों में की गई है, यथा-- दण्डरास, लउडुरास और तालारासु। इतिवृत्तात्मक विवरण प्रस्तुत करने के पूर्व यह कथन अनिवार्य है कि ग्यारहवीं- बारहवीं शती तक रासो-काव्य केवल विशृंखलित रूप में ही प्राप्य हैं[१७] किन्तु तदुपरान्त समस्त उत्तर भारत में रास-ग्रन्थ अपनी प्रगति और विकास के विविध सोपानों को पार कर उन्नीसवीं शताब्दी तक सातत्य के साथ मिलते हैं[१८]। अनुसंधित्सु-अभीष्ट यहाँ रासो या रासक के विकास-क्रम का निदर्शन नहीं, मन्तव्य महज़ इतना ही है कि किस प्रकार एक सुदीर्घ रासो काव्य-परम्परा, सहस्राधिक काव्य-ग्रन्थ संजोकर अपने में भारतीय संस्कृति के अनेकश: उत्स आत्मसात् किए है। जनजीवन का उच्छ्वास, शाश्वत मूल्यों की चरम-चिति, किंबहुना समग्र भारतीय जीवन का प्रतिबिम्ब इसके आभ्यन्तर में अनायास निरखा जा सकता है। अस्तु, निर्दिष्ट कालावधि में निविष्ट रासो-काव्यों का रचनाकाल सहित विवरण, तत्पश्चात् इनमें भारतीय संस्कृति का परीक्षण-निरीक्षण और साहित्यिक विकासवादी सिद्धान्तों की आधार-पीठिका पर मौलिक मान्यताओं की निष्पत्ति[१९]-- प्रस्तुत शोध-प्रबन्ध में निहित है। समसामयिक साहित्य तथा साहित्येतर स्रोतों के आधार पर संस्कृति का गवेषणात्मक विवेचन भी विषयान्तर नहीं। यत्किंचित् यथास्थान सांस्कृतिक उन्मेष एवं रास-काव्य की उद्भूति और व्याप्ति पर विहंगम दृष्टि-निक्षेप अन्यथा नहीं, आवश्यक है।

आदिकालीन हिन्दी रासो काव्य परम्परा की परिधि में विभिन्न स्रोतों की समीक्षा के आधार पर, कालक्रमानुसार विवरणिका इस प्रकार है : संदेश-रासक तथा उपदेश रसायन रास(११ वीं-१२ वीं शती) भरतेश्वर बाहुबलिघोर रास(११६९ई०) भरतेश्वर बाहुबलि रास(११८४ई०), बुद्धिरास (११८४ई०), जीवदयारास (१२००ई०), चन्दनबाला रास(१२००ई०) पृथ्वीराज रासो (लगभग १२००ई०), जम्बूस्वामीरास (१२०९ई०),स्थूलिभद्र-रास(१२०९ई०), रेवंतगिरि रास(१२३१ई०), आबू रास (१२३२ई०), नेमिनाथ रास (१२३३ ई०), महावीर रास (१२५०ई०), शान्तिनाथ रास(१२०१ई०), शान्तिनाथ देवरास (१२५५ई० , गयसुकुमाल रास(१२६८ई०), के सप्तक्षेत्री-रास(१२७०ई०) , सालिभद्ररास (१२७३ई०), जिनेश्वर सूरि विवाह वर्णन रास(१२७४ई०), बारव्रत रास (१२८१ई०), वीस विरह मानरास (१३११ई०), श्रावकविधिरास(१३१४ई०), पेथडरास(१३१४ई०),कच्छूलिरास (१३०६ई०), जिनसूरिवर्णन रास (१३१३ई०), जिनकुशलसूरि पट्टाभिषेक रास (१३२०ई०), मयणरेहारास (१३२०ई०), रत्नशेखर या चतुःपर्वीरास (१३४३ई०), जिनपद्मसूरि पट्टाभिषेक रास (१३३३ ई०), पांचपाण्डवचरितरास (१३५३ई०), गौतम स्वामी रास(१३५५ई०), त्रिविक्रमरास (१३५८ई०), श्री जिनोदयसूरि पट्टाभिषेक रास (१३५८ई०), शालिभद्र रास (१३६८ई०), हमीर रासो[२०] (१३६३ई०) तथा बीसलदेव रास (१४ वीं शती उत्तरार्द्ध) । इन रास-ग्रन्थों के अतिरिक्त विजयपाल रासो, खुमाण रासो, परमाल रासो, मुंजरासो तथा बुद्धिरासो को भी आदिकालीन रासो-काव्य के रूप में हिन्दी साहित्येतिहास-कारों ने प्रस्तुत किया है,[२१] किन्तु इनका रचनाकाल अभी तक संदिग्ध ही है।[२२] गौतमस्वामी जीरो रास (दो पाण्डुलिपियां), वृद्ध गौतम रास (दो पाण्डु-लिपियां) तथा गौतमरास (६ पाण्डुलिपियां) आदि कतिपय रास-ग्रन्थ शोधित्सु को-- ब्रिटिश म्यूजियम लन्दन,पाण्डुलिपि विभाग, हिन्दी साहित्य - सम्मेलन, प्रयाग और एशियाटिक सोसायटी, बंगाल आदि स्थानों में मिले।[२३]

उल्लिखित आदिकालीन हिन्दी रासो काव्य-विवरणिका से स्वत: इंगित है कि इनका कथानक-- धार्मिक, आध्यात्मिक, नैतिक, लौकिक-प्रेम- व्यवहारिकतापूर्ण, पौराणिक एवं ऐतिहासिक आधारों पर संयोजित है[२४]। और इन्हें पांच वर्गों-- रोमांचक, ऐतिहासिक, धार्मिक, पौराणिक तथा लौकिक में वर्गीकृत किया जा सकता है[२५], यों इन्हें शैली, स्वरूप, सोपान सम्प्रदाय, विषय और भाषा आदि दृष्टियों से भी धारा-बद्ध किया जा सकता है[२६]।

प्रस्तुत प्रबन्ध के अन्तर्गत प्राणतत्व, रूप-तत्व तथा स्वर-तत्व की व्यंजनात्मक अभिव्यक्ति के रूप में क्रमश: भारतीय वाङ्मय का संस्कृति - निकष और रासोकाव्य-पीठिका, रासो-काव्यों में सांस्कृतिक अभिव्यंजन तथा सांस्कृतिक समन्वय-सन्धि अथवा युगबोध को अभिहित करने का प्रयास है[२७]।

शोध कार्य के कथ्य और तथ्य का अनुक्रम, दस अध्यायों में रखने का परिप्रेक्ष्य विकासवादी प्रक्रियामूलक है, और इसके लिए स्पेंसर, स्पेंग्लर, टायनबी, डार्विन, बर्गसां, पी० सोरोकिन, मार्क्स आदि के विकासवादी सिद्धान्तों का परिपार्श्व ग्रहण करते हुए, द्विधा संस्कृतियों-- भारतीय एवं इस्लामिक के सामंजस्यकाल को, अनेकविध द्वन्द्वों के उपरान्त एक ही सन्तुलन बिन्दु पर अधिष्ठित किया गया है[२८]।

प्रबन्ध के प्रथम अध्याय में, नैसर्गिक सर्जन-शक्ति की विश्लेषणपरक भाव-भूमि है, जिसमें आदिकालीन रास-काव्यों की प्रकृत उद्भूति, कृतिकारों की स्वत: संस्कृत प्रेरणा और सर्जन-क्षमता, व्यष्टि-निष्ठ विन्यास, रासो-काव्य-परम्परा की व्याप्ति और सीमाएं तथा रास-काव्यों का सांस्कृतिक उन्मेष प्रस्तुत किया गया है। द्वितीय अध्याय में परम्परामूलक संस्कृति-निकष पर तत्कालीन भारत का चित्रण साहित्येतर स्रोतों के आधार पर किया गया है। तत्पश्चात् सात अध्यायों में वातावरणजन्य तत्कालीन युगचेतना और सांस्कृतिक अभिव्यंजन, समस्त आदिकालीन हिन्दी रास-काव्यों में निदर्शित है। इन अध्यायों में समस्त आलोच्यकालीन रासो काव्यों में अन्तर्भुक्त तथ्यात्मक सामग्री की विश्लेषणात्मक व्यवस्था है।

युग-चेतना की गति-यति का नियामन संस्कृति के शाश्वत उपादान करते हैं । परम्परा-विहित मानदण्डों पर तत्कालीन पार्थिव परिस्थितियों और सतत् विकासशील प्रवृत्तियों का परिवेष्टन अमिट प्रभाव डालता है। व्यष्टि-समष्टि, परिवार-समाज, वाणिज्य-व्यवसाय, कला-विज्ञान, परिवर्तन-समन्वय, धर्म-राजनीति तथा मानवीय आचार-विचार -- सभी कुछ अतीत और वर्तमान की सम्मिलन-भूमि पर साहित्यिक अभिव्यक्ति पाते हैं और इन्हीं का प्रतिबिम्बन तृतीय अध्याय से लेकर नवम अध्याय तक अभ्यंकित है । द्वन्द्वात्मक क्रिया-प्रतिक्रिया का निरूपण दशम अध्याय में किया गया है, जिसमें -- सांस्कृतिक द्वन्द्व, सामाजिक द्वन्द्व, राजनीतिक द्वन्द्व के साथ ही रासो-काव्य-कृतिकारों के व्यक्तित्व-कृतित्व एवं सांस्कृतिक अहं का द्वन्द्व स्पष्टतः परिलक्षित है । साथ ही द्विधा संस्कृतियों की संतुलन सन्धि, भारतीय संस्कृति की आदिकालीन हिन्दी रास-काव्यों में समन्वयात्मक स्वर, इस्लामिक आदान-प्रदान एवं सह-अस्तित्व की मूल चिन्तन-धारा का समावेश करता है । एतद्विध विकास के पांच सोपान --उद्भूति, परम्परा-परिवेश, वातावरण प्रभावान्विति, द्वन्द्व तथा सन्तुलन अनुस्यूत हैं।[२८]

यह रासोकाव्य निश्चय ही सम-सामयिक सभ्यता व संस्कृति के ज्ञानकोश हैं । तत्कालीन युग-चेतना, संस्फुरणात्मक संयोजना और भावी सम्भावनाओं के परिवेश में सापेक्ष विश्व-संस्कृति की युद्ध- प्रेम-निर्वेद युक्त चिन्तन धारा की स्रोतस्विनी इनमें प्रवाहित है । आदिकालीन हिन्दी रासो काव्य-परम्परा, इतिहास के विवश- विवर्त में नहीं फंसी, वरन् युग-प्रवर्तक साहित्यकारों की नैसर्गिक सर्जन-प्रक्रिया में युग-युगान्तर की नित्य-नूतन संघटनाओं का समाहार करती है । इनमें केवल काल्पनिक संदर्भ ही नहीं, न केवल अलंकार-प्रदर्शन और छन्द-वैविध्य है, वरन् भाव-सौन्दर्य

रण- प्रवणता, भावात्मक सौरम्यता और काव्य- रूप-प्रक्रिया- शैली आदि का विकासशील स्वरूप आविष्ट है । युद्ध-प्रेम, रण में रसकेलि, रणदेवता और प्रेम देवता का मिलन, शौर्य- शृंगार संश्लिष्टयां, निर्वेद-परिणति, वर्णनात्मक विविधता, अतिरेकित- अभिव्यंजना, विच्छिन्न-प्रसंगबद्धता, कल्पना-वितान और कामकला कौशल के लिए युद्धभेरियों का स्वर इनमें गूंज रहा है । यह कवि केवल राजाश्रित प्रशस्तिमूलक रचनाकार नहीं, वरन् लोकजीवन, लोकभाषा तथा लोकाभ्युदय के प्रतिनिधि बनकर समष्टि का न्यास करते हैं । सांस्कृतिक समायोजन, अन्तरंग-चेतना-शिल्प लोकमंगल को दायित्व-बोधपरक स्वीकृति, इतिवृत्तात्मक विवेचन की अबाध्यता, युग-सन्धिकालीन संक्रमण और विविध लोकवृत्तियों का परि-वेष्टन इस परम्परा के प्रतिमान हैं । यह साहित्यकार, लोकदृष्टि के संस्थापक बनकर, आध्यात्मिक अन्तर्वृत्ति के नियामक हैं तथा समाज-कल्प-स्वीकृतियों में भारतीय चेतना के बहुमुखी परिच्छेद संजोए हैं[30] ।राजनीतिक घातों-प्रतिघातों, विविध धर्म-साधनाओं, परस्पर- विरोधी संस्कृतियों और दो समाज-पद्धतियों का सावयव प्रतिबिम्बन, आदिकालीन हिन्दी रासो काव्य - परम्परा में निहित है और यह संस्कृति के दिशा-दीप बनकर उदात्त महदुद्देश्यमयी दिशाओं का द्योतन भी करते हैं ।सांस्कृतिक समुच्छ्वासों के इस महामानवीय सागर में, तत्कालीन भारत-भारती के, अगणित महिमामण्डित मोतियों के अंबार छिपे हैं[31] ।

वस्तुत: आदिकालीन रासोकाव्य तत्कालीन सामन्ती संस्कृति और लोकसंस्कृति के भाण्डागार हैं, जिनमें आर्य संस्कृति और मुस्लिम संस्कृति का संगमन होता है तथा जैन-बौद्ध-संस्कृति की अन्तर्धारा का प्रस्फुटन । व्याकरणिक व्युत्पत्ति के अनुसार 'सम' उपसर्गपूर्वक कृ

धातु से सुट् आगम करके 'क्तिन्' प्रत्यय के योग से 'संस्कृति' शब्द बनता है, जिसका अर्थ है, अलंकृत सम्यक् कृति अथवा चेष्टा । अतएव संसार का सर्वोत्कृष्ट चिन्तन और उसका अभिव्यंजन ही संस्कृति है[३२] । भारतीय संस्कृति का तात्पर्य उस विराट् सांस्कृतिक चेतना से है, जिसे नाग्रो, आस्ट्रिक, किरात, द्रविड़, आर्य, ग्रीक, शक, हूण, अरब, तुर्क और अफगान आदि ने भारत में समाहित होकर व्यक्त किया है । यह संस्कृति वेदों से प्रेरणा और रामायण तथा महाभारत से जीवन ग्रहण करती है । हड़प्पा और मोहनजोदड़ो के पुरातन अवशेष जिसकी गौरवमयी गाथा के अवशिष्ट हैं, तथा आज की ऊर्ध्वमुखी वैज्ञानिक चेतना उसके निरन्तर प्राणवान रहने की सूचना देता है[३३] । भारतीय संस्कृति की सीमाएं हैं --

आसमुद्रात्तु वै पूर्वादासमुद्रात्तु पश्चिमात् ।
तयोरेवान्तरं गिर्योरार्यावर्तं विदुर्बुधा: ।।[३४]

डॉ० गुलाबराय ने भारतीय संस्कृति के प्रमुख उपादानों में आध्यात्मिकता, समन्वयात्मकता, सनातनता, विश्वबन्धुत्व, परलोक-पुनर्जन्मनिष्ठा, वर्णाश्रम व्यवस्था, बाह्यान्तरशुचिता, अहिंसा, प्रकृति तथा पर्वोत्सव- प्रेमादि परिगणित किए हैं[३५] ।

आलोच्यकालावधि का रासो साहित्य, भारतीय संस्कृति के समस्त उपादान संजोए है, इसका तथ्यात्मक निदर्शन प्रस्तुत शोध-प्रबन्ध में सन्निहित है । ब्राह्मण संस्कृति के मूल तत्व इस्लामिक संस्कृति के प्रमुख आधार और जैन संस्कृति के सप्तक्षेत्र, सम्यक् आचार-विचारादि का प्रतिबिम्बन इन जैन तथा अजैन रासो काव्यों में हुआ है । एक ब्रह्म तथा उसके अनेक अवतार[३६] निराकार और साकार की एकरूपता,[३७] तपश्चर्या,[३८] पूजा,[३९] व्रत,[४०] मातृ-पिता-गुरुभक्ति,[४१] तीर्थयात्रा,[४२] पिण्डदान,[४३] दानकर्म,[४४] मंत्र-विश्वास,[४५] स्वामिधर्म,[४६] पर्वोत्सव,[४७] पतिव्रत धर्म,[४८] विविध संस्कार,[४९]

दया,[50] दान,[51] क्षमा,[52] विनम्रता,[53] शरणागत धर्म,[54] अतिथि और अभ्यागत का सत्कार,[55] प्रजारक्षण के रूप में राजधर्म,[56] गाय तथा ब्राह्मण- रक्षा का राजा का दायित्व[57] आदि वेद-ब्राह्मणाविहित संस्कृतिनिष्ठ विन्यास इन रासो काव्यों में प्राप्त होते हैं ।

इस्लामिक मान्यताओं एवं विश्वासों का आधृति अल्लाह,[58] रहिमान,[59] खुदाय,[60] पैगंबर,[61] हजरत,[62] कुरान,[63] निवाज(नमाज),[64] भिज्जुमि,[65] तवलेश्वर,[66] आखबेश्वर,[67] आदम,[68] फिरश्ते(फरिश्ता),[69] नब्बी(नबी),[70] ईद,[71] परवरदिगार,[72] मक्का,[73] कुदरति,[74] पैराति(खैरात),[75] करीम,[76] सैतान,[77] भिस्त(बहिश्त),[78] मसाजिद (मस्जिद),[79] काजी,[80] मुल्ला,[81] औलिया,[82] गाजी,[83] हाजी,[84] हक,[85] सलाम,[86] बंदिगी,[87] गरीबनिवाज,[88] फकीर,[89] दान,[90] रोजा[91] आदि संज्ञाओं के पर्यावरण में, अनुसंधेलब्ध रासो काव्यों में द्रष्टव्य है ।

जैन रासो काव्यों की संख्या इस काल में अजैन रासो काव्यों से अधिक है और उनके अन्तर्गत अधिकांशतः जैन धर्म के सिद्धान्तों,[92] जैन धर्मोपदेशों,[93] पौराणिक जैन कथाओं,[94] जैनधर्मकथाओं,[95] जैन महात्माओं के चरित,[96] जैन तीर्थों,[97] जैन मन्दिरों,[98] सप्तक्षेत्रों,[99] आदि से सम्बन्धित विवरण धार्मिक प्रचार की दृष्टि से अनुस्यूत हैं,किन्तु वह भारतीय संस्कृति के मूलतत्वों का भी समग्रतः सन्निवेश करते हैं । पौरोहित्य, याज्ञिक -अनुष्ठान एवं वेद-विरोध करते हुए भी[100] -- अहिंसा, तप,ब्रह्मचर्य,कर्म,नय, ज्ञानादि के चिरन्तन स्वरूप का संस्फुरण + जैन रासो साहित्य में संग्रथित है ।[101]

सारांशतः,आदिकालीन जैन-अजैन रासो काव्य,तत्कालीन संस्कृति के साहित्यिक अभिव्यंजन हैं, जिनमें परिवार, समाज, राजनीति,धर्म, साहित्य,कला, विज्ञान तथा जीवन के विविधमुखी चित्र चित्रित हुए हैं ।

सामन्ती जीवन और लोकजीवन के उच्छ्वास हैं । आक्रमणों,युद्धों और विप्लवों के बीच -- भोग-भक्ति,विनोद-वहम और अनेकश: [illegible] -सन्तुलन के सांस्कृतिक आयाम हैं । डॉ० रामपुर्ति त्रिपाठी के शब्दों में इस काल की लोकचेतना, पाण्डित्य की जगह अनुभूति को, बुद्धि की जगह सम्बुद्धि को और विराग की जगह राग को महत्व प्रदान करती है ।[१०२]

<u>शोधकार्य की मौलिकता</u>

प्रस्तुत प्रबन्ध की मौलिकता का आकलन [illegible]: अनुशोधक द्वारा सम्भव नहीं, फिर भी यत्किंचित् विचार-बिन्दु द्रष्टव्य हैं --

(१) अभी तक अत्यल्प सांस्कृतिक एवं सामाजिक अध्ययन हिन्दी साहित्य के अन्त: साक्ष्यों के आधार पर प्रस्तुत किए गए हैं । इस सन्दर्भ में विभिन्न विश्वविद्यालयों के तत्वावधान में कतिपय निष्णात अनुसंधायक उल्लेखनीय हैं-- डॉ० आनन्दप्रकाश माथुर (१९५३ई०),[१०३] डॉ० गायत्री देवी वैश्य (१९५५ई०),[१०४] डॉ० गणेशशुक्ल (१९५६ई०),[१०५] डॉ० सोमनाथ शुक्ल (१९५८ई०),[१०६] डॉ० सावित्री शुक्ल (१९५८ई०),[१०७] डॉ० मोती सिंह (१९५८ई०),[१०८] डॉ० रामनरेश वर्मा (१९५८ई०),[१०९] डॉ० कृष्णविहारी मिश्र (१९५८ई०),[११०] डॉ० श्यामेन्द्र प्रकाश शर्मा(१९५९ई०),[१११] डॉ० मायारानी टण्डन (१९६०ई०),[११२] डॉ० रामशरण बत्रा(१९६०ई०),[११३] डॉ० वेंकटरमण(१९६१ई०),[११४] डॉ० सुरेन्द्रबहादुर त्रिपाठी(१९६१ई०),[११५] डॉ० हरगुलाल(१९६४ई०),[११६] डॉ० सूर्यनारायण पाण्डेय (१९६५ई० व १९७३ई०)[११७] तथा डॉ० राजपाल शर्मा (१९७४ई०)[११८] ।

अब तक सम्पन्न शोध-कार्यों की समीक्षा यहां अप्रासंगिक होगी,केवल कथनीय यह है कि सम्पूर्ण आदिकालीन हिन्दी-साहित्य अथवा आदिकालीन हिन्दी रासो काव्य परम्परा के आधार पर

तत्कालीन संस्कृति का अन्वेषण[119] किसी शोधित्सु का अभीष्ट नहीं रहा । निष्कर्षतः इस दिशा में यह प्रथम मौलिक प्रयास है ।

(२) प्रस्तुत प्रबन्ध का प्रस्तुतीकरण सर्वथा मौलिक एवं नवीन पद्धति का द्योतक, विकासवादी प्रक्रियामूलक है, जिसमें मार्क्स, डार्विन, ए०जे० टायनवी, स्पेंसर, स्पेंगलर, सोरोकिन और बर्गसां आदि के विकासवादी सिद्धान्तों को आधारपीठिका पर साहित्यिक एवं सांस्कृतिक विकास के पांच सोपानों का निवेश किया गया है[120] । रासो काव्यों की प्रकृत उद्भूति और साहित्यकारों की नैसर्गिक सर्जनशक्ति का इंगन प्रथम अध्याय करता है । परम्परामूलक संस्कृतिनिकष के रूप में साहित्येतर स्रोतों के आधार पर तत्कालीन भारत का चित्रण द्वितीय अध्याय में है । वातावरणजन्य युगबोध अथवा सांस्कृतिक अभिव्यंजन के रूप में विवेच्य रासो काव्यों में भारतीय संस्कृति का अनुसन्धान सात अध्यायों में किया गया है तथा सांस्कृतिक द्वन्द्व के परिवेश में तत्कालीन द्वन्द्वात्मक क्रियाएं-प्रतिक्रियाएं और अन्ततः द्विधा संस्कृतियों का सन्तुलन-सन्धि, सह- अस्तित्व, सांस्कृतिक आदान-प्रदान, समन्वयात्मक स्वर आदि का निदर्शन दशम अध्याय में हुआ है । इस प्रकार, उद्भूति, परम्परा, वातावरण, द्वन्द्व और सन्तुलन इन पांच चरणों में तत्कालीन संस्कृति को निरखने -परखने का विकासवादी अध्यवसाय संयोजित है ।

(३) प्रस्तुत अन्वेषण के आधार पर अनुसंधायक को यह प्रतीति महापण्डित राहुलसांकृत्यायन की विचार सरणि[121] के विपरीत है कि आलोच्यकालीन भारत में राजा पर प्रजा और राजसभा का पर्याप्त अंकुश था । राजाओं को प्रजाहित की चिन्ता थी और कवि जनता की यातना पर चुप न थे । प्रजाजन राजा की गतिविधियों के मूक-द्रष्टा न थे, वरन् वह विविध विधियों से जनमानस की अभिव्यक्ति

करते थे और तदनुसार राजाओं को भी आचरण के लिए बाध्य करते थे । उदाहरण स्वरूप, राजा अनंगपाल प्रजा की पुकार पर ही दिल्ली राज्य को पुन: हस्तगत करने के लिए आक्रमण करते हैं ।[१२२] महाराज वीसलदेव की चरित्रहीनता का सक्रिय विरोध प्रजा करती है ।[१२३] विलासी पृथ्वीराज चौहान को प्रजावर्ग राजगुरु के माध्यम से मुहम्मदगोरी से युद्धार्थ प्रेरित करता है ।[१२४] रावल समरविक्रम भी 'ते पन थपिय न काम रस' कहकर पृथ्वीराज की भर्त्सना करते हैं ।[१२५] चन्दवरदायी भी 'गोरी रत्तौ तुव धरनि, तू गोरी रस-रत्त' का संदेश देकर राजा की विलास-तन्द्रा भंग करता है ।[१२६] मुहम्मद गोरी की पराजय को प्रजा सोल्लास स्वीकारती है ।[१२७] पृथ्वीराज चौहान की पराजय पर प्रजा अर्द्धविक्षिप्त और किंकर्तव्यविमूढ़ हो जाती है ।[१२८] राजा द्वारा कैमास मंत्री का वध करने का प्रतिरोध नगर में तीन दिन तक दुकानें बन्द करके किया जाता है ।[१२९] बालुकाराय,[१३०] भीमदेव,[१३१] और परमार्दिदेव[१३२] आदि प्रजारक्षा के लिए कई बार युद्धघोष करते हैं । कवि चन्द द्वारा पृथ्वीराज चौहान की फटकार में उस युग की जनवाणी उद्घाटित होती है ।[१३३] चन्द की स्त्री चन्द को नर-चरित के स्थान पर ईश्वर-चरित का गान करने के लिए उद्बुद्ध करती है ।[१३४] यह तत्कालीन संस्कृति और विकृति का चित्र है । रणकेलि और रसकेलि के मध्य भक्ति रस का संचरण है ।

(४) भारत की सीमा में प्रवेश करने पर इस्लाम धर्म के सिद्धान्तों अथवा सुलतानों की इस्लामिक मान्यताओं में आमूल चूल परिवर्तन का आभास मिलता है । निरंकुश एकतंत्रवाद कुरान के राजनीतिक आदर्शों के सर्वथा विपरीत था ।[१३५] सुलतान स्वत: ईश,साहबेश्वर

अथवा जुदा बन गये थे[१३६] -- `आदि प्रांत कलह कौलेश्वर, औसौ देस सुरतान जालेश्वर ।` अनेक इतिहासकारों ने उक्त कथ्य का तथ्यात्मक निदर्शन किया है[१३७] ।

(५) सामान्यत: प्रचलित धारणा के विपरीत, यह भी प्रतीति है कि इस काल में जाति, वर्ण और धर्म पर आधारित हिन्दू-मुस्लिम अथवा ब्राह्मण-जैनादि संघर्ष नहीं हुए । संघर्षों के परिपार्श्व में सत्ता-लोलुपता थी । सत्तामूलक संघर्षों को भावनात्मक संबल प्रदान करने के लिए राजाओं और सुल्तानों ने धर्म-मजहब का ताना-बाना बुना । मुहम्मद गोरी भी, राम और अल्लाह को एक मानती थी[१३८] --

`अल्लाह रु राम उक्के निजरि । विषय बंध बंधे कलहि ।` महात्मा बुद्ध भी भगवान विष्णु के दस अवतारों में से एक मान लिए गए थे[१३९] । ब्राह्मण धर्मावलम्बी आबू के राजा सलख प्रमार ने अपनी कन्या मन्दोदरी का विवाह, गुर्जरेश्वर भीमदेव चालुक्य जो कि जैनमतानुयायी था, के साथ किया था[१४०] । महाराज जयचन्द्र गाहड़वाल (तथाकथित शैव) -- जिन प्रतिमा, जिन मन्दिर, ज्ञान, साधु, साध्वी, श्रावक और श्राविका का सेवन करते थे[१४१] । उभयपक्षीय सेनाओं में, स्वामिभक्ति की अन्तश्चेतना-अभिमुख हिन्दू, हिन्दुओं से और मुस्लिम, मुस्लिमों से टकराते थे ।

(६) विवेच्य कालावधि के रासो काव्यों से महिला-शासिकाओं का भी द्योतन होता है । परमाल रासो में रानी मल्हना को युद्ध-स्थगन प्रस्ताव करते हुए चित्रित किया गया है[१४२] । वह रूठे हुए योद्धाओं, आल्हा और ऊदल को कन्नौज से वापसी का प्रयास करती है[१४३] । संयोगिता दिल्ली राज्य की संचालिका बन जाती है और पृथ्वीराज

चौहान छ: महीने तक राजदरबार तक नहीं करते[१४४]। वह रावल समर विक्रम को भी बारह दिन तक पृथ्वीराज से मिलने नहीं देती तथा उन्हें दिल्ली के ही निकट निगमबोध पर ठहराने का उपक्रम करती है[१४५]। वस्तुत: नारी केवल भोग-लिप्सा, इन्द्रिय लोलुपता और काम-क्रीडा-कन्दुक नहीं थी[१४६] और न 'पुनि-पुनि रूप-कला-गुन सुन्दरि। जग्यो काम नृपति उर अंतरि।।' की उपादानमात्र थी[१४७]। इतिवृत्तात्मक साक्ष्य भी तत्कालीन भारत में अनेक रानियों और नारियों को शासनाध्यक्षा के रूप में निदर्शित करते हैं। सुलताना रज़िया बेगम (१२३६ई०-१२४०ई०) को अल्तमश ने अपने युवापुत्रों को अयोग्य समझकर १२२९ई० में ही उत्तराधिकारी नियुक्त कर दिया था[१४८]। काश्मीर के राजा अनन्त (१०२८ई०- १०६३ई०) की रानी सूर्यमती राज्य की शासिका के रूप में निर्णायक भूमिका का निर्वाह करती थी[१४९]। कल्याणी के चालुक्य सोमेश्वर प्रथम (१०४३ई०- १०६८ई०) तथा विक्रमादित्य षष्ठ (१०७६ई०- ११२६ई०) की रानियां शासन सूत्र संचालन करती थीं[१५०]। तेरहवीं शती के उत्तरार्द्ध में दक्षिण भारत में अनूपराज्य की रानी ..महादेवी ने लगभग चौदह वर्ष तक 'महाराजाधिराज' आदि उपाधियों सहित शासन किया[१५१]। काकतीय राज्य की रानी रुद्रम्बा ने 'रुद्रदेवमहाराज' का विरुद धारण करके १२५८ ई० से १२९०ई० तक उत्तम प्रशासन चलाया, जिसकी प्रशस्ति, १२९३ई० में राज्य की राजधानी मोटुपल्ली में आगत विदेशी यात्री मार्कोपोलो ने की है[१५२]।

निश्चय ही, उक्त विचार-बिन्दुओं की अस्पष्ट आयाम में ससीम परिमिति सम्भाव्य है। इनके अतिरिक्त प्रत्येक अध्याय के अन्तर्गत यथास्थान स्वत: संस्फूर्त विचार-वेलि पल्लवित करने के विविध प्रयास भी प्रस्तुत शोध में अनुस्यूत हैं।

सन्दर्भ- सरणि

(विषय-प्रवेश तथा शोधकार्य की मौलिकता)

१- डॉ० दशरथ ओझा, `हिन्दी नाटक उद्भव और विकास`, पं० सं०, राज्यपाल एण्ड सन्स, दिल्ली , पृ०सं० ८३ ।

२-(क) श्री राहुल सांकृत्यायन, `हिन्दी काव्य धारा`, किताब-महल, इलाहाबाद, प्र०सं०, १९४५ई० ।

(ख) श्री लालचन्द्र भगवानदास गांधी, `अपभ्रंश काव्यत्रयी`, गायकवाड़, ओरियण्टल सीरिज़, सं०३७, ओरियण्टल-इन्स्टीट्यूट,बड़ौदा, सन् १९६७ई० ।

(ग) श्री मुनि जिनविजय,`प्राचीन गुर्जर काव्य संग्रह`,गायकवाड़-ओरियण्टल सीरिज़, सं० १३, ओरियण्टल इन्स्टीट्यूट, बड़ौदा, सन् १९२०ई० ।

(घ) डॉ० दशरथ ओझा तथा डॉ० दशरथ शर्मा,`रास और रासान्वयी काव्य`, नागरी प्रचारिणी सभा,वाराणसी, सम्वत् २०१६ वि० ।

(ट) डॉ० हरिशंकर शर्मा ,`हरीश`,`आदिकाल के अज्ञात हिन्दी-रास काव्य`,मंगल प्रकाशन,जयपुर, प्र०सं०, सन् १९६१ई०

तथा

`आदिकालीन हिन्दी साहित्य शोध`, साहित्य भवन प्रा० लिमिटेड, इलाहाबाद, प्रथम संस्करण, सन् १९६६ई० ।

(ठ) डॉ० माताप्रसाद गुप्त, `रासो साहित्य विमर्श`,साहित्य-भवन प्रा० लिमिटेड, इलाहाबाद, प्र०सं०, १९६२ई० ।

(ड) डॉ० सुमन राजे, `हिन्दी रासो काव्य परम्परा`,ग्रन्थम् रामबाग, कानपुर , प्र०सं०, १९७३ई० ।

(ढ) डॉ० हजारीप्रसाद द्विवेदी,अब्दुल रहमान कृत संदेश रासक, हिन्दी ग्रन्थ-रत्नाकर,प्रा०लिमिटेड, बम्बई-४, द्वितीय संस्करण, १९६५ई० ।

(त) डॉ० माताप्रसाद गुप्त तथा श्री अगरचन्द नाहटा,`वीसलदेव-रास`, हिन्दी परिषद्, विश्वविद्यालय, प्रयाग,द्वि०सं०, १९६०ई० ।

(थ) डॉ० वी०पी० शर्मा, चन्दबरदायीकृत पृथ्वीराज रासो, विश्वभारती प्रकाशन, चण्डीगढ़, प्र०सं०, सम्वत् २०१६ ।

(द) मुनिजिनविजय, भारतीय विद्या, भाग २, अंक १, पृ०१-१६ सम्वत् १९९७ ।

(ध) श्री नाथूराम बोथी प्रेमी,`हिन्दी जैन साहित्य का इतिहास` हिन्दी-ग्रन्थ-रत्नाकर(प्रा०) लिमिटेड,बम्बई,१९५६ई०।

३- शान्तिनाथ रास, १२०१ई०, अपूर्ण प्रति, ज्ञानभण्डार,जैसलमेर ।

४- महावीर रास तथा शान्तिनाथ देवरास, अभयजैन ग्रन्थालय, बीकानेर, रचयिता-- श्री अभय तिलक गणि तथा श्री लक्ष्मी-तिलक उपाध्याय, रचनाकाल १२५०ई० तथा १२५५ई० ।

५- परिशिष्ट संख्या ६, प्रस्तुत शोध-प्रबन्ध ।

६- डॉ० दशरथ शर्मा तथा डॉ० दशरथ ओझा,`रास और रासान्वयी काव्य`, पृ० ३९-४०, नागरी प्रचारिणी सभा, वाराणसी, प्र०सं०, सम्वत् २०१६ ।

७- उपरिवत्, पृ० ४८-४६ ।

८- राहुल सांकृत्यायन, `हिन्दी काव्य-धारा`, पृ०२६२, किताब महल, इलाहाबाद, प्र०सं०,१६४५ ।

६- डॉ० हजारीप्रसाद द्विवेदी, `हिन्दी साहित्य का आदिकाल`, पृ०४०, बिहार राष्ट्रभाषा परिषद्,पटना, तृतीय सं०, १६६१ई० ।

१०- श्री जिन विजय मुनि, `सन्देश रासक`, भारतीय विद्या भवन, बम्बई ।

११- डॉ० सुमन राजे, `हिन्दी रासो काव्य परम्परा`,पृ०१३३, ग्रन्थम्, रामबाग, कानपुर, प्र०सं०,१६७३ई० ।

१२- श्री लालचन्द्र भगवानदास गांधी, `अपभ्रंश काव्यत्रयी`,गायकवाड ओरियण्टल सीरिज सं०३७, पृ०२६-६६,ओरियण्टल इन्स्टीट्यूट बड़ौदा, द्वि०सं०, १६६७ई० ।

१३- श्री राहुल सांकृत्यायन, `हिन्दी काव्य धारा`,पृ०४८६,किताब महल, इलाहाबाद, प्र०सं०, १६४५ई० ।

१४- उपदेशरसायन रास , छन्द ८०, अपभ्रंश काव्यत्रयी, गायकवाड ओरियण्टल सीरिज सं०३७ --

इय जिणदत्तुवरस रसायणु
इह.- परलोयह .सुक्खह भायणु
कण्णंजलिहि पियंति जि भव्वइं
ते हवंति अजरामर सव्वइं ।।

१५- अपभ्रंश काव्यत्रयी, गायकवाड ओरियण्टल सीरिज सं०३७,पृ०११५

`चर्चरी- रासक प्रख्ये प्रबन्धे प्राकृते किल ।
वृत्ति प्रवृत्ति ना क्वे प्रायः कोऽपि विचक्षण:
प्राकृतभाषाया धर्मरसायनाख्यो रासकश्चक्रे ।`

१६- उपरिवत्, चर्चरी छन्द १६, पृ०११ ।

... लउडारसु जहिं पुरिसु वि दितउ वारियइ ।

तथा

उपरिवत्, उपदेशरसायन रास, छन्द ३६, पृ०४७

तालारासु वि दिंति न रयणिहि

दिवसि वि लउडारासु सहुं पुरिसिहिं ।

१७- डॉ० हजारीप्रसाद द्विवेदी तथा विश्वनाथ त्रिपाठी, सन्देश रासक भूमिका, पृ०६७, हिन्दी ग्रन्थ रत्नाकर (प्रा०) लिमिटेड, बम्बई, द्वि०सं०, १९६५ई० ।

१८- डॉ० सुमन राजे, हिन्दी रासोकाव्य परम्परा, अध्याय चार, ग्रन्थम् रामबाग, कानपुर, प्र०सं०, १९७३ई० ।

१९- स्पेंसर, स्पेंग्लर, टायनबी, हेनरीबर्गसां, हीगेल तथा मार्क्स आदि

२०- श्री चन्द्रमोहन घोष, प्राकृत पैंगलम् में हम्मीर विषयक आठ छन्द एशियाटिक सोसायटी, बंगाल, सन् १९०२ई० ।

२१- (क) आचार्य रामचन्द्र शुक्ल, हिन्दी साहित्य का इतिहास, संस्करण सं० १९९७, काशी नागरी प्रचारिणी सभा, वाराणसी ।

२१- (ख) श्री जिनविजयमुनि, पुरातन प्रबन्ध संग्रह, सिंघी जैन ज्ञानपीठ, कलकत्ता, १९३६ई० में मुञ्ज विषयक बीस छन्द ।

(ग) पं० मोतीलाल मेनारिया, राजस्थानी भाषा और साहित्य, तृ० सं०, सम्वत् २००६, हिन्दी साहित्य सम्मेलन प्रयाग ।

२२- डॉ० सुमन राजे, `हिन्दी रासो काव्य परम्परा`,ग्रन्थम्, रामबाग,कानपुर, प्र०सं० १९७३ई० ।

२३- डॉ० रामकुमार वर्मा सम्पादित हस्तलिखित हिन्दी ग्रन्थों की विवरणात्मक सूची, हिन्दी साहित्य सम्मेलन,प्रयाग, १९७१ई० ।

२४- डॉ० हजारीप्रसाद द्विवेदी, सन्देश-रासक,पृ०६६, हिन्दी ग्रन्थ रत्नाकर(प्रा०)लिमिटेड, बम्बई,द्वि०सं०१९६५ई० ।

२५- डॉ० सुमन राजे, हिन्दी रासो काव्य परम्परा,पृ०५२०, ग्रन्थम,रामबाग,कानपुर, प्र०सं० १९७३ ई० ।

२६- उपरिवत्, पृ०५१९ ।

२७- डॉ० गणपतिचन्द्र गुप्त, हिन्दी साहित्य का वैज्ञानिक इतिहास, प्रथम खण्ड, भारतेन्दु-भवन, चण्डीगढ़, प्र०सं०,१९६५ई० ।

२८- उपरिवत्

२९- डॉ० गणपतिचन्द्र गुप्त, हिन्दी साहित्य का वैज्ञानिक इतिहास, प्रथम खण्ड, भारतेन्दु-भवन चण्डीगढ़,प्र०सं०, १९६५ई० ।

३०- डॉ० रामखेलावन पाण्डेय, हिन्दी साहित्य का नया इतिहास, द्वितीय खण्ड, संक्रमणकाल, अनुपम-पटना, प्र०सं० १९६९ई० ।

३१- डॉ० राममूर्ति त्रिपाठी,आदिकालीन हिन्दी साहित्य की सांस्कृतिक पीठिका, तृतीय चतुर्थ तथा पंचम अध्याय, मध्यदेश हिन्दी ग्रन्थ अकादमी, भोपाल, प्रथम संस्करण, १९७३ई० ।

३२- डॉ० रामखेलावन पाण्डेय, भारतीय संस्कृति और सांस्कृतिक चेतना, पृ०७, राधाकृष्ण प्रकाशन, पटना-६,प्र०सं०,१९६७ई० ।

३३- शिवकुमार शर्मा, भारतीय धर्म और संस्कृति, पृ०१० ।

३४- मनुस्मृति २।२२

३५- डॉ० गुलाबराय, भारतीय संस्कृति, पृ०१६ ,रवीन्द्र प्रकाशन, आगरा, १९६६ संस्करण ।

३६- पृ०रा०, सं० कवि राव मोहन सिंह, साहित्य संस्थान,उदयपुर समय ४८, छन्द ५८ ।

कह ब्रह्म अवतार दस, धरे भगत हित काज ।

रूप रूप अति दैत्य दलि, उदय सुता रखि लाज ।।

३७- उपरिवत्, समय ४८, छन्द ५६

मंन माने सोई भजहु कष्ट तजहु तुम देह ।

सुरति प्रीति हरि पाइये, उर मटहु संदेह ।।

३८- उपरिवत्, समय २६, छन्द ८३

चल्या अनंग बद्री सरन, पहुंचायो प्रथिराज नृप

तहं जाइराज तोंवर सुवर, तपै राज उग्रह सु तप

३९- उपरिवत्, समय ५४,छन्द १५

मुकति कठिन मारग्ग क्रम्म छुट्टैम पंच वर ।

मनु लिप्पै मनु छिपै, मनुहं अवतरहं धरधर ।।

मनु बंधे क्रम देह, मनुह क्रम जगहि छुडावै ।

मनु साखी सुख दुक्ख, मनह जाइं मनु आवै ।

मनु होई ज्ञान-विज्ञान मय, गुरु उपदे सहि संचरै ।

मनु प्रथम अप्पु बस किज्जि ए समर राउ इमि उच्चरै ।

४०- उपरिवत्, समय २३, छन्द ३४ ।

४१- उपरिवत्, समय ६, छन्द २१

पृथिराज तात आया सगुन, बरण वंदि बलि बज्र भुव ।

४२- उपरिवत्, समय ३८, छन्द १६

४३- उपरिवत्, समय ३५, छन्द ४५

सुनो बत प्रथि राज, भुम्मि सेना अधिकारी

तात काज तिन प्यंड दान सोडस बिस्तारी ।

४४- उपरिवत्, समय ३४, छन्द ३२

संग प्रथिराज राज सामंत सह, महादान षोडस करिय

४५- उपरिवत्, समय ६१, छन्द ३४३

मंत्र जाप जालपा राज अंगह अभंग किय ।

४६- उपरिवत्, समय ६० छन्द १०० तथा समय ३१, छन्द २१

सहस पानि सुलि तान, धोर णिज हथ्थ समप्पत ।

कंह धोर सुण साहि, राज प्रथिराज स लष्षत ।।

++ ++ ++

स्वामि ध्रम्म तिय तिथ्थ मुकति संसो न विचारिय

४७- उपरिवत्, समय ६०, छन्द १६

तिहि समान नय वार, विजय दसमी हय कोजै ।

४८- उपरिवत्, समय ३१,छन्द २१

मातपुषि परठिय सुमंति विधि विवेक षिनिणन

पतिव्रत सेवा सुक धरम, इहै तत मतिणन ।

४९- उपरिवत्, समय १, छन्द ४१-४२ तथा ६०

५०- उपरिवत्, समय ६१, छन्द २०७ ।

५१- उपरिवत्, समय ३४, छन्द ३२

५२- उपरिवत्, समय ६०, छन्द ६५

पाउं लग्गि प्रथिराज, बाह धंनो सुलितान ।

दस हजार हैवरणि, दंड डंडिय मुलतानं ।

५३ - उपरिवत्, समय २७, छन्द २८

बखारि तख्त सिर छत्र दिय, सभा विराजे सुपहुं मर ।

सिर फेरि बैर-दिज्जै दुना, यों रक्खै पति साह दर

५४ - उपरिवत्, समय ११, छन्द २०

धरो छोरि हुस्सैन सिर, है बंधिय है साल

अप्प सुचिंतिय अवर चित, रज पट्ठवै रसाल

५५ - उपरिवत्, समय २६, छन्द ७० तथा समय ३८ छन्द ४-५

भाव मांति प्रथिराज नै, किन्नो अति महिमान ।

इक्क बाज सिर पाव दै, छंडि दियौ सुर तान ।

५६ - उपरिवत्, समय २०, छन्द ६५

निद्रा पियास छुक मोह तजि दुक्ख सुक्ख इक न गनै ।

५७ - उपरिवत्, समय ५, छन्द ६४

प्रात रात जग्गे प्रथम, गो द्विज दरसन किन्न

देह कृति पुनि होइ सुचि, पावन पानि सुलिन्न ।

५८ - पृ०रा०, सं० श्यामसुन्दरदास, ना० प्र०सभा, समय १३, छन्द २५ तथा समय २४ छन्द १२१

सेमरन संग जिम नहाँ द्रुव । अल्लाह लाह व्यापार ध्रुव ।

++ ++ ++

जा स्थ्य स्थ्य कवि चंद कहि । अल्लह देह सुपाह है

५९ - उपरिवत्, समय ६४, छन्द ६५

रहिमन राम बट्टै कहू, ताहि निमज्ज रक्खै कवन

६० - उपरिवत्, समय ६४, छन्द १६७

६१ - उपरिवत्, समय ३७, छन्द ४७

क्था रहो पैगंबरा, अरु भारथ्थ पुरान

तातें हठ हजरति है, सुनौ राज बहुआन

६२ - उपरिवत्, समय ३७, छन्द ४७

६३ - उपरिवत्, समय १३, छन्द २४

६४ - उपरिवत्, समय ५२, छन्द १७७

६४ - उपरिवत्, समय ५२ छन्द १७७

बंचि सिपोरे तीस चव, करि निवाज सुरतान

६५ - उपरिवत्, समय २४, छन्द ३२०

६६ - उपरिवत्, समय ६७, छन्द २२०

६७ - उपरिवत्, समय ६७, छन्द २२०

इसे कुरान पुसे मुलान, सु महमंद दीन ईमान जान

आणंद जमी कटंक बिडार, आदल्ल रोति आलम निडार

फक्कर फरीद रिज कानदार, अगलोस पंनाम कामदार

ओलिया पीर पैगंमरार, इस बीस च्यारि क्रामति कार

तबल तबल धाति तबकेश्वर, अैयोईस सुरतान साहवेश्वर

६८ - उपरिवत्, समय ६७, छन्द ४४८

६९ - उपरिवत्, समय २७ छन्द ४५

करित माय बहु साहि, तीस तंह रष्षि फिरस्ते ।

७० - उपरिवत्, समय ३६, छन्द ११

जीवन बलह विनोद, अलह नब्बो धम मंगहि

७१ - उपरिवत्, समय ६४, छन्द १३६

हौं दरोग जो कहौं । ईद उग्गमे कुंह मिसि ।

७२ - उपरिवत्, समय ६६, वचनिका७ पृ० २२२६

जमा सुभिहानं, शाहब दी सुलतान ।

पैगंबर परवर दिगार, इलाह करीम कवार ।

७३ - उपरिवत्, समय ६४, छन्द १६०

मक्कां सु जाइ फिरियाद करि, मोरां सैद हुसेन अग ।

मोयति छुदाय मयक्त करन, इह अपिषय मन धरि उम्मग ।

७४ - उपरिवत्, समय २४, छन्द ३१६

अभ्भिय आइ जहां मिलि षानं ।

कुदरति कथा एक परिमानं ।

७५ - उपरिवत्, समय १३, छन्द २५

कोरीय करी जिन देह एक, पैराति षरच अज्जोम टेक

७६ - उपरिवत्, समय ५४, छन्द ५६

कोरान करीम करम्म तजि, हम सु पैज पौरान किय ।

७७ - उपरिवत्, समय ६६, छन्द ६८

सैतान माग अक्गह गहै, धर गोरी हरी दहै ।

७८ - उपरिवत्, समय ३७, छन्द २६ तथा समय ६६, छन्द १२३३

सुब माथ भिस्त मंकोद रन ।

++ ++ ++

मफरद षान पीरोज सुब ।

तेजवंत भिस्तिहि गयौ ।।

७९ - उपरिवत्, समय ६४ छन्द १६६

जहां सुनाहि कुरान, नहीं महजिद घर पर किन ।

परै न गाय छिप्पै, छुदाय रेजा करि बारन ।

८० - उपरिवत्, समय ६४, छन्द १६६

जहां हुकम नाहिं काजो करत, तुरकनि षमि गहिहय जहां

८१ - उपरिवत्, समय ६७, छन्द २८६

फिरस्ते न हस्ते न मुल्ला पुकारे ।

८२ - उपरिवत्, समय ६७ छन्द २२०

८३ - उपरिवत्, समय ६५ छन्द २०६

बैठाये सोरह सुरुतानिनह, लाय अप्प गाजी सु सथ ।

८४ - उपरिवत्, समय ६४, छन्द २६२

तहां चंपि लाजा, हजाब देषंत तरस थन ।

८५ - उपरिवत्, समय १, छन्द २६४ तथा समय १ छन्द ३४६

इक अक्क जोरि गिरि इक्क माल ।

+ + +

इक्क द्रव्य संग्रहै, विना इक लोभ न बंहै ।

८६- उपरिवत्, समय २४ छन्द २६३

भित्रो बलि बहुजान पै, करिके सबन सलाम

८७ - उपरिवत्, समय ६६, छन्द ८२२

सदा बंधिगो सांइ लग्गै सुमन्न, सदानं करानं सुभासै सबन्नं ।

८८ - उपरिवत्, समय ६६, छन्द १६५६

बिना रोज आजं सरै कौन काजं ।

मिवाजो विरदं गरोबं निवाजं ।

८९ - उपरिवत्, समय ६६ छन्द ७६६

इह गन्दो मट्टी पुरष, तुम मरदों मरदानि ।

तुम गव्वी सव्वी इल, मैं फकोर सुलतान ।

९० - उपरिवत्, समय २४, छन्द १३६

ठह्यौ आरैबं चानं दो दीन साषी, जिमे दीन के ध्रम की लाज -

राषो ।

९१ - उपरिवत्, समय ६६, छन्द ७७८

है हमीर हिंदुन, दीन रोजा रंजा नहि ।

९२ - समरारास, गौतम स्वामी रास, श्रावक विधि रास
बारव्रतरास, कच्छूलिरास आदि ।

९३ - उपदेश रसायन रास, बुद्धिरास, जीवदया रास, आदि ।

९४ - पंच पाण्डव चरित रास, त्रिविक्रम रास आदि ।

९५ - महावीर रास, शान्तिनाथ रास, शालिभद्र रास, मयणरेहा रास, भरतेश्वर बाहु बलि रास, जम्बुस्वामी रास, गौतम स्वामी रास, स्थूलिभद्ररास, आदि ।

९६ - पेथडरास, गयसुकुमालरास,नेमिनाथरास,शान्तिनाथ देव रास, जिनेश्वर सूरि विवाह वर्णन रास, जिन कुशल सूरि पट्टाभिषेक रास, जिन पद्म सूरि पट्टाभिषेक रास आदि ।

९७ - रेवन्तगिरि रास आदि ।

९८ - आबु रास आदि ।

९९ - सप्तक्षेत्रि रास आदि ।

१०० - डॉ० रामखेलावन पाण्डेय, भारतीय संस्कृति और सांस्कृतिक चेतना, पृ० ६३, राधाकृष्ण प्रकाशन, दिल्ली, प्र०सं०, १९६७ ।

१०१ - (अ) डॉ० सुमन राजे, हिन्दी रासो काव्य परम्परा, ग्रन्थम्, रामबाग, कानपुर, प्र०सं०१९७३ ।

(ब) डॉ० दशरथ ओझा, ना०प्र० सभा वाराणसी,प्र०सं० संवत्२०१६

(स) डॉ० हरिशंकर शर्मा, `हरीश` आदिकाल के अज्ञात हिन्दी रास काव्य, मगल प्रकाशन, जयपुर, प्र०सं०१९६१

१०२ - डॉ० राममूर्ति त्रिपाठी, आदिकालीन हिन्दी साहित्य का सांस्कृतिक पीठिका, पृ०८ । (पूर्ववत्),मध्यप्रदेश हिन्दी ग्रन्थ अकादमी, भोपाल, प्र०सं० १९७३ ।

१०३ - डॉ० उदयभानु सिंह, हिन्दी के स्वीकृत शोधप्रबन्ध,पृ०५०७,नेशनल पब्लिशिंगहाउस,दिल्ली, द्वि०सं०,१९६३ ।

१०४ - उपरिवत्।
१०५ - उपरिवत् ।
१०६ - उपरिवत्।
१०७ - उपरिवत्।
१०८ - उपरिवत् ।
१०९ - उपरिवत् ।
११० - उपरिवत् ।
१११ - उपरिवत् ।
११२ - उपरिवत् ।
११३ - उपरिवत् ।
११४ - उपरिवत् ।
११५ - उपरिवत्।
११६ - दिल्ली विश्वविद्यालय में पी०एच०डी० की उपाधि हेतु प्रस्तुत शोध-प्रबन्ध ।
११७ - इलाहाबाद विश्वविद्यालय में पी०एच०डी० तथा डी०लिट्० की उपाधियों के लिए प्रस्तुत शोधप्रबन्ध ।
११८ - दिल्ली विश्वविद्यालय की पी०एच०डी० की उपाधि के लिए प्रस्तुत शोध-प्रबन्ध ।
११९ - इलाहाबाद विश्वविद्यालय में 'प्रतिबिम्बित भारतीय संस्कृति' विषय पर प्रस्तुत कर्ता का प्रबन्ध ।
१२० - डॉ० गणपतिचन्द्र गुप्त, साहित्य का वैज्ञानिक विवेचन, नेशनल पब्लिशिंग हाउस, दिल्ली, प्र०सं० १९७१ ।
१२१- राहुल सांकृत्यायन, हिन्दी काव्य धारा, किताब महल इलाहाबाद, प्र०सं०, १९४५ई०, पृ०२० ।
१२२ - पृ०रा०, सं० कविराव, मोहन सिंह, सा०सं०भाग २, पृ० ८०१, छन्द २७ ।

१२३ - पृ०रा०, सं० श्यामसुन्दरदास, ना०प्र०सभा,पृ०८४, छन्द ४२४ ।

१२४ - उपरिवत्,पृ०२२३२, छन्द १७४ तथा पृ० २२३३ , छन्द १८३

१२५ - नरोत्तमदास स्वामी, रासो साहित्य और पृथ्वीराज रासो, पृ० १७०, प्र० भारतीय विद्या मन्दिर, शोध प्रतिष्ठान, प्र०सं०, सम्वत् १८८५ ।

१२६ - उपरिवत्

१२७ - पृ०रा० सं०श्यामसुन्दरदास, ना०प्र०सभा,१६०४,पृ०६३०, छन्द१७६।

१२८ - उपरिवत, पृ० २३८६, छन्द २५

१२९ - उपरिवत्, पृ०१४६६, छन्द २५५

१३० - उपरिवत्, पृ०८६, छन्द ४३८ तथा पृ०६० छन्द ४४४ ।

१३१ - पृ०रा० सं० क० मो०, सा०सं०, भाग २, पृ०४२७, छन्द १५

१३२ - पृ०रा० सं० श्यामसुन्दरदास, ना०प्र० सभा,पृ०२५५३, छन्द १६०

१३३ - नरोत्तमदास, रासो साहित्य और पृथ्वीराज रासो, पृ०१६६ प्र०भा०वि०शो० प्र०, प्र०सं०, सम्वत् १८८५

१३४ - उपरिवत्, पृ०१७१

१३५ - के० दामोदर न्मन, भारतीय चिन्तन परम्परा,पृ०३०२-३०३, पीपुल्स पब्लिशिंग हाउस नई दिल्ली ।

१३६ - पृ०रा०, सं० श्यामसुन्दरदास, ना०प्र० सभा, समय ६७, छन्द २२० ।

१३७ - के०एम० अशरफ, लाइफ एण्ड कण्डीशन्स आफ दि पीपुल आफ हिन्दुस्तान, पृ०१५ ।

१३८- पृ०रा० सं० श्यामसुन्दरदास ना०प्र० सभा, पृ०१३५३, छन्द ३७-३८ ।

१३९ - पृ०रा० सं० श्यामसुन्दरदास,ना०प्र० सभा, पृ०१८१, छन्द २ तथा पृ० २५२, २५३ छन्द ५६५-५७० ।

१४० - पृ०रा०, सं० श्यामसुन्दरदास, ना०प्र० सभा, समय १२,छन्द५ ।

१४१ - पृ०रा० सं० डॉ० माताप्रसाद गुप्त, २ : १ : २, प्र०
साहित्य सदन झांसी, प्र० सं०, सम्वत् २०२० ।
इसी प्रकार मुसलमान सुल्तानों के द्वारा जैन
मतावलम्बियों को प्रश्रय दिये जाने का उल्लेख समराराम
तथा जिन पद्मसूरिपट्टाभिषेक रास, आदि में प्राप्त होता है ।

१४२ - परमाल रासो, सं० श्यामसुन्दरदास, प्र० नागरी प्रचारिणी सभा,
सम्वत् १९७६, खण्ड ७, छन्द ५६ ।

१४३ - उपरिवत्। खण्ड ७, पृ०८४

१४४ - पृ०रा० सं० श्यामसुन्दरदास, ना०प्र० सभा, पृ०२१३५,छन्द१९२

१४५ - उपरिवत्, पृ० २११२, छन्द ४५-४६ तथा पृ० २२४८ छन्द २७४ ।

१४६ - नरोत्तमदास स्वामी, रासो साहित्य और पृथ्वीराज रासो,पृ०
१७१ ,मा०वि०शो०प्र०, प्र०सं०,सम्वत् १९८५ ।

१४७ - उपरिवत्, पृ० १७०

१४८ - General Editor, R.C. Majumdar, The struggle
for Empire, Page 136, Bhartiya Vidya Bhavan
Bombay publication, Second Edition 1966.

१४९ - उपरिवत्, पृ० ४८१ ।

१५० - उपरिवत्, पृ० ४८४ ।

१५१ - उपरिवत्, पृ० ४८४ ।

१५२ - उपरिवत्, पृ० ४८४ ।

-0-

प्रथम अध्याय

-0-

आदिकालीन हिन्दी रासो काव्य परम्परा :

--प्रकृत उद्‌भूति, प्रवृत्ति, व्याप्ति और सीमाएं --

प्रथम अध्याय

आदिकालीन हिन्दी रासो काव्य परम्परा : प्रकृति उद्भूति, प्रवृत्ति, व्याप्ति और सीमायें

(विषय- विवरणिका)

एक प्रकार रासो ग्रन्थ तथा उनकी परम्परा ; रासो शब्द व्युत्पत्ति, उत्पत्ति एवं विकास ; रासो अथवा रासक की विकासशीलता ; रासो काव्य का विभिन्न कालखण्डों में अर्थ, उद्देश्य, रूप, प्रीत एवं विषय-विन्यास ; रासो शैली- विकास के पांच सोपान ; प्रागैतिहासिककालीन नृत्य और रासो ; रासो काव्यों का रूप-गठन, रासो काव्य-रूप : समस्त काव्य रूपों का संगम ; बंध की दृष्टि से रासो काव्यों के दो रूप -- कथानक शृंखलाबद्ध अथवा प्रबन्ध श्रेणी तथा अबंध श्रेणी ; प्रबन्धात्मक रासो काव्य-- विविध छन्द बहुल, गीतात्मक और मिश्रित छन्दगीत युक्त ; अबन्धात्मक रासो काव्य-- छन्दात्मक तथा गीतात्मक ; रासो काव्यरूप का काव्य शास्त्रीय वर्गीकरण , रासो काव्यों के विविध वर्गीकरण-- कलात्मक, प्रवृत्तिमूलक, विषयपरक, धर्माधारित एवं संस्कृतिनिष्ठ आदि ; सांस्कृतिक परिदृश्य और रासो काव्य ; सन्दर्भ-सरणि ।

-o-

प्रथम अध्याय
-0-

आदिकालीन हिन्दी रासो काव्य परम्परा :
-- प्रकृत उद्भुति, प्रवृत्ति, व्याप्ति और सीमायें --

विविध एवं विभिन्न प्रवृत्ति- प्रारूपमूलक रासोग्रन्थ अब तक लगभग एक हज़ार प्राप्त हो चुके हैं[1]। अपभ्रंशेतर काल में रासो के विषयों में अत्यधिक विस्तार हुआ। उपदेशमूलक, चरित प्रधान, दीक्षापरक, उत्सव-वैभव-वीरतापूर्ण, छन्दप्रधान, कथा प्रधान, संघवर्णन, संकीर्तनजन्य एवं ऐतिहासिकतादि विषय-विहित रास- ग्रन्थ विरचित हुए[2]। संस्कृत काव्यों में भी रास की परम्परा सुरक्षित थी, किन्तु अधिकांश रचनायें अपभ्रंश तथा गुर्जर साहित्य से ही प्रारम्भ हुई[3]। रासो-काव्यों में भारतीय संस्कृति के मूल स्वर का उद्घोष है -- इस तथ्य की सम्यक् समीक्षा तभी सम्भव है, जब कि रास-रचनापद्धति की प्रकृत उद्भुति, रासशैली की विकासशीलता, रास-काव्यों के आदि स्रोत, रासो कृतियों की रूपात्मक विवृत्ति, प्रवृत्त्यात्मक सन्निविष्टि तथा सामन्ती एवं लोकोन्मुखी संस्कृतिजन्य गुणात्मक आधृति का अन्वेषण किया जाय[4]।

`रासो` शब्द की व्युत्पत्ति के अनेकविध प्रयास विभिन्न निष्णात विद्वज्जनों द्वारा प्रस्तुत किए गए हैं। संक्षेपत: पं० रामनारायण दूगड़, कविराज श्यामलदास तथा डॉ० काशीप्रसाद जायसवाल `रहस्य` शब्द[5] से, आचार्य रामचन्द्र शुक्ल `रसायण` से[6], डॉ० श्यामसुन्दर दास तथा पाण्ड्या

जो संस्कृत `रास` अथवा `रासक` से,[7] आचार्य चन्द्रबली पाण्डेय, पं० विश्वनाथ प्रसाद मिश्र तथा डॉ० हजारी प्रसाद द्विवेदी `रासक` से,[8] फ्रांसीसी विद्वान् गार्सां द तासी ` `राजसूय` से,[9] डॉ० ग्रियर्सन `राजादेश` से,[10] प्रो० उदयसिंह भटनागर `रास` धातु से,[11] मुंशी देवीप्रसाद तथा श्री नरोत्तम स्वामी रासो का अर्थ `कथाकाव्य` से[12] और डॉ० विपिन बिहारी त्रिवेदी तथा डॉ० माताप्रसाद गुप्त ने रासो की उत्पत्ति रास छन्द से[13] मानी है। श्री पोपटलाल शाह ने `रस` से ही रासो को व्युत्पन्न माना है।[14] प्रतीति यह है कि रस-रास-रासक या रासो की व्युत्पत्ति हेतु यदि शब्दकल्पद्रुम,[15] वाचस्पत्यम् बृहत् संस्कृताभिधानम्[16] तथा श्री शाह समुच्चावसित जैन-काव्य-दोहन भाग १ की प्रस्तावना[17] का विश्लेषण करें, तब निश्चयात्मक रूप से में कहा जा सकता है कि काल-खण्डों तथा विभिन्न स्थानों में प्रत्यावर्तित रूप कुछ भी क्यों न रहे हों-- मूलत: रासो शब्द `रस` से ही व्युत्पन्न माना जाना चाहिए।

रसानां समूहो रास:` -- अथवा रसोत्पद्यते यस्मात् स रास:` के अन्तर्गत `रसो वै स:` के अनुसार ब्रह्मस्वरूप कृष्ण के अनेक रूप महारास में तथा जिसमें नृत्य-संगीतादि द्वारा रसवर्षण हो, उसे रास माना जा सकता है। वस्तुत: ऋग्वेद (८.१.२६) की वाणी `पिबत्वस्य गिर्वण:`[18] और तैत्तिरीय उपनिषद् (२.७) के वाक्य `रसो वै स:। रसं ह्येवायं लब्ध्वानन्दी भवति।`[19] के तादात्म्य पर संस्कृत `रास` धातु का भावार्थ- साम्य,[20] हमारी प्रतीति को पुष्ट करता है। इतना ही नहीं, वरन् वेद-उपनिषद् प्रयुक्त `रस` शब्द, संस्कृत में `रास` धातु तथा वीसलदेव रास,[21] उपदेश रसायन रास,[22] भारतेश्वर बाहुबलि रास,[23] महावीर रास,[24] रेवंतगिरि रास[25] और नेमिनाथ रास[26] आदि में संयोजित रास, रासक, रासह, रासउ, रासु तथा रासो आदि शब्दों में भी यत्किंचित् अर्थ-साम्य विद्यमान है।

निसर्गत: रासो-काव्यों में वेदकाल से लेकर रासो-रचनाकाल तक की सांस्कृतिक चेतना मुखरित होगी । तथ्य यह है कि रासो-काव्य का उल्लेख प्राचीन काल से ही भारतीय साहित्य में किया गया है । हरिवंशपुराण[27] और विष्णुपुराण[28] में रास की ओर इंगन किया गया है । संस्कृत के लक्षण ग्रन्थों-- नाट्यदर्पण[29], भावप्रकाश[30], साहित्य-दर्पण[31] आदि में भी 'रास', 'रासक' अथवा 'नाट्य रासक' का उल्लेख हुआ है । डॉ० कीथ का अभिमत *The Natyarasak - a ballet and pantomime*[32] इन्हीं लक्षण ग्रन्थों पर आधारित है । संस्कृत साहित्य में भासनाटक चक्रम्[33], हर्षचरित[34], वेणी संहार[35], भागवतादि[36] में रास या रासक का प्रयोग किया गया है । डॉ० दशरथ शर्मा[37], डॉ० हजारीप्रसाद द्विवेदी[38], डॉ० सुमन राज[39], डॉ० हरीश[40], डॉ० माताप्रसाद गुप्त[41] आदि उद्भट विद्वानों ने रास-काव्य रूप, रास-परम्परा और रास-शैली को स्थापित, परिभाषित एवं विकासमान होने की दिशा में गवेषणात्मक कार्य किया है । हमारा मन्तव्य यही है कि रासो-काव्यरूप की प्रकृत उद्भूति अति प्राचीन है । यह स्वरूप उतना ही प्राचीन और व्यापक है, जितना कि स्वत: 'काव्य'। रासो-काव्य परम्परा संस्कृत में साफल्यपूर्वक विद्यमान थी-- इसका प्रतीक है रिपुदारण रास[42] तथा रास और रासक की प्राचीनतम परिभाषाएं भी यही द्योतित करती हैं । डॉ० दशरथ शर्मा की मान्यता है कि इस तरह के रास प्राकृत और अपभ्रंश में भी वर्तमान रहे होंगे और उनके नर्तन, गान और अभिनय की शैली भी यही होगी[43]। प्रमुखत: अपभ्रंश काल से ही इस परम्परा का द्रुतगति से विकास हुआ[44]। किन्तु किसे पता है कि कितना आदिकालीन तथा आदिकाल से पूर्व का भारतीय वाङ्मय काल-कवलित हो चुका है ? यह कदापि सम्भव नहीं

कि संस्कृत साहित्य में प्राप्त रास-काव्यों के उपरान्त पालि-प्राकृत-अपभ्रंश कालों में रास-रासक-रासो परम्परा सर्वथा लुप्त हो गई हो। भरतमुनि, धनंजय, महाराज भोज, वाग्भट्ट, वात्स्यायन, शारदातनय, अभिनव गुप्त, यशोधर, शुभंकर, हेमचन्द्र प्रभृति आचार्य एवं मनीषी एकस्वर से रासक या रासो की विकासशीलता का उन्मेष करते हैं।[४५] निष्कर्षत: यह सिद्ध होता है कि रासो-काव्य का एक चिरन्तन स्वरूप भारतीय संस्कृति के प्रथम चरण से लेकर आज तक किसी-न-किसी रूप में प्रवर्तित रहा है। उपलब्ध साक्ष्यों के आधार पर भी संस्कृत, शौरसेनी प्राकृत,[४६] अपभ्रंश और हिन्दी के रासो-काव्य प्राप्त हो चुके हैं और यह विश्वास किया जा सकता है कि अभी अनेक भण्डार-गृहों आदि में विविध रास-काव्य और प्राप्त होंगे।

प्रस्तुत प्रकृत उद्भूति के उपरान्त यह विचारणीय है कि किस प्रकार रासो-काव्य के विभिन्न कालखण्डों में नृत्य के रूप में था।[४७] तत्पश्चात् गोपालों और गोपिकाओं के द्वारा एकसाथ मिलकर क्रीड़ा करने के अर्थ में इसका प्रयोग हुआ। यदि `रास` का अर्थ जोर से चिल्लाना मान लिया जाय तो इसका सम्बन्ध आदिम एवं वन्य नृत्यों से जोड़ा जा सकता है,[४८] बाणभट्ट के समय तक रासों में नृत्य का पूर्ण समावेश हो चुका था।[४९] रास नृत्य के ही साथ गेयता के प्रमाण भागवत् में उपलब्ध हैं।[५०] इस प्रकार रास-रासो-रासक में नृत्य और गान का अस्पष्ट मिश्रण हुआ। धीरे-धीरे कई शतियों का समय पार कर ११ वीं शती तक गान तत्त्व का प्राधान्य हो जाता है।[५१] उपदेश बाहुल्य के कारण यही गेयरास अन्तत: श्रव्यमात्र रह गए।[५२] १२ वीं शताब्दी में `रासक` को गेय उपरूपक माना गया है।[५३] नृत्य और गान का अंश कम होते-होते कथातत्त्व का प्राधान्य हुआ और इसी बारहवीं शती में कथा-प्रधान रासकों का बहुलांश प्राप्त होता है।[५४] आदिकाल

में यह परम्परा जैन कवियों द्वारा ही अक्षुण्ण हुई और यह रास विविध उद्देश्यों को लेकर लिखे जाने लगे, किन्तु मुख्यतः इन्हें हम जैन रास और अजैन रास इन दो भागों में विभाजित कर सकते हैं।[५६]

श्री शरण बिहारी गोस्वामी इन्हें एक नृत्य विशेष, एक विशेष प्रकार का काव्य और उपरूपक के रूप में अभिहित करते हैं।[५७] श्री अगरचन्द नाहटा ने इसके प्रयोग पर प्रकाश डालते हुए लिखा है कि रास एक छन्द विशेष, रस-प्रधान रचना, परवर्ती युद्ध वर्णनात्मक रूप और पश्चाद्वर्ती विनोदात्मक काव्य के रूप में द्रष्टव्य है।[५८] स्पष्टतः इन रचनाओं को इन रूपों में रखा जा सकता है--`रास`, `तालरास`, `लकुटारास`, `रासक या अथ उपरूपक`, `नृत्यरूपक` और `गेय नाटक` तथा इसके शैलीगत विकास के पांच सोपान इस प्रकार होंगे -- आदिमकालीन वन्य नृत्य, पश्चाद्वर्ती लोकनृत्य-रास, कथाप्रधान नृत्यरास, गेय आख्यान तथा वर्तमान स्वरूप।[६०] तात्त्विक दृष्टि से, यह धारणा अन्यथा न होगी कि वर्तमान उपलब्ध रासो-काव्य के उत्स प्रागैतिहासिक-नृत्य में विद्यमान थे।[६१] प्रकृति की अनुकृति, देवपूजा, अर्चना के माध्यम से, लोकप्रवृत्ति का निदर्शन तथा धार्मिक सामूहिक नृत्यगान की क्रिया प्रत्येक देश के आदिम समाज में मनोवैज्ञानिक विश्लेषण करने से प्राप्त होती है।[६२] कन्हैयालाल माणिकलाल मुंशी का यह कथन असंगत नहीं कि आर्यों का मुख्य लोकनृत्य रास था जिसे वे लोकगीतों के ही साथ नाचते थे।[६३] नीकोबार, लंका, यवनदेश, द्रविड़-क्षेत्र आदि में प्रचलित विभिन्न मण्डलाकार गीतनृत्य की प्राचीनतम परम्पराओं का अवलोकन करने से ज्ञात होता है कि वैदिककाल से पूर्व, आर्यों के अतिरिक्त भी यह परम्परा प्रचलित थी।[६४] नाट्यशास्त्र प्रणेता भरत के समय तक यह सामूहिक नृत्य की

तथा, शास्त्रीयता में आबद्ध हो चुका था और क्रमशः ताण्डव और लास्य दो रूपों में दृष्टिपथ पर आने लगा । लास्य दो प्रकार का हुआ-- देशी और मार्गी । देशी लास्य से रासो संबंधित हुआ । भाव-भेदानुसार लास्य के अनेक भेद - प्रभेद हो गए जिसमें -- रासक, दण्डरासक और मण्डलरासक उल्लेख्य हैं ।[६५] तदनन्तर रास नृत्य के साथ रासगान और रासछन्द भी प्रचलित हो गया ।[६६] इसके प्रमाण, कुवलयमालाकथा,[६७] उपमिति भव प्रपंचा कथा[६८] तथा प्रारम्भिक रासो काव्यों में उपलब्ध है ।[६९] ऐतिहासिक विकास की सरणि में यही रास नृत्यगीत, आख्यान- प्रधान होने लगे । डॉ॰ शम्भुनाथ सिंह,[७०] कन्हैयालाल माणिकलाल मुंशी[७१] और हेमचन्द्र का काव्यानुशासन[७२] तथा अनेक रासो-काव्य[७३] भी इसकी प्रामाणिकता की पुष्टि करते हैं । आज भी मूलतः प्राप्य रासशैली के अवशेष, प्रमुख तत्वों सहित-- राजस्थान के 'रासड़ो' और 'घूमर' नृत्यों में गुजरात के गरबा-नृत्य में, नागपुर की जन-जातियों के 'करमा' नृत्य में, मनीपुर-नृत्य में, और ब्रज-प्रदेश की रास-लीला में देखे जा सकते हैं ।[७४]

'रासो' शब्द रासो काव्य और रासशैली की व्युत्पत्ति उत्पत्ति और विकास की गति-नियति-निर्धारण के उपरान्त अनुसंधेय है-- रासो काव्यों की व्याप्ति, सीमा, प्रवृत्ति, रूप-गठन की शास्त्रीय पीठिका और मूल प्रोत्साहना । दूसरे शब्दों में इसे रास-परम्परा की गुणात्मक, रूपात्मक और प्रवृत्त्यात्मक व्याख्या भी कह सकते हैं । इतर दृष्टि से उक्त अध्ययन-क्रम-- कलात्मक, साहित्यरूपात्मक, छन्दात्मक, विषय-वैविध्यात्मक, धर्मपरक तथा सांस्कृतिक आदि चिन्तनाओं के साथ भी संभव है ।[७५]

रासो काव्य के रूप-गठन के साथ ही कविरचित कार्य-भावों की[७६] ' के अनुसार कवि के द्वारा सम्पन्न कार्य की ओर दृष्टि जाती है । काव्य के सम्बन्ध में भारतीय एवं पाश्चात्य आचार्यों के विचारों में एकत्व एवं पृथकत्व दोनों ही हैं । वस्तु, शैली और आनन्द

देने का शक्ति के रूप में काव्य के तीन तत्व पाश्चात्य एवं भारतीय दोनों काव्यशास्त्रों में हैं[77]। किन्तु भारतीय काव्यशास्त्र के अनुसार रस का भोक्ता सहृदय का मन है और पाश्चात्य काव्यशास्त्र कवि को ही काव्य का केन्द्रबिन्दु मानता है[78]। यों, काव्य हृदय और बुद्धि का संश्लिष्ट है[79]। यह मान्यता भी सार्थक है कि कवि के स्वभाव, संस्कार और देशकाल की परिस्थितियों के अनुसार ही काव्य की निर्मिति होती है[80]। निस्सन्देह युग-धर्म के बदलने पर काव्य के संकेत या प्रतीक बदलते हैं, भाषा का रूप बदलता है, व्याकरण के नियम बदलते हैं और छन्द के बंध टूटते हैं[81]। रासो काव्य रूप की अन्तर्धारा में अवगाहन करने पर पाश्चात्य और पौर्वात्य का मिलन-बिन्दु प्राप्त होता है। न जाने कितने युगों की अन्तश्चेतना `रासो` शब्द में निहित है `रासो` और `काव्य` दोनों ही व्यापकता की दृष्टि से समकक्ष हैं। काव्य के अन्तर्गत -- प्रबन्ध, अबन्ध और बन्धाबन्ध मुख्य भेद हैं। प्रबन्ध के पुन: दो भेद-- महाकाव्य और खण्डकाव्य हैं। अबन्ध भी गीतिकाव्य और मुक्तक में विभाज्य है और इसी प्रकार बन्धाबन्ध काव्य भी नाट्यात्मक, स्वानुभूतिप्रधान तथा आख्यान प्रधान में रखा जा सकता है। नाटकीय गीति और गीतिनाट्य काव्यात्मक वर्ग में तथा स्वानुभूति प्रधान वर्ग में आत्मनिवेदनात्मक तथा अतिसंगीतात्मक यहां दो भेद किए गए हैं[82]। यद्यपि पश्चिम में अन्त:प्रेरणा के आधार पर काव्यभेद किए गए हैं, किन्तु भारतीय आचार्यों एवं आलोचकों को बन्ध की दृष्टि से उक्त विभाजन ही अधिकांशत: मान्य हुआ[83]।

सम्पूर्ण रासो काव्य परम्परा का अध्ययन करने पर यह मत व्यक्त किया जा सकता है कि रासो काव्य रूप, उक्त काव्य-विभाजन की किसी भी कोटि में नहीं समाता, यह सम्भव है कि यह

सभी काव्यरूप 'रासो' में समाहित हो जायं। रासो काव्यों में महाकाव्य की महदुद्देश्यमयी भूमिका है, खण्डकाव्यों का रूपराशि है, गीतिकाव्य की व्यष्टिनिष्ठा है, और है मुक्तकों का उन्मुक्त विकास।

भारतीय आचार्यों ने काव्य-स्वरूप वर्गीकरण के अनेकधा प्रयास किए हैं, जिनमें -- भामह,[84] दण्डी,[85] आनन्दवर्द्धन,[86] राजशेखर,[87] मम्मट,[88] विश्वनाथ[89] और हेमचन्द्र[90] के विभाजन प्रमुख हैं। पाश्चात्य काव्यशास्त्रियों-- अरस्तू,[91] क्रोचे,[92] डब्ल्यू० पी० केर[93] आदि के द्वारा भी महाकाव्य, खण्डकाव्य, गीतिकाव्य और मुक्तक काव्य के लक्षण प्रस्तुत किए गए हैं। किन्तु रासो काव्यों को समग्रत: इन किन्हीं रूपों में बांधना असम्भव है। निष्कर्षत: हम रासो काव्यों की रचना-पद्धति के सम्बन्ध में कह सकते हैं कि -- यद्यपि रासोकाव्य महाकाव्य,खण्डकाव्य, गीतिकाव्य और मुक्तक परम्परा में रूढ़िगत अर्थ में नहीं है तथापि बन्ध की दृष्टि से रासो काव्यों के दो रूप हैं-- एक तो जिनमें कथानक शृंखलाबद्ध है और दूसरा जिनमें प्रत्येक छन्द अर्थ की दृष्टि से स्वतंत्र है। पहले प्रकार को प्रबन्ध श्रेणी में तथा दूसरे प्रकार को अबंध श्रेणी में रखा जा सकता है। यदि प्रबन्धात्मक रासो काव्यों को देखें तो इनमें काव्य-शास्त्रीय दृष्टि से-- महाकाव्य, खण्डकाव्य और प्रबन्ध आख्यान तीनों के ही यत्किंचित् लक्षण प्राप्त हो जाते हैं। वस्तुत: इन्हें प्रबन्धात्मक चरित काव्य कहना ही अधिक समीचीन प्रतीत होता है।

अबन्धात्मक रासो काव्यों को भी छन्दात्मक और गीतात्मक, दो कोटियों में रखा जा सकता है। छन्दात्मक को पुन: स्फुट छन्दात्मक, प्रशस्ति छन्दात्मक और छन्द संग्रहात्मक श्रेणियों में विभक्त किया जा सकता है। इसी प्रकार गीतात्मक को भी -- जैन शैली

और वैष्णव शैली में विभक्त कर गीतितत्वों[९४] का खोज न कर केवल यही अनिवार्यता है कि इनका अभिज्ञान बिना पूर्व प्रसंग जाने हुए सम्भव नहीं, यथा-- नेमिनाथ रास ।

प्रबन्धात्मक रासो काव्यों को केवल छन्दों की दृष्टि से भी विभाजित किया जा सकता है । इसके अन्तर्गत -- (१) विविध छन्दबहुला परम्परा, (२) गीतात्मक परम्परा और (३) मिश्रित छन्द गीत परम्परा को रखा जा सकता है । प्रथम कोटि में पृथ्वीराज रासो (७२ प्रकार के छन्द) भारतेश्वर बाहुबलि-रास (आद्यन्त एक छंद), परमाल रासो, और हम्मीर रासो रखे जा सकते हैं । द्वितीय कोटि में, लोकगीतों पर आधारित आदि से अन्त तक एक ही प्रकार का प्रयोग है । बीसलदेव रास तथा नेमिनाथ रास इसी धारा के रासोकाव्य हैं । तीसरी श्रेणी के वह रास काव्य हैं, जिनमें अनेक लयों पर आधारित ढाल प्रयुक्त होते हैं और कहीं कहीं दोहा आदि संयोजन का कार्य करते हैं[९५] ।

डॉ० माताप्रसाद गुप्त ने रासो काव्यों को दो श्रेणियों में रखा है-- एक, गीतिनृत्यपरक रासो परम्परा और दूसरी छन्द वैविध्यपरक रासो-धारा[९६] । किन्तु गुप्त जी का यह विभाजन काव्यशास्त्रीय तत्वों से सर्वथा परे है । इसी प्रकार अन्य आलोचकों-- डॉ० हजारीप्रसाद द्विवेदी[९७], डॉ० दशरथ शर्मा[९८] और डॉ० हरीश[९९] आदि ने भी काव्यशास्त्र की मान्य मर्यादाओं के आधार पर रासो काव्यों के `रूप` का पर्यालोचन नहीं किया । उक्त विवेचन के के आधार पर रासो काव्य रूप का काव्यशास्त्रीय धरातल पर वैज्ञानिक वर्गीकरण निम्नवत् प्रस्तुत किया जा सकता है[१००] ।
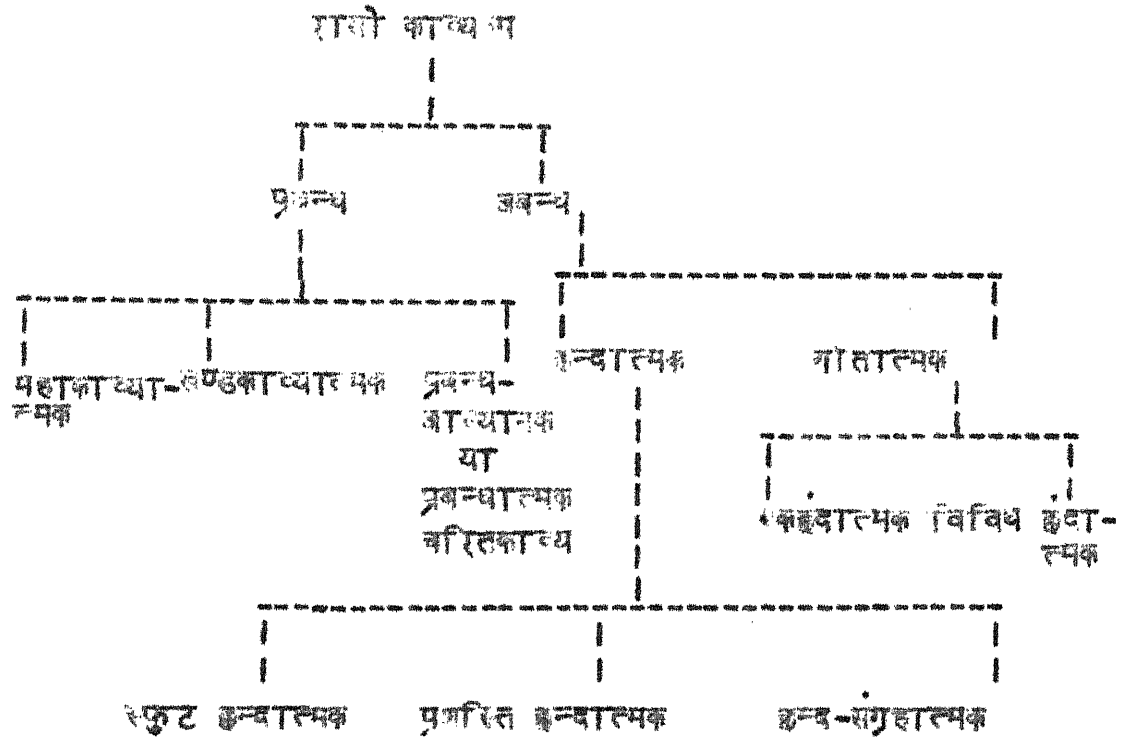
कलात्मक दृष्टि से भी मुनि भरत ने रासक या रासो के तीन भेद किए हैं -- ताल रासक, मण्डल रासक और दण्ड रासक[१०१]। इसी प्रकार प्रवृत्तिमूलक, विषयपरक, वर्णाधारित तथा संस्कृतिजन्य विभाजन भी सम्भव है[१०२]। किन्तु यह काव्यशास्त्र - परम्परा-विहित वर्गीकरण न होकर रासो काव्यों की प्रवृत्यात्मक व्याख्या ही होगी, जिसका संश्लिष्ट संभार आगे पृष्ठांकित है।

सांस्कृतिक प्रश्नों के आधार पर तत्सम्बन्धी साहित्यिक प्रवृत्ति की व्याख्या पी०सोरोकिन ने अपने ग्रन्थ सोशल एण्ड कल्चरल डाइनेमिक्स में की है[१०३]। मूलतः सोरोकिन को ही आधार बनाकर डॉ०गणपतिचन्द्र गुप्त ने भी साहित्यिक प्रश्नों का प्रवृत्यात्मक विश्लेषण प्रस्तुत किया है[१०४]।

इन प्रणयों एवं प्रवृत्तियों पर वातावरण के प्रभाव की अन्विति का निदर्शन भी गुप्त जी ने किया है[२०५]। आदर्शपरक, यथार्थपरक और स्वच्छन्दतापरक प्रणयों का, धर्माश्रय, राज्याश्रय और लोकाश्रय के आधार पर प्रवृत्तिमूलक अध्ययन के विविध क्षेत्रों में किया जा सकता है-- मनोवैज्ञानिक, दार्शनिक, सांस्कृतिक, साहित्यिक-तत्व, विषय-वस्तु, पात्र, घटनाएं, रस एवं भावात्मक प्रवृत्तियां तथा कलात्मक प्रयोजन आदि।

सांस्कृतिक परिदृश्य में रासोकाव्य अथवा रासो काव्यों में सांस्कृतिक अभिव्यक्ति ही हमारा अभीष्ट है। रासो साहित्य की प्रवृत्तिमूलक व्याख्या में भी संस्कृति-निष्ठ विन्यास का आधार-पीठिका समन्वित है। साहित्यिक प्रवृत्ति की दृष्टि से आलोचकों ने इसे नृत्यमूलक गेयरूपक की संज्ञा दी है[२०६] तथा गेय उपरूपक के रूप में रासक या रासो के अन्तर्गत-- अधिकांश पद्यात्मकता, विविध रागों का समावेश, अनेक छन्द, लय-ताल-संगीत का समन्वय, विविध-अभिनेयता, मण्डल-विभक्ति, अनेक युगलों की सह क्रीड़ा, वस्तु में रस की अनिवार्यता, आदि लक्षण बताए हैं[२०७]। विषयवस्तु की व्याप्ति और सीमा का अंकन भी किया गया है[२०८], जिसमें-- इतिवृत्तात्मक, उपदेशपरक, चरित्रप्राधान्य, उत्सव-संबंधित, प्रशस्तिपूर्ण तथा प्रव्रज्या-दीक्षा-शौर्य- संघ-वैभव- वीरता सम्पृक्त और कथा प्रधान एवं छन्द-वैविध्यपरक रासो काव्यों की चर्चा की गई है[२०९]।

निर्णयात्मक दृष्टि से रासो काव्यों की प्रकृति, प्रवृत्ति, विशिष्टता एवं मूलस्रोतस्विनी की आधायिका शक्ति 'काव्य' शैली ही है। इनमें इतिहास, पुराण, आख्यान, गाथाएं, लोक जीवन

लौकिक रूढ़ियां और समसामयिक संघटनाएं ही आधारपीठ हैं । इनसाइक्लोपीडिया ब्रिटेनिका में इतिहास और पुराण को एक माना गया है । धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष से युक्त वृत्त को ही भारतीय दृष्टि से इतिहास की संज्ञा दी गई है ।[181] महाभारत और रामायण दोनों ही इतिहास-ग्रन्थ मान लिए गए हैं ।[182] वायुपुराण, शिवपुराण तथा शतपथ ब्राह्मण में भी इतिहास पुराण एक साथ प्रयुक्त हुए हैं ।[183] रासो काव्यों में जहां एक ओर ऐतिहासिकता का समावेश है, वहीं दूसरी ओर पौराणिकता भी अनुस्यूत है ।

डॉ० एस०के० डे के अनुसार ऋग्वेद के संवाद सूक्त भी पौराणिक और निजन्धरी आख्यान हैं ।[184] रासो काव्यों में भी वेद-निरुक्त - पुराण- उपनिषदादि से मूलत: कथा-आख्यान ग्रहण किए गए हैं ।

अस्तु, रासोकाव्य समग्रत: लोकजीवन की विजय-वाहिनी का ही शंखनाद करते हैं । हिन्दी विश्वकोश में परिभाषित लोक- लोक्यते इति लोक:[185] तथा भारतीय परम्परा विहित अग्निपुराण महाभारत, भगवद्गीतादि[186] की लोकवेदविधि की अनुरूपिणी सत्ता का ऐतिह्य ही इन रासो काव्यों की धरोहर है ।

सन्दर्भ-सरणि

(प्रथम अध्याय)

सन्दर्भ- सारिणि

(प्रथम अध्याय)

१ -(अ) डॉ० दशरथ ओझा तथा डॉ० दशरथ शर्मा, रास और रासान्वयी काव्य, प्रस्तावना, पृष्ठ ८ । प्र० नागरी - प्रचारिणी सभा, वाराणसी, प्र० सं०, सम्वत् २०१६ ।

(ब) डॉ० दशरथ ओझा, हिन्दी नाटक : उद्भव और विकास, पृ० ८३, प्र० राजपाल एण्ड सन्स,दिल्ली,पंचम सं०,१९७०ई० ।

२- डॉ० हरिशंकर शर्मा `हरीश` आदिकाल के अज्ञात हिन्दी रास-काव्य, पृ०१४, मंगल प्रकाशन, जयपुर, प्र०सं०,१९६९ई० ।

३- डॉ० हरिशंकर शर्मा `हरीश`, आदिकालीन हिन्दी साहित्य-शोध, पृ० १५६, साहित्य भवन प्रा० लि०,इलाहाबाद,प्र०सं०

तथा

डॉ० माताप्रसाद गुप्त, रासो साहित्य विमर्श,पृ०२, साहित्य-भवन प्रा० लिमिटेड, इलाहाबाद, प्र०सं० ।

४- (अ) पं० सदाशिव दीक्षित, रासो समीक्षा, मोतीलाल बनारसी-दास,वाराणसी ।

(ब) डॉ० सुमन राजे, हिन्दी रासो काव्य परम्परा प्र० ग्रन्थम्, कानपुर, प्र०सं०, १९७३ई० ।

(स) डॉ० हरिशंकर शर्मा `हरीश`,आदिकाल के अज्ञात हिन्दी रास काव्य, मंगल प्रकाशन, जयपुर, प्र०सं० ।

(द) डॉ० हजारीप्रसाद द्विवेदी, संक्षिप्त पृथ्वीराज रासो साहित्य भवन, प्रा० लिमिटेड, इलाहाबाद, पंचम सं०, १९६८ई० ।

(य) डॉ० हरिशंकर शर्मा 'हरीश' आदिकालीन हिन्दी साहित्य शोध, साहित्य भवन प्रा० लि०,इलाहाबाद, प्र०सं०,१९६६ई०।

(र) श्री नरोत्तमदास स्वामी, रासो-साहित्य और पृथ्वीराज-रासो, प्र० भारतीय वि०शो०प्र० बीकानेर, प्र०सं० सम्वत् १९८५ ।

५- श्री नरोत्तमदास स्वामी, रासो साहित्य और पृथ्वीराज रासो, पृ०१, भा०वि०शो० प्र० बीकानेर,प्र०सं०, सम्वत् १९८५ ।

६- आचार्य रामचन्द्र शुक्ल, हिन्दी साहित्य का इतिहास,पृ०३७ सम्वत् १९९९ संस्करण ।

७- डॉ० श्यामसुन्दरदास,पृथ्वीराज रासो,पृ०१९३,ना०प्र०सभा, वाराणसी ।

८- डॉ० हजारीप्रसाद द्विवेदी, सन्देश रासक, हिन्दी ग्रन्थ-रत्नाकर, प्रा०लि०,बम्बई-४, द्वि० सं० ।

९- गार्सां द तासी, इस्त्वार द ला लितेरात्यूर ऐन्दुई ए ऐन्दुस्तानी, अनुवादक, डा० लक्ष्मीसागर वार्ष्णेय,पृ०३८२-८३।

१०- डॉ० ग्रियर्सन, सरस्वती भाग ३, पृ०९७ ।

११- प्रो० उदयसिंह भटनागर,अनुशीलन अंक ४,अक्टूबर-दिसम्बर१९५५ई०।

१२- श्री नरोत्तम स्वामी, राजस्थान भारती भाग१,अंक १,अप्रैल१९४६ई०।

१३- (अ)डॉ० विपिन बिहारी त्रिवेदी, रेवा तट समय, भूमिका, पृ०१३५, प्र० हिन्दी विभाग, लखनऊ विश्वविद्यालय, लखनऊ, १९५३ई० ।

(ब)डॉ० माताप्रसाद गुप्त, रासो काव्य-धारा, हिन्दी साहित्य, द्वितीय खण्ड, पृ०१०० ।

१४- श्री पोपटलाल शाह, जैन काव्य दोहन, भाग१, प्रस्तावना, पृ० ७ ।

१५- शब्द कल्पद्रुम, चतुर्थ भाग, पृ०९९-१०३ ,तथा १५८-१५९, चौखम्भा प्रकाशन, वाराणसी ।

१६- वाचस्पत्यम् बृहत् संस्कृताभिधानम्, षष्ठो भाग:,पृ०४७९४-४७९७ व ४८०७, चौखम्भा प्रकाशन, वाराणसी ।

१७- श्री पोपट लाल शाह, जैन काव्य दोहन, भाग १,प्रस्तावना, पृ०७ ।

१८- ऋग्वेद ८ ।१ ।२६

१९- तैत्तिरीय उपनिषद् २।७

२०- डॉ० सुमन राजे, हिन्दी रासो काव्य परम्परा,पृ०९, प्र० ग्रन्थम्, रामबाग,कानपुर-१२, प्र०सं०१९७३ ।

२१- उपरिवत्, पृ०९

गायो हो रास सुणे सब कोई ।

२२- उपरिवत्, पृ०९--

चर्चरी-रासक प्राभ्ये प्रबन्धे प्राकृते किल वृत्ति प्रवृत्तिं
नायन्ते प्राय: को पि विचक्षण: प्राकृत भाषया
धर्मरसायनाख्यो रासकश्चक्रे ।

२३- उपरिवत्, पृ०९

हुं हिव पभाणिसु रासह छंदिहिं, तं जनमनहर मन आणंदिहि ।

२४- उपरिवत्, पृ०९

'इय मियमाणि उल्लारि रास लहुड मविवयण दियहु '

२५- उपरिवत्, पृ०९

माणंसु राहु रेवंतगिरे, अंबिके देवी सुमरेवि ।

२६- उपरिवत्, पृ०६

नंदावर धनु जासु निवारी पमणउनेमि जिणंदह रासो ।

२७- सम्पादक, डॉ० दशरथ ओझा तथा डॉ० दशरथ शर्मा, रास और रासान्वयी काव्य, पृ०२६, ना०प्र०सभा, वाराणसी, प्र०सं०--

ताश्चु, पंक्ता कृता: सर्वांरमयन्ति मनोरमम् ।
गायन्त्य: कृष्ण चरितं द्वन्दशो गोप कन्यको: ।।

तथा

एवं स कृष्णो गोपो नां चक्र वालैर लंकृत:
शारदोषु सचन्द्रासु निशासु मुमुदे सुखो ।।

--हरिवंशपुराण, विष्णु पर्व, अध्याय२०,श्लोक३५।

२८- तत: कांचित् प्रिया लापै: कांचिद्भ्रुभंगवीक्षितै: ।
निन्ये नुनय मन्यां च करस्पर्शेन माधवा: ।।
ताभि: प्रसन्नचित्ताभि: गोपीभिस्सह सादरम् ।
रास रासगोष्ठीभिरुदार चरितो हरि: ।।
रासमण्डलबन्धो पि कृष्णपार्श्वमनुज्भता ।
गोपीजनेन नैवाभुदेक स्थानस्थिरात्मना ।।
हस्तेन गृह्य चैकैकां गोपीनां रासमण्डलम् ।
चकार तत्करस्पर्शनिमीलितदृशं हरि: ।।

--श्रीविष्णुपुराण, पंचम अंश, ४७-५० ।

२९- मुनि भरत, नाट्यदर्पण, ओरियण्टल इन्स्टीट्यूट,बड़ौदा, पृ०२१४-२१५ --

षोडस द्वादशाष्टौ वा यस्मिन् नृत्यन्ति नाय(यि)का: ।
पिण्डीबन्धादि विन्यासै रासकं तदुदाहृतम् ।।

पिंडनात् तु भवेद् पिंडी गुम्फनाच्छृंखला भवेत् ।
भेदनाद भेद्यको जातो लता जालापनोदत: ।।
कामिनीभिर्भुवो भर्तुश्चेष्टितं यत्तु नृत्यते ।
रागद् वसन्तमासाद्य स ज्ञेयो नाट्य रासक: ।।

३०- शारदातनय, भावप्रकाशम्, पृ०४६

लस् संश्लेषणा इत्यस्य धातोर्लास्यस्य निर्वह:
संश्लेषादंगहाराणामंगे लास्यं प्रचक्षते ।।

++ ++ ++

वृत्तिरारभटी गीतकाले तत्ताण्डवं विदु: ।
चण्डोच्चण्ड प्रचण्डादिभेदात्तत्ताण्डवं त्रिधा
अनुद्धतं चोद्धं कथात्युद्धतादिकमित्यपि,
तत्ताण्डव भेदस्तु परस्तादेव वक्ष्यते /
ललितैरंग हारैश्च निर्वर्त्यं ललितैर्लयै: ।
वृत्ति: स्यात्कैशिकी गीते यत्रं तल्लास्यमुच्यते ।

३१- विश्वनाथ, साहित्यदर्पण, षष्ठ परिच्छेद, चौखम्भा-
विद्याभवन, चौक, वाराणसी, संस्करण ।

रासकं पंचपात्रंस्यान्मुखनिर्वहणान्वितम् ।
भाषा विभाषा भूयिष्ठं भारती कौशिकी युतम् ।
असूत्रधारमेकांकं सवीथ्यंगं कलान्वितम् ।
श्लिष्टनान्दीयुतं स्यातनायिकं मूर्खनायकम् ।
उदात्तभावविन्यासंश्रितं चोत्तरोत्तरम् ।
इह प्रतिमुखं संधिमपि केचित्प्रचक्षते ।

३२- डॉ० दशरथ ओझा, हिन्दी नाटक : उद्भव और विकास,
पृ०७६ । प्र० राजपाल एण्ड सन्स, दिल्ली, पं०सं०१६७० ।

३३- श्री सी०आर० देवधर एम०ए०, भास नाटक चक्रम्, ओरियण्टल-बुक एजेन्सी, पृ० ५३६ ।

३४- हर्षचरित महाकाव्यम्, चतुर्थ उच्छ्वास पुत्र जन्मोत्सव ।

३५- वेणी संहारे प्रथमोंक: -- श्लोक २

३६- श्रीमद्भागवत, दशम स्कन्ध, अध्याय २९-३३

भगवानपि ता रात्री: शरदोत्फुल्ल मल्लिका: ।

वीक्ष्य रन्तुं मनश्चक्रे योगमायामुपाश्रित: ॥

++ ++ ++

विक्रीडितं व्रजवधूभिरिदं च विष्णो: ।

श्रद्धान्वितो नु शृणुयादथ वर्णयेद् य: ॥

भक्तिं परां भगवति प्रतिलभ्ये कामं ।

हृद्रोगमाश्वपहिनोत्यचिरेण धीर: ॥

३७- डॉ० दशरथ शर्मा, रास और रासान्वयी काव्य प्र०ना०प्र० सभा, वाराणसी, प्र०सं० सम्वत् २०१६ ।

३८- डॉ० हजारीप्रसाद द्विवेदी, सन्देश रासक,भूमिका,हिन्दी-ग्रन्थ - रत्नाकर, प्रा०लि०,बम्बई-४, द्वि०सं०, १९६५ई० ।

३९- डॉ० सुमन राजे, हिन्दी रासो काव्य परम्परा, ग्रन्थम् प्र०, प्र०सं०, १९७३ई० ।

४०- डॉ० हरिशंकर शर्मा हरीश ,आदिकालीन हिन्दी साहित्य शोध, साहित्य भवन प्रा०लि०,इलाहाबाद,प्र०सं०१९४६ई० ।

४१- डॉ० माताप्रसाद गुप्त, रासो साहित्य विमर्श, साहित्य भवन-प्रा० लि०, प्र०सं० १९६२ई० ।

४२- डॉ० दशरथ शर्मा हरीश, आदिकालीन हिन्दी साहित्य शोध, पृ०१६२ प्र० साहित्य भवन प्रा०लि०, प्र०सं०१९६६ई० ।

४४- उपरिवत्, पृ० १६२ ।

४५- उपरिवत्, पृ० १५६-१५७-१५८ ।

४६- परिशिष्ट, ~~~~ प्रस्तुत शोध-प्रबन्ध ।

४७- डॉ० हजारीप्रसाद द्विवेदी, सन्देश रासक (अब्दुल रहमानकृत) पृ०५६, प्र० हिन्दी-ग्रन्थ-रत्नाकर(प्राइवेट) लिमिटेड,बम्बई-४ द्वि०सं०, १९६५ई० ।

४८- उपरिवद, पृ०५६-६०

४९- उपरिवत्, पृ०६०

५०- उपरिवद, पृ०६१

५१- उपरिवत्, पृ०६३

५२- उपरिवत्, पृ०६३

५३- उपरिवत्, पृ०६४

५४- उपरिवद,पृ०६५-६६

५५- उपरिवत्, पृ०६६

५६- उपरिवत्, पृ०६६

५७- श्री शरणबिहारी गोस्वामी, त्रिपथगा, अक्टूबर, १९५७ई०,पृ०५३

५८- श्री अगरचन्द नाहटा, नागरी प्रचारिणी पत्रिका, अंक ४, सम्वत् २०११, पृ०४२० ।

५९- डॉ० हरिशंकर शर्मा 'हरीश', आदिकालीन हिन्दी साहित्य शोध, पृ०१६१,प्र० साहित्य भवन प्रा०लि०,प्र०सं०,१९६६ई० ।

६०- डॉ० सुमन राजे, हिन्दी रासो काव्य परम्परा,पृ०२९,प्र०ग्रन्थम्, रामबाग,कानपुर-१२,प्र०सं० १९७३ई० ।

६१- उपरिवद, पृ०२९ ।

६२- उपरिवत्, पृ०३०

६३- डॉ० के०एम० मुंशी, गुजरात एण्ड इट्स लिट्रेचर,पृ०१३६ ।

६४- डॉ० सुमन राजे, हिन्दी रासो काव्य परम्परा,पृ०३१

६५- उपरिवत्, पृ०३२ ।

६६- उपरिवत्, पृ०३३ ।

६७- डॉ० दशरथ शर्मा, मरु भारती, वर्ष८, अंक १ ।

६८- मरु भारती, वर्ष४, अंक २, जुलाई १९५६ई० ।

६९- डॉ० सुमन राजे, हिन्दी रासो काव्य परम्परा,पृ०३९ ।

७०- डॉ० शम्भुनाथ सिंह, हिन्दी महाकाव्य का स्वरूप और विकास, पृ०६-७ ।

७१- डॉ० के०एम० मुंशी, गुजरात एण्ड इट्स लिटरेचर ,पृ०१३७ ।

७२- डॉ० सुमन राजे, हिन्दी रासो काव्य परम्परा, पृ०४३ ।

७३- उपरिवत्, पृ०४४ ।

७४- उपरिवत्, पृ०४५

७५- डॉ० हरिशंकर शर्मा, `हरीश` आदिकालीन हिन्दी साहित्य शोध,पृ०१६२-१६३ ।

७६- डॉ० वासुदेव नन्दन प्रसाद, साहित्य का विश्लेषण, पृ०६, प्र० भारती भवन, पटना-४ ।

७७- उपरिवत्, पृ०१३-१४

७८- उपरिवत्, पृ०१४

७९- डॉ० शकुन्तला दुबे, काव्यरूपों के मुल स्रोत और उनका विकास, पृ०७, प्र० हिन्दी प्रचारक पुस्तकालय,वाराणसी-१, १९६४ई०

८०- डॉ० वासुदेवनन्दन प्रसाद, साहित्य का विश्लेषण,पृ०१७, प्र० भारती भवन,पटना-४ ।

८१- उपरिवत्, पृ०१६

८२- डॉ० शकुन्तला दुबे, काव्यरूपों के मुल स्रोत और उनका विकास, द्वितीय अध्याय, पृ०३१ ,हिन्दी प्रचारक पुस्तकालय,वाराणसी-१

८३- उपरिवत्, पृ०३७ ।

८४- भामह, काव्यालंकार, परिच्छेद १, पृ० २-३-४--

शब्दार्थौ सहितौ काव्यं गद्यं पद्यंच तद्द्विधा ।
संस्कृतं प्राकृतं चान्यदपभ्रंश इति त्रिधा ।।
सर्गबन्धो भिनेयार्थं तथैवाख्यायिका कथे ।
अनिबद्धंच काव्यादि तत्पुन: पंचधोच्यते ।
अनिबद्धं पुनर्गाथाश्लोकमात्रादि तद् पुन: ।
युक्तं वक्रस्वभावोक्त्या सर्वमेवैतदिष्यते ।।

८५- आचार्य दण्डी, काव्यादर्श, प्रथम परिच्छेद, पृ०८-६

गद्यं पद्यंच मिश्रंचतत त्रिधैव व्यवस्थितम्
पद्यं चतुष्पदी तच्च वृत्तं जातिरिति द्विधा ।।
छन्दोविचित्यां सकलस्तत प्रपंचो निदर्शित:
सा विद्या नौस्तितीर्षूणां गम्भीरं काव्य सागरम्
मुक्तकं कुलक कोष: संघात इति तादृश: ।
सर्गबन्धांग रूपत्वादनुक्त: पद्य विस्तर: ।

८६- आनन्दवर्धन, ध्वन्यालोक, तृतीय उद्योत, पृ० १४३-१४४

मुक्त मन्येनाश्नालिंगितम् । तस्य संज्ञायांकन ।
तेन स्वतन्त्रतया । परिसमाप्तनिराकांक्षार्थमपि
प्रबन्ध मध्यवर्ती मुक्तकमित्युच्येत् ।
पूर्वापरनिरपेक्षेणापि हि येन रस चर्वणा क्रियते तदेवमुक्तकम् ।

८७- राजशेखर, काव्य-मीमांसा, नवम् अध्याय, पृ०४६

मुक्तक प्रबन्धविषयत्वेन । तावपि प्रत्येकं पंचधा शुद्ध: चित्र:
कथोत्थ: संविधानम, आख्यानक वाश्च । तत्र मुक्तोतिवृत्त:
शुद्ध: । स एव सप्रपंचश्चित्र: । वृत्तोतिवृत: कथोत्थ: ।
सम्भावितेतिवृ: संविधानकभु: । परिकल्पितेतिवृत:
आख्यानक वान् ।।

८८- रुद्रट, काव्यालंकार, षोडशोऽध्याय: श्लोक संख्या--
२-३-४-५-६-७-८-९

सन्ति द्विधा प्रबन्धा: काव्य कथाख्यायिकादय:काव्ये
उत्पाद्यानुत्पाद्या महल्लघुत्वेन भूयो पि । इत्यादि ।

८९- विश्वनाथ, साहित्यदर्पण, षष्ठ परिच्छेद,श्लोक संख्या--
३१४-३१५-३१६-३१७-३१८-३१९-३२०-३२१-३२२-३२३-३२४-
३२५-३२६-३२७-३२८ ।

श्रव्यं श्रोतव्यमात्रं तत्पद्यगद्यमयं द्विधा ।
छन्दोबद्धपदं पद्यं तेन मुक्तेन मुक्तकम् ।
द्वाभ्यां तु युग्मकं सदानितकं त्रिभिरिष्यते ।।

इत्यादि ।

९०- हेमचन्द्र, काव्यानुशासन, अध्याय ८,सू०३-५-६

९१- Aristolles Poetics- Part III of the epic poem, Every Man's Library Edition-1949 editor, T.A. Moxon, Page 46, 47.

९२- Abercrobie, The Epic,Page 40, 41.

९३- W.P. Ker, Epic And Romance, Page 17.

९४- डॉ० सुमनराजे, हिन्दी रासो काव्य परम्परा,पृ०७६६-६७,प्र० ग्रन्थम् कानपुर,प्र०सं० ।

९५- उपरिवत्, पृ०६३

९६- डॉ० माताप्रसाद गुप्त, रासो साहित्य विमर्श,पृ०७-३३ प्रकाशक, साहित्य भवन प्रा० लि०, इलाहाबाद,प्र०सं०१९६२ई० ।

९७- डॉ० हजारीप्रसाद द्विवेदी,सन्देश रासक, पृ०५९-७१,प्र०हिन्दी-ग्रन्थ-रत्नाकार,(प्रा०) लिमिटेड,बम्बई-४ ।

९८- डॉ० दशरथ शर्मा, रास और रासान्वयी काव्य,पृ०१-१३
प्र० नागरी प्रचारिणीसभा, वाराणसी,प्रथम संस्करण संवत्
२०१६ ।

९९- डॉ० हरिशंकर शर्मा `हरीश`,आदिकालीन हिन्दी साहित्य शोध,
पृ०१५६-१६५, प्र० साहित्य भवन प्रा०लि०,प्र०सं० ।

१००- प्रबन्धात्मक रासो रचनाएं भी विविध छन्दात्मक,एक छंदात्मक
तथा मिश्रित छंदात्मक-- इन तीन रूपों में रखी जा सकती हैं ।
इसी प्रकार अबन्ध गीतात्मक एवं विविध छन्दात्मक रासो रचनाएं
भी आद्यन्त एक लय-एक ध्रुवक रूप में तथा अनेकलय- अनेक ध्रुवक रूप
में वर्गीकृत की जा सकती हैं--अनुसंधायक ।

१०१- डॉ० हरिशंकर शर्मा हरीश आदिकालीन हिन्दी साहित्य शोध,
पृ० १६३ ।

१०२- उपरिवत्, पृ०१६२-१६३-१६४ ।

१०३- डॉ० गणपतिचन्द्र गुप्त, हिन्दी साहित्य का वैज्ञानिक
इतिहास, प्र० भारतेन्दु भवन, चण्डीगढ़-२,पृ०५१ ।

१०४- उपरिवत्, पृ०५३

१०५- उपरिवत्,पृ०५८

१०६- डॉ० हरिशंकर शर्मा `हरीश`,आदिकालीन हिन्दी साहित्य शोध
पृ०१६३,प्र० साहित्य भवन प्रा०लि० इलाहाबाद,प्र०सं०१९६६ई० ।

१०७- उपरिवद, पृ०१६४

१०८- उपरिवत्, पृ०१६४ ।

१०९- उपरिवत्, पृ०१६४

११०- Encyclopedia Britanica, Vol.19, 11th Edition, Page 128.

१११- डॉ० सुमन राजे, हिन्दी रासो काव्य परम्परा,पृ०७०,प्र०
ग्रन्थम्,रामबाग,कानपुर-१२,प्र०सं०१९७३ई० ।

११२- महाभारत, आदि पर्व-- १-१७

मारतस्येतिहासस्य पुण्यां ग्रन्थार्थसंयुताम्

++ ++ ++

रामायण, युद्धकाण्ड--१२८-१४४

पुजयश्च पठश्चैनं इतिहासं पुरातनम् ।

११३- वायुपुराण, १-२००।२०१, पद्म ५-२-५० आदि तथा शिवपुराण, ५-१-३५ एवं शतपथ ब्राह्मण, काण्ड११ अध्याय ५--

"क्षीरौदनमांसौदनाभ्यां ह वा एव देवास्तर्पयति य एवं विद्वान्को वाक्यमितिहास पुराणमित्या हरहः स्वाध्यायमधीते त एतन्तृप्तस्तर्पयन्ति सब कामै: सर्वे भोगै: "

११४- S.K. De, A History of Sanskrit Literature Page 43, 44, Calcutta 1947 Eidtion.

११५- हिन्दी विश्वकोष, लोक(सं०पु०) लोक्यते इति लोक:, सप्तलोक--

भू, भुव, स्व, मह, जन, तप और सत्य ।

११६- डॉ० सुमनराजे, हिन्दी रासो काव्य परम्परा, पृ०७१, प्र०ग्रन्थम्, रामबाग, कानपुर-१२, प्र०सं० १९७३ई० ।

-o-

द्वितीय अध्याय

-0-

साहित्येतर स्रोताधारित तत्कालीन भारत : परम्परामूलक संस्कृति- निकष

द्वितीय अध्याय

साहित्येतर स्रोताधारित तत्कालीन भारत : परम्परा मूलक संस्कृति-निकष

(विषय- विवरणिका)

आलोच्यकालीन भारत का संस्कृति-निकष--अभिलेख, स्मारक, मुद्राएं, धर्म तथा दर्शन ग्रन्थ, देशी- विदेशी इतिहास-ग्रन्थ, ललितकलाएं एवं अन्यदेशीय सम्पर्क सूत्र ; तत्कालीन सांस्कृतिक पीठिका के दो काल-- राजपूत युग(१०००ई०-१२०६ ई०), मुस्लिम युग (१२०६ई०-१४१५ई०); सांस्कृतिक परम्परावलम्बित हिन्दी प्रदेश के चार खण्ड ; मध्यदेशीय संस्कृति के संघ-- आर्य संस्कृति, जैन संस्कृति, बौद्ध संस्कृति, इस्लामिक संस्कृति तथा अन्य देशीय संस्कृति ; प्रकारान्तर से सामन्ती संस्कृति और जन संस्कृति;-- राष्ट्रनीति और राजदर्शन-- राजपूत राजदर्शन तथा मुस्लिम राजदर्शन ; समाजदर्शन, मुख्यतः तीन प्रकार का समाज-संरचना -- वर्णाश्रमवादी समाज, वर्ण-जाति विरोधी समाज और मुस्लिम समाज ; जीवन दर्शन -- सामाजिक विघटन और विभाजन का काल ; विभिन्न जातियां-- उपजातियां ; आर्थिक परिदृश्य, अर्थतंत्र, औद्योगिक संस्थान, राष्ट्रीय एवं अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार ; तत्कालीन वैभव एवं वैषम्य; कृषि यंत्र, कृषिउपज, मुद्राएं एवं मूल्य ; कलात्मक निदर्शन, कलात्मक साधना में भारत की आत्मा और संस्कृति, कलात्मक आदान-प्रदान, विविध कलाएं, स्थानीयता, क्षेत्रीयता और प्रान्तीयता के परिधान में राष्ट्रीयता ; लन्दन में तत्कालीन दो सचित्र कल्पसूत्र ; विविध धर्म, मत, सम्प्रदाय, लोकमान्यताएं, साधनाएं, पूजापद्धतियां एवं आचार-संहिताएं :, सन्दर्भ-सरणि ।

-0-

द्वितीय अध्याय

-o-

साहित्येतर स्रोताधारित तत्कालीन भारत : परम्परामूलक संस्कृति-निकष

आलोच्यकालीन भारत(१०००ई०-१४००ई०) का संस्कृति-निकष तत्कालीन अभिलेखों, स्मारकों, मुद्राओं,धर्म तथा दर्शन ग्रन्थों, देशी-विदेशी इतिहास-ग्रन्थों, ललित कलाओं और अन्य देशीय सम्पर्क -सूत्रों में खोजा जा सकता है । अतीत की गरिमा सम-सामयिक परिधान और तात्कालिक संघटनाओं को संजोकर -- इस काल में भारत का चित्र विविधताओं से पूर्ण है ।

आठ प्रकार के अभिलेख-- स्तम्भलेख, शिला लेख, गुहालेख, मूर्तिलेख, प्राकारलेख, पात्रलेख, ताम्रपत्र लेख तथा मुद्रालेख तात्कालीन भारत का विविधमुखी निदर्शन करते हैं । इन अभिलेखों में प्रमुख अभिलेख ये हैं[१] --

सोमेश्वर का बिजोलिया शिलालेख(सं०१२२६), बीसलदेव का दिल्ली(सिवालिक) स्तम्भ-लेख(सं०१२२०), किराडू का

शिला लेख (सं०१२०६), नाडोल के ताम्रपत्र (सं०१२१८),मदनपुर का शिला लेख(सं० १२३५), कलचुरि नरेश कर्णदेव का अभिलेख (सं०१०९८) बनारस का ताम्रपत्र(सं०१०९८), सारनाथ का अभिलेख(सं०११६४),रीवां का शिला लेख (सं०११९७), यशकर्णदेव के दो अभिलेख (सं०११२६), कमौली का दानपत्र (सं०१२२६), जयचन्द के अभिलेख (सं०१२४५), हरिश्चन्द्र (जयचन्द-पुत्र) का अभिलेख(सं०१२५३), विजयचन्द्र के तीन अभिलेख (सं०१२२५),चन्देल मदन वर्मा का दानपत्र(सं० १२१६), सेमरा का ताम्रपत्र (परमार्दिदेव) (सं०१२२३), हरिश्चन्द्रदेव परमार का अभिलेख (सं० १२३५),पज्जुन ब्रजदामा का शिलालेख(सं०१०३४), टंटोटी का शिलालेख(सं० १२५१), बाघ्टमुर्ति का शिलालेख(सं०१२४५), बांसवाड़ा का ताम्रपत्र, मेनाल का शिलालेख, लोहारी ग्राम शिलालेख, हम्मीर दान पत्र और हांसी का शिलालेख आदि ।

अभिलेखीय सांस्कृतिक चित्रफलक के अतिरिक्त अलबरूनी, इब्नबतूता और मार्कोपोलो आदि यात्रियों के विवरण से भी भारतीय प्रज्ञा एवं परिस्थिति का स्वरूप ज्ञात होता है । इतिहास-ग्रन्थ-- ताज- उल- मासीर, तारीखे फखर- उद्दीन मुबारकशाह ,तबकाते नासिरी, तारीखे फीरोजशाही, फुतुहाते फिरोजशाही तथा फार्बस कृत रासमाला एवं टाड कृत राजस्थान का इतिहास से भी तत्कालीन समाज, सभ्यता और संस्कृति का परिचय मिलता है । वस्तुत: आदिकालीन रासो-काव्य-परम्परा काल की संस्कृति को हम न केवल विविध भारतीय धार्मिक एवं दर्शन ग्रन्थों में पाते हैं ,बल्कि संस्कृति के बहुमुखी उच्छ्वासों को

अनेक प्रस्तरखण्डों, भव्य प्राचीरों, स्थापत्य, मूर्ति, चित्रकलाओं के संयोजन में भी पाते हैं।

विवेच्यकाल की सांस्कृतिक पीठिका दो वर्गों में विभाज्य है और इसे इतिवृत्तात्मक क्रम तथा राजनीतिक उत्थान-पतन के अनुरूप प्रस्तुत किया जा सकता है। स्पष्टतः यह राजपूत-युग और मुसलिम युग के रूप में प्रस्तुत की जा सकती है। १०००ईसवी से १२०६ ईसवी तक राजपूत-काल के अन्तराल में समाहित है तथा १२०६ ईसवी से १४६२ ई० तक मुसलिम काल में।[२] राजनीतिक परिवर्तनों के द्वारा प्रस्तुत संक्रान्तिकालीन हिन्दी साहित्य की पीठिका का निर्माण हुआ है। सांस्कृतिक परम्परा की दृष्टि से अनुसंधायकों द्वारा तत्कालीन हिन्दी प्रदेश चारखण्डों में विभाजित किया गया है-- (१) राजस्थान, सारस्वत प्रदेश एवं ब्रज, (२) हिमालय और तराई,[३] (३) गंगा-गोमती क्षेत्र, (४) विन्ध्याचल क्षेत्र। इतिहासकारों ने भी हिन्दी के प्रमुख क्षेत्रों का विभाजन ५ भागों में किया है-- (१) हिमालय का पर्वतीय क्षेत्र, (२) उत्तर भारत का मैदान, (३) राजस्थान का मैदान, ४- मालव प्रदेश,[४] (५) विन्ध्य मेखला। राजनीतिक-भौगोलिक इकाइयों के आधार पर भाषा की प्रवृत्ति और सीमा घटती बढ़ती रहती है। जैन स्रोतों के आधार पर हिन्दी प्रदेश को चार क्षेत्रों में विभाजित किया गया है, जिसमें मध्यदेश के राजवंश, मध्यभारत के राजवंश, राजस्थान और सौराष्ट्र के राजवंशों के आधार पर तत्कालीन भारत के चित्र उपलब्ध होते हैं।[५] अद्यावधि सम्पन्न किये गये अन्वेषणों के

आधार पर यह सिद्ध किया जा चुका है कि अधिकांश आदिकालीन हिन्दी साहित्य मध्यदेश की सीमा-रेखा और उसके बाहर ही प्राप्त होता है, जिसका कारण केवल राजनीतिक झंझावात और मध्यदेश की भौगोलिक स्थिति ही है। वस्तुस्थिति यह है कि तत्कालीन भारत का समग्र चित्र साहित्येतर स्रोतों के आधार पर ही निर्मित किया जा सकता है और इनमें स्थापत्य कला, उत्खनन कला, चित्र-कला और मूर्ति-निर्माण का विशेष साहाय्य है। विभिन्न राजवंशों द्वारा प्रवर्तित सिक्कों के आधार पर भी राजनीतिक, सामाजिक, कलात्मक एवं आर्थिक अभिव्यक्ति होती है। तत्कालीन मन्दिर, स्तूप और गुफाएं भी सांस्कृतिक उन्मेष संजोये हुए हैं।

विवेच्यकाल की समावदर्शनपरक अभिभूति दो युगों की पारस्परिक आदान-प्रदान और मिलन की चरम स्थिति में निहित है। यह काल एक हजार ईसवी से बारह सौ ईसवी तक उत्तर राजपूत युग है और १२ सौ ईसवी से १४ सौ ईसवी तक प्रारम्भिक मुस्लिम काल है। इतिहास और संस्कृति की धारा राजनीतिक गति-यति के साथ विभाजित हुई है। इन दोनों कालखण्डों की युग-चेतना का त्रिविध निवेश भारतीय एवं भारतीयेतर विविध स्रोतों के आधार पर प्रस्तुत करने में उक्त साहित्येतर आधारों के अतिरिक्त तत्कालीन ऐतिहासिक कार्यों- रचनाओं का पर्याप्त योग है, जिनमें बालचन्द्र सूरि, बिल्हण, हेमचन्द्र, जयानक, जोनराज, कल्हण, मेरुतुंग, पद्म गुप्त, भोज, चंदेश्वर, हेमचन्द्र शुक्र, बल्लाल सेन, ज्योतिरीश्वर आदि भारतीय इतिहासकारों तथा अरबी, चीनी तथा तिब्बती

स्रोतों का दाय है[९]। बौद्धों के पालि एवं संस्कृत में किये गये कार्य[१०], जैनों के महाराष्ट्रीय तथा अन्य प्राकृतों में उपलब्ध सम-सामयिक चित्रण[११], अपभ्रंश में उपलब्ध समाज चित्रण[१२] और मुस्लिम इतिहास-कारों की समाज-सापेक्ष्य आवृत्तियां[१३] उल्लेखनीय हैं। आधुनिक इतिहास, पुरातत्त्वकला और समाजशास्त्रीय विवेकों के कार्यों द्वारा तत्कालीन भारत का दिग्दर्शन किया गया है[१४]। मूलत: इस काल की संस्कृति को आर्य संस्कृति, जैन संस्कृति, मुस्लिम संस्कृति, बौद्ध संस्कृति तथा अन्य देशीय संस्कृति-- इन पांच प्रकारों में रखा जा सकता है। तत्कालीन संस्कृति का विभाजन दो वर्गों--सामंती वर्ग और जन वर्ग में रखकर अध्ययन क्रम की निष्पत्ति हो सकती है। इसे चतुर्वर्णान्तर्गत-- ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्रों की संस्कृतियों का क्षेत्रीय आकलन प्रस्तुत किया जा सकता है। इस काल में भारतवर्ष अनेक मत-सम्प्रदायों का देश है। प्रत्येक धर्म और सम्प्रदाय की अपनी आध्यात्मिक पीठिका और दार्शनिक भित्ति है। अनेक भक्तिपरक आन्दोलन या तो इस काल में प्रवर्तित होते हैं या उनकी मूलस्रोतस्विनी का प्रस्फुटन इस काल में होता है,यथा-- शैवधारा, वैष्णवधारा, कृष्णायत धारा, रामायत धारा, सूफी धारा, नाम-धारा, निर्गुण-धारा, रामानन्दी धारा, सिद्ध-धारा,बौद्ध धारा, जैन-धारा, शाक्त धारा, वाममार्गी-धारा तथा षट्दर्शनपरक धारा। यद्यपि इन मतों एवं सम्प्रदायों के अनेकश: उपविभाग किये गये हैं,किन्तु भारतीय आध्यात्मिक चेतना का मूल स्वर इन्हीं में मुखरित हुआ है[१५]।

संस्कृति का वस्तुनिष्ट -विन्यास प्रक्रियामूलक होता है और इसके अन्तर्गत किसी भी देश, समाज, वर्ग, वर्ण अथवा स्तर का अभिव्यक्तिपरक रूपायन सम्भव है । महर्षि अरविन्द द्वारा संस्कृति, उसकी जीवन चेतना की अभिव्यंजना के रूप में तीन सोपानों में प्रस्तुत की गई है, जिसेमें आदर्शोन्मुखी अभिव्यक्ति, रचनात्मक आत्माभिव्यक्ति एवं व्यावहारिक बाह्य अभिव्यक्ति के रूप में प्रस्तुत किया गया है[१६] । हम इस कालकी संस्कृति का विवेचन तात्कालिक समाजगत कार्य-कलापों, राजनीतिक, भौगोलिक आर्थिक, कलात्मक एवं धार्मिक परिस्थितियों के परिवेश में कर सकते हैं और इसके लिए आदिकालीन साहित्यिक धारा के अतिरिक्त प्रचुर वाङ्मय का अंकन भी संयोजित है । किसी भी युगविशेष की समस्त संयोजनाओं पर राजनीतिक उत्थान-पतन की तात्पर्यता के चिन्ह अंकित होते हैं । अतएव हमारा गन्तव्य सर्वप्रथम इस काल के अन्तर्गत राजवंशों की ऐतिहासिक अनुक्रमणिका प्रस्तुत करना है । साथ ही ११ वीं शती से लेकर १४ वीं शती के भारत की उक्त स्रोतों के आधार पर विचार-आचार, जीवन-मूल्य, जीवनगत उच्चतम विचारों के मूल्यांकन, आदर्श एवं यथार्थपूर्ण समन्वयात्मक संस्कृति की अभिव्यक्ति का आकलन करना है ।

राष्ट्रनीति और राजदर्शन

भारतीय इतिहास में यह समय प्राचीनकाल की अन्त्येष्टि एवं मध्यकालीन इतिहास की उद्भूति का काल है । भारतीय इतिहासका विभाजन विशिष्ट जातियों की प्रभुता के

आधार पर किया गया है । इस काल को पूर्व मध्यकाल भी कहा गया है । इसके अन्तर्गत तुर्क, अफगान, खिलजी और तुगलक राजवंशों का प्रभुत्व रहा । यों तो अरब और भारत का संबंध और संघर्ष का काल ही इसको निरूपित किया जा सकता है। यद्यपि अरबों की सैनिक विजय का प्रभाव भारतवर्ष की राष्ट्र-नीति और राज्य-संस्थाओं पर अधिक नहीं पड़ा, किन्तु राजनीतिक प्रभुत्व की दृष्टि से अरब और भारत का सम्बन्ध विचारणीय है । इस काल में ही नहीं, वरन् लगभग आठवीं शती के पूर्वार्द्ध में ही अरबों ने सिन्धु पर विजय प्राप्त कर ली थी[१७] । दाहिर और ईराक के शासक हज्जाज में संघर्ष हुआ था[१८] । भारत में अरब राज्य की स्थापना करने का श्रेय प्रथमतः मोहम्मद बिन-कासिम को है[१९], जिसका शासन-काल केवल ७१३ई० से ७१५ ईसवी तक ही रहा, किन्तु बाद में मोहम्मद-बिन साम ने जब भारत में तुरकी सल्तनत की स्थापना की तब अरब शासन का पूर्णतः अन्त हो गया[२०] । तुरकों का विशेष प्रभावकारी काल १० वीं शती से प्रारम्भ होता है । पंजाब के राजा का जयपाल गजनी के शासक सुबुक्तगीन के बीच १० वीं शती के अन्त में संघर्ष होता है और उसके द्वारा भारत की पश्चिमोत्तर सीमा पर स्थित खैबर के द्वार तक अधिकार कर लिया जाता है[२१] । सुबुक्तगीन के उपरान्त महमूद गजनवी का शासनकाल ९९८ईसवी से १030 ईसवी तक चलता है । महमूद गजनवी ने अपने ३२ वर्ष के शासनकाल में न केवल भारत के अनेक क्षेत्रों पर अधिकार जमाया, बल्कि भारत के बाहर भी उसने

खुरासान, सीस्तान, ख्वारिज्म, गौर पर अधिकार किया । महमूद गजनवी ने भारतवर्ष पर १७ आक्रमण किये[22] जिनमें पंजाब के शाहियों के विरुद्ध मुल्तान, भटिंडा, नारायणपुर, थानेश्वर, कन्नौज, मथुरा, कालिंजर, सोमनाथ और अन्तिम आक्रमण १०२७ ईसवी में जाटों के विरुद्ध प्रमुख हैं और इस प्रकार महमूद गजनवी ने प्रायः सम्पूर्ण सिंधु घाटी पर तुरक राज्य की स्थापना में सफलता प्राप्त की[23] । महमूद गजनवी के उपरान्त शहाबुद्दीन गौरी का प्रथम आक्रमण ११७५ ईसवी में हुआ और वह १२०५ ईसवी तक निरन्तर साम्राज्य-विस्तार अथवा पूर्वविजित राज्यों की रक्षा में संलग्न रहा[24] । शहाबुद्दीन ने स्वतः और अपने सेनापति ऐबक के द्वारा भारतवर्ष के अधिकांश राजपूत वंशों को परास्त किया और इस प्रकार १२०५ ईसवी तक राजपूतों का पूर्णतः पराभव तथा दिल्ली की सल्तनत की स्थापना हो जाती है[25] । दिल्ली की सल्तनत पर १२०६ से १२९० ईसवी तक गुलाम वंश १२९० से १३२० ई० तक खिलजी वंश, १३२० से १४१२ ईसवी तक तुगलक वंश का आधिपत्य रहा[26] । निष्कर्षतः हम तत्कालीन राजदर्शन और राष्ट्रनीति का अध्ययन राजपूत राजदर्शन और इस्लामिक राजदर्शन के रूप में करेंगे ।

६४७ ईसवी से लेकर १२०६ ई० तक के काल को 'राजपूत युग' के नाम से अभिहित किया गया है[27] । राजपूतों के उद्भव के सम्बन्ध में कर्नल टाड, स्मिथ, भण्डारकर, विलियम क्रुक, डॉ० ओझा तथा डॉ० मजुमदार आदि विद्वानों ने देशी और विदेशी दो प्रकार के मत व्यक्त किये हैं[28] । इन राजपूतों में, साढ़े पांच सौ वर्षों में अनेक राजवंशों का उत्थान-पतन हुआ जिनमें उत्तर भारत में पाल, यादव,

सेन, देव, गुप्त, चालेक्य, राष्ट्रकूट, गाहड़वाल, यदुवंशी, चन्देल कलचुरि, परमार, चालुक्य, चौहान, गुहिल, लोहारा आदि प्रमुख हैं । दक्षिण भारत में भी होयसल, चोल, पांड्य तथा काकतीय आदि ने दीर्घकाल तक शासन सूत्र सम्हाला । इनके अतिरिक्त लंका, नेपाल और आसाम आदि में भी अनेक राजपूत वंश शासनारूढ़ थे ।[29]

तत्कालीन राष्ट्रनीति और राजदर्शन का रूप हमें स्मृति और विभिन्न नीतिशास्त्रों में उपलब्ध होता है। याज्ञवल्क्य, मनु, हेमचन्द्र, शुक्राचार्य, लक्ष्मीधर आदि के द्वारा राजा और राजतंत्र की उद्भावना प्रस्तुत की गई है ।[30] राजत्व की प्रतिष्ठा ऋग्वैदिककाल में भी पूर्णतः हो चुकी थी और उस काल में भी वरुण और इन्द्र राजा के रूप में प्रतिष्ठित थे ।[31] तैत्तिरीय संहिता के अनुसार -- 'तस्माद्राजा मनुष्या विधृताः' अर्थात् राजा के द्वारा मनुष्य विधृत होते हैं ।[32] परवर्ती वैदिक काल में राजकर्म की सीमायें विस्तृत हो गई थीं ।[33] वस्तुतः प्रो० ए०एल० बाशम का यह मन्तव्य सत्य नहीं है कि भारतवर्ष में कोई राजनीतिक दर्शन नहीं था ।[34] ऋग्वेदकाल में भी अंगीरस और बृहस्पति जैसे राजनीतिक चिन्तक विद्यमान थे । राजपूत राजदर्शन, वैदिककाल से लेकर तत्कालीन हिन्दू राजवंश का अभिन्न अंग है । महाभारत काल में दण्ड प्रधान राजकर्म हो गया ।[35] राजा का यह

कर्तव्य था कि वह चारों वर्णों और आश्रमों के आचार की रक्षा करते हुए न्याय की स्थापना करे[36]। अर्थशास्त्र के अनुसार राजकार्य की व्याख्या के अन्तर्गत लोकहितकारी कार्यों की संख्या अत्यधिक थी[37]। मनुस्मृति के आधार पर राजा राज्य के आर्थिक विकास का आयोजक था[38]। ग्रीक लेखकों के अनुसार भी राजा के द्वारा नगर में उद्योग धंधों की उन्नति विदेशियों की देखभाल, जनसंख्या-परिगणन, व्यापार की व्यवस्था, नदियों का निरीक्षण, भूमि की माप, सिंचाई व्यवस्था आदि कार्य थे[39]। तत्कालीन शिलालेखों के अनुसार भी राजाओं के द्वारा ब्राह्मणों, विद्वानों, विद्यार्थियों और धार्मिक संस्थाओं को भूमिदान होता था। सत्र और दानशालाओं को चलाने के लिए धन दिया जाता था[40]। राजा प्रजा के साथ पुत्रवत् आचरण करता था। धर्म की रक्षा, दीन-हीन लोगों की सहायता, कवियों, कलाकारों, दार्शनिकों को प्रश्रय, युद्ध-भूमि में सेनाओं का संचालन आदि राजा के कार्य थे[41]।

हिन्दू राजतंत्र की प्राचीन परम्परा का दर्शन रामायण, महाभारत, पुराण, बौद्ध-जैन साहित्य आदि में भी होता है[42]। वैदिक काल से लेकर पूर्व मध्यकाल तक हिन्दू-राज-तंत्र का आधार एक ही रहा है[43]। राजशेखर भी दण्डनीति और राज्य-सिद्धान्त का उल्लेख बृहस्पति और कौटिल्य के आधार पर करता है[44]। सोमदेव सूरि ने भी राजनीतिक चिन्तकों का उल्लेख किया है -- 'गुरु शुक्रविशालाक्ष परीक्षित्पराशर भीमभीष्म-भारद्वाजादि प्रणीतनीतिशास्त्रश्रवणनाथ श्रुतिपथम भजन्त'[45]। दण्डी के द्वारा दशकुमार चरित में भी अनेक स्थलों पर राजनीति के

चिन्तकों का उल्लेख है[46]। हिन्दू राष्ट्रनीति प्रारम्भ से ही धर्म और आचार की दार्शनिक पीठिका पर आधारित रहा है[47]। अरब और गजनी के आक्रमणों के साथ ही राष्ट्रीय मस्तिष्क का झुकाव राष्ट्ररक्षा के साथ ही प्राणरक्षा की ओर और पराक्रम के स्थान पर कथासरित्सागर में प्रज्ञा का प्राधान्य हो गया[48]।

हिन्दू राज-तंत्र के मध्यकालीन विचारों का प्रतिनिधित्व कल्हण, सोमदेवसूरि, क्षेमेन्द्र, सोमदेव, विशाखदत्त और जयानक की तत्कालीन रचनाओं से होता है[49]। राज्यशास्त्र के उल्लेख अभिलेखों में भी अंकित है[50], जिनमें अंजानेरी (Anja-neri Plates) अभिलेखपत्रों का प्रमुख स्थान है[51]। पृथ्वीराज विजय के अन्तर्गत पृथ्वीराज, तृतीय के राज्यप्रबन्ध का विशेष विवरण प्राप्त होता है, जिसके द्वारा राजा का स्वरूप, शासनतंत्र, राज्य और राज्य-व्यवस्था, राजा की उत्पत्ति, राजा की पवित्रता, राजा के गुण-अवगुण, राजा के कर्तव्य, मन्त्रि परिषद्, कोष, सेना, वीर-धर्म, किला, मित्र-अमित्र, शक्ति-सिद्धि आदि का चित्रण किया गया है[52]।

पूर्व मध्यकालीन राजदर्शन या राजपूत राजदर्शन का उल्लेख-- गुर्जर लेख, ग्वालियर लेख, पालवंशी लेख, प्रतिहार लेख, गहड़वाल दानपत्र, बाउक का जोधपुर लेख, ग्वालियर प्रशस्ति, लालोमपुर, ताम्रपत्र लेख, विजयसेन की देवपारा प्रशस्ति, खजुराहो लेख, जबलपुर

ताम्रपत्र लेख, विजयचन्द्र का कमौली लेख और परमार लेख के अंतर्गत मिलता है।[53]

इस्लामिक राजदर्शन, राज्यसिद्धान्त, प्रशासकीय संगठन, कानून एवं कानून-व्यवस्था पर कुरान, उल्माओं की परम्परा, हदीस, ग्रीक-दर्शन आदि का प्रभाव परिलक्षित होता है।[54] इनके अतिरिक्त अबूहनीफा, शफी, मलिक, हन्बल, अबूयुसुफ, मावर्दी, इमामगिजाली आदि राज-दार्शनिकों द्वारा भी मुसलिम राज्यदर्शन पर पर्याप्त प्रकाश डाला गया है।[55] मुस्लिम राज-सिद्धान्त भी दार्शनिक है। कुरान के अनुसार सम्पूर्ण विश्व का सम्राट् अल्लाह ही है। अल्लाह ने समस्त देशों में अपनी आज्ञाओं का पालन कराने के लिए अपने दूतों को भेजा है, जिनमें मोहम्मद साहब अन्तिम दूत हैं। पैगम्बर की आज्ञा मानना अल्लाह की आज्ञा मानने के समान है, किन्तु यदि पैगम्बर या उत्तराधिकारी इमाम अपने कर्तव्य का पालन न करें तो जनता उसे पदच्युत कर दे। वस्तुस्थिति यह है कि मुख्य मुसलिम राजनीति में किसी भी निर्वाचित सभा का विकास नहीं हुआ था, इसलिए अधिकांश मुसलिम शासक निरंकुश बन गये।[56] १२०६ ईसवी से लेकर सम्पूर्ण मुस्लिम राज्यकाल में सुल्तान या बादशाह के निर्बाध अधिकारों का संवरण रहा है। सुल्तानों की इच्छा कानून थी। अलाउद्दीन खिलजी स्वतः स्वेच्छाचारिता का प्रतीक था। डॉ० आशीर्वादीलाल श्रीवास्तव के अनुसार सम्राट् और पोप दोनों के पद अरब के खलीफाओं में मिलकर एक ही हो गये थे। सुल्तान धार्मिक नेता भी था --[57]

बलबन, सुलतान को धरती पर ईश्वर का रूप समझता था[५८]। डॉ० कुरैशी तथा डॉ० ए०एल० श्रीवास्तव के अनुसार मोहम्मद तुगलक की अनेक उपाधियों में से एक उपाधि सुलतान--जिलाहउल्लाह भी था, जिसका अर्थ भगवान की साया होता है[५९]।

सुलतान के कर्तव्यों में इस्लाम के राज्य की रक्षा करना, दण्डविधान की व्यवस्था, धर्म की रक्षा, इस्लाम-विरोधियों का दमन करना, राजकोष का धन वितरण करना, प्रजाजनों के झगड़ों को निबटाना, सीमाओं की रक्षा करना, यात्रियों के लिए राजमार्ग निर्माण, करों का वसूल करना, अधिकारियों की नियुक्ति करना और व्यक्तिगत रूप में जनता की स्थिति से अवगत रहना आदि कार्य थे[६०]। डॉ० कुरैशी ने सुलतानों को निरंकुश और स्वेच्छाचारी निरूपित नहीं किया है। हिन्दुस्तानी सुलतान खलीफा का प्रतिनिधि माना जाता है और प्रशासन, न्याय तथा विधायिका के लिए वह खलीफा के ही समान थे[६१]।

डॉ० कुरैशी ने राजदरबार को राजनीतिक सामाजिक एवं सांस्कृतिक दृष्टि से सल्तनत का हृदयस्थल माना है[६२]। सुलतान को अत्यधिक उत्तरदायित्वों का वहन करना पड़ता था, इसलिए राजपरिवार एवं दरबार की व्यवस्था के लिए कई अधिकारी --वकीलेदर, अमीरहाजिब या बारबक, नकीबों का अध्यक्ष नकीबुलनुकबा, जामदार, किताबदार, साकीखास, फर्राश, मशालचदार, दवातदार, चगाशी, दबीरे सरा, मलीकुलउमरा, अमीरेशिकार, आखुरबेग, अमीरे मजलिस आदि रखे जाते थे। सुलतान की सबसे बड़ी स्त्री मलिका जहां से सम्बोधित होती थी। इसके अतिरिक्त राज्य-परिवारों में दासों का महत्वपूर्ण स्थान था। ये युद्ध-कैदी, राज्यवेतन भोगी होते थे।

राजभक्ति की दृढ़ता इनका विशेष गुण था । क्रमशः राजभक्ति के कारण राजपद भी इन्हें प्राप्त हो जाते थे । प्रभावशाली अमीरों के विरुद्ध सुल्तान के महत्वपूर्ण सहायक होते थे तथा कभी-कभी सुल्तान के विरुद्ध षड्यंत्रकारी भी हो जाते थे । राजकुमार की शिक्षा विशिष्ट राजकीय नियंत्रण-संरक्षण में होती थी ।[63]

वैधानिक दृष्टि से सुल्तान ही शासन का सर्वोच्च अधिकारी होता था । वह ही राज्य का प्रधान न्यायाधीश और प्रधान कार्यकारी भी था । वही सम्पूर्ण सेना का सर्वोच्च सेनापति एवं समस्त सैनिक तथा असैनिक पदों का नियुक्तिकर्ता भी था ।[64] सुल्तान की सहायतार्थ केन्द्रीय, प्रान्तीय, स्थानीय, सैन्य सम्बन्धी, न्यायिक एवं पुलिस प्रशासन हेतु अनेक विभागीय अधिकारी रहते थे । केन्द्रीय शासन के अंतर्गत प्रमुख अधिकारी -- नायब, वजीर, आरिज ए-मुमालिक, सद्र-उस्सुदूर, काजी-उल-कुजात, दबीर-ए-खास या अमीर मुन्शी, बरीद-ए-मुमालिक थे ।[65] प्रान्तीय शासन अधिक व्यवस्थित एवं सुदृढ़ नहीं था । प्रारम्भ में अमीरों को अर्द्धविजित या अविजित क्षेत्रों का शासक नियुक्त किया जाता था और इन्हें प्रान्तपति, वली, नाजिम या नायब सुल्तान कहते थे । कभी-कभी उसे नायब-मुमालिकात भी कहते थे । प्रान्तपति के नीचे प्रान्तीय वजीर, प्रान्तीय आरिज और प्रान्तीय काजी रहते थे और इनका कार्य भी सम्बन्धित केन्द्रीय अधिकारी के समान होता था । प्रान्तपति अपने क्षेत्र में शान्ति रक्षा, सैन्य प्रबन्ध, न्याय-व्यवस्था, कर वसूली आदि कार्य करता था । वह प्रान्तपति सुल्तान की आज्ञा के बिना किसी भी स्वतंत्र हिन्दू राज्य पर आक्रमण नहीं कर सकते थे और न सुल्तान के समान विरुद धारण कर सकते थे, न ही सेना में

अत्यधिक वृद्धि कर सकते थे । प्रति वर्ष कर न भेजने तथा ठाट से राजदरबार करना विद्रोह का प्रतीक माना जाता था । १४ वीं शताब्दी तक अत्यधिक राज्य-विस्तार हो जाने के कारण प्रान्तों को `शिकों` में विभक्त कर दिया गया था । बड़े नगरों[66] का शासन प्रबन्ध कोतवाल और मुहतसिब नामक कर्मचारी करते थे । इब्नबतूता के अनुसार प्रत्येक `शिक` परगनों में विभाजित किया गया था -- `शासन की सुविधा के लिए १०० ग्रामों को मिलाकर एक इकाई बनाई गई थी, जिसे सदी या परगना कहते थे । प्रत्येक परगने में राजस्व वसूल करने के लिए पंचायत होती थी । गांव की शिक्षा, सफाई तथा रक्षा का भार पंचायत पर होता था । प्रत्येक[67] गांव में एक चौकीदार और पटवारी नियुक्त किया जाता था ।`

सल्तनतकालीन राज्यशक्ति का प्रमुख आधार सैन्यशक्ति ही था । विशाल सेना चार भागों में विभक्त थी, जिसमें स्थायी सैनिक, स्थायी सेना, सैनिक और मुसलिम स्वयंसेवक रहते थे सेना का प्रबन्ध दीवानेअर्ज नामक विभाग द्वारा होता था और इसका प्रधान आरिजे-मुमालिक कहलाता था । न्यायिक मामलों का अध्यक्ष काजी-ए-मुमालिक होता था । कानूनी परामर्श हेतु मुफ्ती और कानूनी तथ्यों की जानकारी के लिए मुहतसिब रहता था । छोटी अदालत का अध्यक्ष हजाब कहलाता था । दीवानी मुकदमों का फैसला दीवाने-ए-काजी करता था । पुलिस प्रशासन कोतवाल के अधीन रहता था। केन्द्रीय,प्रान्तीय,स्थानीय शासन राजदरबार,

राजमहल और राजा के व्यक्तिगत व्यय हेतु धार्मिक कर और सामान्य कर लिये जाते थे जिन्हें खिराज, उश्र, खम्स, जकात, जजिया कहते थे । आय का सबसे बड़ा स्रोत भूराजस्व था, जिसे चार वर्गों से वसूल किया जाता था -- खालसा भूमि, अक्तों में विभक्त भूमि, हिन्दू[६८] सामन्तों की भूमि, इनाम(मिल्क) या वक्फ से प्राप्त भूमि ।

उक्त विवेचन से स्पष्ट है कि तुर्कों के द्वारा परिचालित शासन-व्यवस्था में एक ओर इस्लामिक राज्य-सिद्धांत है, वहां दूसरी ओर राजपूत शासन-व्यवस्था के साथ समझौता भी है । राजपूत राजदर्शन के अनेक अंश मूलरूप में अथवा परिवर्तित स्वरूप लेकर तुर्क शासन-व्यवस्था के अनिवार्य अंग बन गये । भारतीय शासन-परम्परा और मुसलिम राज्याधार दोनों ही धर्मशास्त्रीय एवं सामन्तवादी हैं । तुर्कों का शासनयंत्र आदर्शवादिता एवं वास्तविकता का समन्वय है । उन्होंने एक युद्धप्रिय, स्वाभिमानी और सुसभ्य जाति को पदाक्रान्त करके मुसलिम संस्कृति की प्रगति का पथ प्रशस्त किया । राजपूत राजवंशों के द्वारा भी आर्य संस्कृति का उद्घोष किया गया था । वस्तुत: तत्कालीन भारतीय राजदर्शन राजपूत और मुसलिम राजदर्शनों का परिवेश समेट कर, परिस्थितियों और परम्पराओं का परिवेष्टन कर, मानववादी जीवन और आचार विचार की पृष्ठभूमि तैयार करता है ।

समाजदर्शन

जनता अथवा जनसमुदाय का ही नाम समाज है।[69] समाज अथवा जनता की आन्तरिक चेतना या जीवन-मूल्य संस्कृति के रूप में मान्यता प्राप्त करते हैं और उसके बाह्य स्वरूप सभ्यता का निर्माण करते हैं[70]। प्रथम स्थिति में मानसिक उत्कर्ष अन्तर्निहित होता है और द्वितीय स्वरूप भौतिक सम्पन्नता एवं वैभव का है।[71] आलोच्यकालीन समाज-दर्शन के इन दोनों स्वरूपों का आलोड़न-विलोड़न हमारे समक्ष भारतीय समाज का एक मिश्रित सामाजिक पटल प्रस्तुत करता है। जिस पर मुख्यतः तीन प्रकार की समाज-संरचनाएं परिलक्षित होती हैं। एक ओर वर्णाश्रमवादी समाज है। दूसरी ओर वर्ण,जातिवाद विरोधी समाज है और वहां तीसरा इस्लामिक समाज है। दूसरे शब्दों में इसे आर्य जीवन दर्शन, बौद्ध-जैन-जीवन दर्शन और मुसलिम जीवन दर्शन कह सकते हैं। १० वीं शताब्दी तक उपलब्ध दान-पत्रों में गोत्र और शाखाओं की चर्चा की गई है।[72] तदुपरान्त ब्राह्मणों के गोत्र के साथ गांव का उल्लेख भी होने लगा।[73] गुजरात के कुमारपाल की प्रशस्ति में नागर ब्राह्मण का उल्लेख हुआ है।[74] गाहड़वालों के दानपत्रों में ठक्कुर एवं राउत ब्राह्मणों का उल्लेख प्राप्त होता है।[75] धीरे-धीरे प्रदेशवाचक उपाधियां प्रमुख हो जाती हैं।[76] १२२६ ईसवी के परमार दानपत्र में दीक्षित, द्विवेदी, चतुर्वेदी, पंडित, आदि नाम मिलते हैं।[77] ११७७ ई० के जयचन्द के दानपत्र में `पंडित` शब्द का प्रयोग किया गया है।[78]

डॉ० राजबली पाण्डेय द्वारा 'हिन्दी साहित्य का बृहद इतिहास' के अन्तर्गत उनके स्थानीय भेदों का विस्तृत विवरण मिलता है।[७६]

सामाजिक विघटन और विभाजन के इस युग में क्षत्रिय भी अनेक उपवर्गों में विभाजित होते जा रहे थे। क्षत्रिय वर्ग का विभाजन वंश तथा वृत्ति के आधार पर अधिक हुआ।[८०] प्रारंभ में क्षत्रियों के दो मुख्य वर्ग थे -- राजपुत्र और राजपुत्रेतर। बल्लाल सेन के अभिलेख द्वारा स्पष्ट है कि शासक वर्ग के क्षत्रिय राजपुत्र कहलाते थे।[८१] श्री बनारसीदास सक्सेना ने इन्हें सैनिक क्षत्रिय और कृषक क्षत्रिय कहा है।[८२] अरब यात्रियों ने शासक क्षत्रियों को ब्राह्मणों से ऊंचा स्थान दिया है।[८३] किन्तु अलबरूनी ने राजपूतों को ब्राह्मणों से नीचा स्थान दिया है।[८४] राजतरंगिनी, कुमारपाल-चरित, तथा पृथ्वीराज रासो के अन्तर्गत क्षत्रियों की छत्तीस वंश-शाखाओं की विवरणिका प्राप्त होती है।[८५]

मध्यकाल में कायस्थ नामक एक सर्वथा नवीन जाति का उद्भव हुआ।[८६] याज्ञवल्क्य के अनुसार शासन(काय) में तत्पर गणक,लेखक, अथवा संख्यायक को कायस्थ कहा गया है।[८७] ११ वीं शताब्दी तक कायस्थ वर्ग के अन्तर्गत समस्त वर्गों एवं जातियों के व्यक्ति सम्मिलित थे।[८८] मध्ययुगीन शासनतंत्र में इनका प्रमुख स्थान था।[८९] धीरे धीरे स्थान-भेद के आधार पर इनकी अनेक उपजातियां बन गईं,जिनमें थानेसर के पास गौड़, भटिंडा के पास भटनागर,

मथुरा के पास माथुर, संकाश्य के पास सक्सेना और श्रावस्ती के पास निवास करने वाले श्रीवास्तव कहलाने लगे।[६०]

डॉ० राजबली पाण्डेय के अनुसार केवल वाणिज्य वृत्ति अपनाने वाली वैश्य जातियों की संख्या उस समय लगभग १०० थी।[६१] उत्कीर्ण लेखों में प्राग्वाट,कारापक पोरवाल, मोढ आदि वंश प्राप्त होते हैं।[६२] यह शैव, वैष्णव, एवं जैन सम्प्रदायों में विभाजित थे।[६३] प्राचीनकाल से ही वैश्यों की असंख्य जातियां थीं, क्योंकि इनके अन्तर्गत सम्पूर्ण जनवर्ग (विश्) समाहित था। धीरे-धीरे ब्राह्मणों और क्षत्रियों के ~~अनुकरण~~ अनुकरण पर स्थान और वंश-भेद के आधार पर इनकी अनेक जातियां बन गईं।[६४]

शूद्र वर्ण के अन्तर्गत भी श्रम,शिल्प, व्यवसाय और सम्पर्क के आधार पर अनेकानेक जातियां-उपजातियां उद्भूत हुईं।[६५] उच्च वर्णों के समान इनकी भी वंश और स्थान के आधार पर शनैः शनैः अपरिमित शाखाएं बन गईं।[६६]

मध्ययुग के अभिलेखों में चाण्डाल का उल्लेख प्राप्त होता है।[६७] तहकीके हिन्द के अन्तर्गत अल्बरूनी ने अन्त्यजों में अस्पृश्यों का वर्णन किया है-- 'शूद्रों के बाद उन लोगों का स्थान है, जिन्हें अंत्यज कहते हैं जो कई प्रकार की सेवाएं करते हैं और जिनकी गणना किसी जाति में नहीं है। उनके आठ वर्ग हैं जो आपस में विवाह सम्बन्ध करते हैं--धोबी,

चर्मकार और जुलाहों को छोड़कर । आठ वर्ग या व्यवसाय ये हैं--
(१) धोबी, (२) चमार, (३) जादूगर, (४) डोम-चरकार,
(५) कैवट, (६) मल्लाह, (७) बहेलिया-पाशी तथा (८) जुलाहा।
ये व्यवसाय वाले गांवों और नगरों के पास किन्तु उनके बाहर रहते
हैं । हाडी, डोम, चांडाल, बधती लोगों की गणना किसी जाति में
नहीं होती । ये हीन कर्म, जैसे गांवों की सफाई आदि करते हैं ।
इन सब को मिलाकर एक वर्ग माना जाता है । वास्तव में ये प्रति-
लोम विवाह से उत्पन्न अवैध संतति समझे जाते हैं, जैसे ब्राह्मणी
माता और शूद्र पिता से उत्पन्न । अत: ये जाति बाह्य अथवा
अंत्यज है ।[98]

आलोच्यकालीन भारत में ही नहीं, वरन् ईसापूर्व
छठीं शती से ही वर्ण जाति विरोधी लहर बौद्ध एवं जैन धर्म के
प्रवर्तकों द्वारा उठा दी गई थी । इसमें शैव और शाक्तों की भी
परम्परा सम्मिलित थी ।[99] निम्नवर्गीय जातियों एवं वर्णों का
स्वाभिमान एक ओर आहत हो रहा था, वहीं दूसरी ओर पालवंशीय
शूद्र राजाओं द्वारा इन्हें राहत पहुंचायी जा रही थी ।[100] तांत्रिक
मतवाद, बौद्ध, जैन, शाक्त मतों की वेद ब्राह्मणविरोधी गतिविधियां
तत्कालीन अभिलेखों में उत्कीर्ण मिलती है ।[101] ब्राह्मणों ने नवागत
क्षत्रियों को भी समर्थन देकर इन्हें अपना अनुयायी बना लिया था,
परिणामत: राजपूतों एवं ब्राह्मणों द्वारा वैदिक चेतना का सम्मान
किया गया था, वहीं दूसरी ओर अन्य जातियों -- तंत्र मार्गी
बौद्धों, वैश्यों आदि ने उक्त ब्राह्मण चेतना के विरुद्ध अभियान

बताया।[१०२] इस प्रकार यह कालविरोधाभास या स्वतो व्याघात का युग कहा जाता है।[१०३] जाति और वर्ण व्यवस्था के साथ ही मध्य युग में आश्रम-व्यवस्था को भी झकझोर दिया गया।[१०४] उत्कीर्ण लेखों से यह ज्ञात होता है कि इस समय भी ब्राह्मणवंशों में अनेक अन्तेवासी और ब्रह्मचारी, ब्रह्मचर्य का पालन करते थे।[१०५] मनु के अनुसार-- आश्रमाद् आश्रमं गच्छेत कालिदान्त पुन: दृढीभूत किया गया।[१०६] दूसरी ओर बौद्धों, जैनों एवं शाक्तों के द्वारा क्रमिक आश्रम-व्यवस्था आवश्यक नहीं समझी गई।[१०७] वस्तुत: सामाजिक संगठन का ब्राह्मणवादी दार्शनिक आधार था-- ब्रह्म से ही ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र की उद्भूति। समाजरूपी पुरुष के ऋग्वेद में चार अंग बताये गये हैं-- ब्राह्मणोऽस्य मुखमासीद् बाहू राजन्य: कृत:। ऊरूतदस्य यद्वैश्य: पद्भ्यां शूद्रो जायत।[१०८] कालान्तर में हिन्दू समाज कितनी ही जातियों, उपजातियों में ऊँच-नीच के स्तर पर भले ही विभाजित हो गया, किन्तु प्रारम्भिककालीन समाजदर्शन समता और सामुदायिकता के आधार पर आधृत था, जिसके अनेक प्रमाण ऋग्वेद,अथर्ववेद, सामवेद,यजुर्वेद,ऐतरेय ब्राह्मण,पुराणों, उपनिषदों,महाभारत,स्मृतिग्रंथों और नीति ग्रंथों में उपलब्ध होते हैं।[१०९] आलोच्यकालीन हिन्दू -समाज के सम्बन्ध में बरनी,अलबरूनी रशीदुद्दीन, इलियट, लेनपूल, डॉ० आशीर्वादीलाल तथा डॉ० यूसुफ हुसैन आदि की विचार-सरणि महत्त्वपूर्ण है।[११०]

इस्लामिक समाज में सर्वोच्च स्थान खलीफा का था । खलीफा के उपरान्त सुल्तान और तदुपरान्त अमीरों की गणना होती थी । अमीरों को तीन कोटियों में विभक्त किया गया था, जिनमें खान, मलिक और अमीर गण्यमान थे । इनमें सर्वोच्च स्थान खान का था और खान के उपरान्त मलिक की प्रतिष्ठा थी और तत्पश्चात् अमीर का पद था । खाने आज़म की उपाधि से कुछ व्यक्तियों को विभूषित किया जाता था । बलबन और मुहम्मद तुगलक इस पद से विभूषित किये गये थे । अमीर शब्द, सैनिक एवं असैनिक समस्त पदाधिकारियों के लिये प्रयुक्त होता था, इनमें नव मुसलिम कहलाने वाले मंगोल, तुर्क, अफगान, आदि शामिल थे । गुजरात प्रान्त के अभिजात्य वर्ग में पारसी, अफगान, तुर्क, अरब, मिश्र निवासी, अबीसीनियन, भी सम्मिलित किये गये थे । इस्लाम से विशेष सम्बन्ध रखने वाले उलमा कहलाते थे, इनमें सैय्यद और पीर आदि सम्मिलित थे । वह हदीस और कुरान के जानकार थे ।[111] डॉ० अशरफ के अनुसार कुरान में उलमा का स्थान साधारण रूप से मुसलमानों का एक पृथक वर्ग माना जाता है, जो लोगों को मैकराह सुझाते हैं ।[112] गजेटियर आफ इण्डिया के अनुसार ऊँच-नीच के भेदभाव का प्रचलन तथा उनका शादी-विवाहों में ध्यान रखा जाना मुसलमानों में भी व्याप्त था । तदनुसार--"जाति-प्रथा भारत की वायु में प्रविष्ट है । इसके संक्रामक कीटाणु मुसलमानों तक में फैल गये और मुसलमानों में हिन्दू ढंग पर ही इसका विकास हो गया । दोनों समुदायों में विदेशी तत्व सबसे ऊँचे होने का दावा करते हैं ।

+ + + एक सैयद शेख की लड़की से शादी कर सकता है, परन्तु वह अपनी लड़की शेख को नहीं दे सकता । निम्नवर्ग, नियमित जाति के आधार पर संगठित है ।" वस्तुस्थिति यह थी कि भारतवर्ष में आकर इस्लाम धर्म भी भारतीय बन गया । और वह भारत की धार्मिक-दार्शनिक व्यवस्थाओं का एक अंग बन गया तथा उसके अन्दर भी जाति-भेद प्रविष्ट हो गया । भारतीय मुसलमान भी शरीफ जातों तथा अजलाफ जातों में विभाजित हो गया।[११३] उच्चवर्ग के जिन हिन्दुओं के द्वारा इस्लाम अपनाया गया, उन्हें शरीफों में शामिल किया गया और नीच जाति के वाले हिन्दू अजलाफ कहलाये । डॉ० अशरफ के अनुसार --" इस्लाम अंगीकार कर लेने वाला औसत मुसलमान अपने पुराने वातावरण को, जो जात-पांत के भेद भाव और आम सामाजिक अलगाव से अत्यधिक प्रभावित था, बदल नहीं पाता था । फलत: भारतीय इस्लाम धीरे-धीरे हिन्दू धर्म के व्यापक लक्षणों को आत्मसात करने लगा । जिन अलग-अलग वर्गों से मुस्लिम समुदाय का गठन हुआ था, वे एक ही शहर में एक-दूसरे से दूर-दूर, और यहां तक कि अलग-अलग बस्तियों में, रहने लगे।[११४] इस प्रकार शासक वर्ग एवं शासितों -- दोनों में ही मूल निवासस्थान को लेकर तथा आर्थिक स्थिति के आधार पर अनेक जातिगत भेद-उपभेद हो गये । सैयद और शेख मूलत: अरब निवासी थे, पठान अफगानिस्तान से और मुगल तुर्की से भारत आये थे । मजहबी नेता मुल्ला और उल्मा अधिकांश सैयदों अथवा शेखों की जाति के ही थे । मुफ्ती, काजी और मुहतसिब जो

कि इस्लाम धर्म के पुरोहित होते थे, उत्मात्रों में से ही होते थे।[१२५]
टाईटस ने निम्न और मध्यमवर्गीय मुसलमान जातियों के सम्बन्ध में
लिखा है कि --" मुसलमानों की मध्यम श्रेणी में जातियों पर
आधारित नामों का पूरा एक झुंल्ला है, जैसे जुलाहा, तेली, भाट,
गोगा, वगैरह ये नाम ज्यादातर अनेक धंधे के घोतक है, जैसे तेली तेल
निकालने वाला होता है। इनमें से अधिकांश पुराना हिन्दु जातियों
या पेशों के नाम हैं। जो अपना लिये गये थे। जातियों पर
आधारित नाम तो प्रचलित है ही, खान-पान और शादी-ब्याह में
उनके मूल जातीय भेदभाव भी कायम हैं। उत्तरभारत में एक जाति
कलाल नाम की है, जो दीन और मजहब के उसूलों के विरुद्ध शराब
बेचने का पेशा करती है। इसकेबावजूद, इस जाति के कुछ लोग
सार्वजनिक जीवन में ख्याति प्राप्त स्थानों पर है।"[१२६]

आर्थिक परिदृश्य

राजपूत कालीन भारत आर्थिक दृष्टि से अत्यधिक
समृद्ध था। तत्कालीन अभिलेखों से कृषि उद्योग, वाणिज्य, औद्योगिक
संस्थान, व्यापार तथा ग्राम्य एवं नागरीय स्थितियों पर प्रकाश पड़ता
है। उत्तर एवं दक्षिण भारत के राजपूत राजवंश काल में ग्रामीण
सामुदायिक विकास की योजनाएं प्रचलित थी। १२ वीं शताब्दी के
पश्चिमी चालुक्य तैल(Taila) द्वितीय के अभिलेख में जो कि
तेलगू क्षेत्र में उपलब्ध हुआ है, यह निदर्शित है कि एक शहर के देशी
व्यापारियों के द्वारा जो कि चार बोलियां बोलते थे, एक पवित्र

व्यापारिक समझौता किया गया जो कि अनेक व्यवसायिक वस्तुओं के सम्बन्ध में था।[११७] १२०४ ईसवी में उपलब्ध बेलगाम अभिलेख में बताया गया है कि स्थानीय व्यापारी समूह के द्वारा गुजरात तथा मलयालम व्यापारिक समझौता किया गया।[११८] १३वीं शती के पूर्वार्द्ध में प्राप्त काकतीय राजवंश के राजा गणपति के अभिलेख में अनेक व्यवसायिक वस्तुओं की चर्चा करते हुए मोतुपल्ली बन्दरगाह पर चुंगी वसूली का विवरण दिया गया है।[११९] अनेक विदेशी विद्वानों एवं यात्रियों के द्वारा भारतीय कृषि, उद्योग के विवरण दिये गये हैं, जिनमें मार्कोपोलो, याकूत, इद्रीस, ख्वाजधिना प्रमुख है।[१२०] चाऊ-जू-क्वा के द्वारा जीव-जन्तुओं से तैयार की गई वस्तुओं का वर्णन किया गया है। भारतवर्ष की अति प्राचीन औद्योगिक वस्तु कपड़े का उल्लेख भी चाऊजुक्वा ने किया है।[१२१] पत्थर उद्योग, धातु उद्योग, लौह-उद्योग, सोना-चांदी, जवाहरात हीरे-मोती आदि का उन्मुक्त व्यापार उस समय मध्यएशिया, चीन आदि से होता था।[१२२] उत्तरी बर्मा और सुमात्रा में प्राप्त अभिलेखों द्वारा भी तत्कालीन व्यापारिक संस्थानों का उल्लेख मिलता है।[१२३] १३ वीं शती के अन्त में मार्कोपोलो के अनुसार फारस की खाड़ी, लंका आदि के साथ व्यापारिक सम्बन्ध-सूत्र था।[१२४] १२००ईसवी के मैसूर अभिलेख द्वारा यह स्पष्ट है कि तत्कालीन भारत में व्यवसायिक समूह विद्यमान थे।[१२५] मैसूर के १०५० ई० के अभिलेख वृहत् पैमाने पर व्यवसाय के आदान-प्रदान की चर्चा प्राप्त होती है।[१२६] ११ वीं शताब्दी

तथा १०५०ईसवी के दो अभिलेखों में व्यवसायिक संस्थानों की चर्चा की गयी है[१२७]। सुमात्रा में प्राप्त १०८८ई० के तमिल अभिलेख द्वारा व्यापारी समूहों का विविध क्षेत्रों में आवागमन बताया गया है[१२८]। १३ वीं शताब्दी के पागान (Pagan) अभिलेख से यह ज्ञात होता है कि उत्तरी बर्मा के एक शहर में निर्मित विष्णु मंदिर को एक ग्रामीणवर्ग ने दान दिया था। तत्कालीन भारत में पूंजीपतियों एवं श्रमिकों में साझेदारी की प्रथा मौजूद था। भिन्न उद्योग सम्बन्धों तथा श्रमिक कानून के सन्दर्भ में स्मृति चन्द्रिका से जानकारी होती है जो कि समानता और न्याय के आधार पर निर्मित थे[१२९]। यद्यपि राजपूत काल में आर्थिक समृद्धि चरम सीमा पर थी। कृषि-उद्योग तत्कालीन विश्व में सर्वाधिक उत्तम थे। राजकीय कोष अपार धन-सम्पत्ति से पूर्ण किन्तु सामान्य जनवर्ग आर्थिक विपन्नता से त्राहि-त्राहि कर रहा था। राजमहलों और राजदरबारों तथा मंदिरों का वैभव, राजा, सामंत, पुरोहित, चारण, विदूषक और अन्य राजन्य वर्ग के व्यक्तियों द्वारा भोगा जा रहा था और वहीं दूसरी ओर कृषक, मजदूर वर्ग दास एवं निम्न श्रेणी के परिवार अर्थसंकट से आपन्न थे। डॉ० धर्मवीर भारती ने सिद्ध साहित्य के अन्तर्गत तत्कालीन वैभव और वैषम्य का चित्र अंकित किया है। उनके अनुसार --"देश की जनता दो वर्गों में विभाजित थी, १० प्रतिशत सामन्त, सेठ और पुरोहित आर्थिक दृष्टि से सम्पन्न थे, ७० प्रतिशत किसान और कारीगर तथा २० प्रतिशत दासों का जीवन पशुओं से भी गया बीता था[१३०]।"

सल्तनतकालीन भारत प्रचुर धनधान्य के लिए प्रसिद्ध था । डॉ० आशीर्वादीलाल के अनुसार -- "India was prosperous and that there was a great abundance of all the neccessaries of life"[132] प्रारम्भिककालीन मुसलिम शासक केवल भू-भागों को विजित करने में लगे रहे । बलबन प्रथम शासक था, जिसके द्वारा आन्तरिक शान्ति-व्यवस्था और आर्थिक दशा सुधारने का प्रयास किया गया । खिलजी-युग में आर्थिक दशा में परिवर्तन के लक्षण दिखाई पड़ते हैं । फिरोजशाह के शासन-काल में अकाल का विवरण देते हुए बरनी ने लिखा है कि --"इस समय गेहूं का भाव ८ जीतल प्रति सेर हो गया था और शिवालिक के पर्वतीय प्रदेश में स्थिति इतनी असह्य हो गई थी कि वहां के हिन्दू दिल्ली चले आये और उनमें से बीस या तीस ने अन्य कष्ट से तंग आकर यमुना में डूबकर प्राण त्याग कर दिया ।"[132]

तत्कालीन भारतीय समाज में परम्परागत आत्मनिर्भर गांव भारत की अर्थ व्यवस्था का मूलाधार बनाते हैं । इस काल तक गांव में प्राचीन स्वशासित ग्राम पंचायतें पतनावस्था को पहुंच गयी थीं । केन्द्रीय निरंकुश शासन के कारण स्वायत्त संस्थाएं प्राय: समाप्त हो गई थीं । इब्नबतूता के अनुसार (१३३३-१३८६ई० के बीच) भारतवर्ष में चारों ओर वैभवशाली शहरों, हाट, बाजारों, कुशल शिल्पियों, मंदिरों की गौरवपूर्ण विस्तृति थी ।[133]

विदेशी-यात्रियों ने उस समय कृषि उपज, सघन खेती, पशुपालन आदि का उल्लेख किया है । कृषि के औजारों

हल,पाटा, कुदाली,फावड़ा आदि का उल्लेख किया है[१३४]।खाद्यान्नों में गेहूं, जौ, ज्वार,बाजरा, मकई,तिलहन, कपास,चाय,तम्बाकू, काफी,आदि के अतिरिक्त आम,व अंगूर ,सेव, केला, सन्तरा, नारंगी, नीबू इत्यादि फल पैदा किये जाते थे[१३५]। दिल्ली के सुल्तानों के द्वारा बाग लगवाने की प्रथा को प्रोत्साहन दिया जाता था[१३६]। तत्कालीन उद्योग धंधों में कपड़ा, बर्तन, पत्थर का काम, शकर, नील कागज, शराब, चमड़ा आदि का व्यापार होता था[१३७]। तत्कालीन भारत में अन्तर्राष्ट्रीय तथा तटीय व्यापार फारस की खाड़ी,अरब, पूर्वी अफ्रीका, दक्षिणी-पूर्वी एशिया आदि से होता था[१३८]।मार्को-पोलो तथा इब्नबतूता ने समुद्री बन्दरगाहों का उल्लेख किया है[१३९]। उक्त कथ्य का विवेचन करते हुए माहुआं का विवरण उल्लेखनीय है-

'धनवान लोग जहाज बनवाते हैं,जिनमें वह विदेशी राष्ट्रों के साथ व्यापार करते हैं, बहुत से लोग कृषि कार्य में व्यस्त रहते हैं और दूसरे लोग अपना व्यवसाय चलाते हैं। इस देश की मुद्रा एक चांदी का सिक्का है, जिसको 'तनगा'(टका) कहते हैं जो तोल में दो चांदी सिक्कों के बराबर होता है। इसका व्यास १ २/१० इंच होता है और दोनों ओर खु से खुदा होता है, परन्तु छोटा-छोटा खरीदों के लिए वह लोग कौड़ी का उपयोग करते हैं, जिनको विदेशी लोग 'कओली' कहते हैं[१४०]। १४ वीं शताब्दी में ही भारत आये हुए चीनी यात्री वंग-ता-युवान के अनुसार उड़ीसा में सामान्य जनजीवन की वस्तुएं इतनी सस्ती थीं कि वहां बाहर से आये हुए दस में से नौ व्यवसायियों को स्वदेश वापस जाना अभीष्ट न था[१४१]।इब्नबतूता के

अनुसार बंगाल में पदार्थों का कामत उसके द्वारा भ्रमण किए हुए देशों की तुलना में सबसे कम था ।[१४२]

कलात्मक निदर्शन

भारतवर्ष की कलात्मक साधना का इतिवृत्त अतीव पुरातन है । और इनमें भारत की आत्मा और संस्कृति की प्राण-प्रतिष्ठा हुई है । भारतवर्ष में काश्मीर से लेकर कन्याकुमारी तक विविध कलात्मक अभिव्यक्ति और प्रतीकात्मक आविर्भूति हुई । वस्तुत: तत्कालीन भारत का कलात्मक आदान-प्रदान एक देशीय न होकर सर्वदेशीय तथा सार्वभौमिक था । भारतवर्ष में स्थापत्य-कला, मूर्तिकला, चित्रकला, मंदिरकला, मण्डपकला, स्तूप, चैत्य, गुफाओं का निर्माण, मुद्रा-कला, मृण्-मूर्तिकला, संगीत-नृत्य-गायन-वादन, रंगमंच आदि का वैशिष्ट्य रहा है । लगभग पांच हजार वर्ष पूर्व सिन्धु घाटी का प्रागैतिहासिक शिल्प, चित्रों, मूर्तियों और वास्तुओं में निदर्शित हुआ था ।[१४३] ऋग्वेद में उषा के लिए सुशिल्पा कहा गया है ।[१४४] ऐतरेय ब्राह्मण के अनुसार शिल्पानि शंसति आदि सूक्तों का पाठ किया जाता था ।[१४५] वन्यचित्र और नागरचित्रों का उल्लेख वेदों और ब्राह्मण ग्रन्थों में निहित है ।[१४६]

स्थापत्य, मूर्ति और चित्रादि कलाओं के विविध भेद देश-काल, सम्प्रदाय-मत, सुरुचि-संदेश के आधार पर किये जा सकते हैं ।[१४७] स्थापत्य के शैली और प्रकार के दो भेद किये जा सकते हैं ।[१४८]

प्रकार भी धार्मिक और लौकिक हो सकता है । धार्मिक के अन्तर्गत मंदिर, स्तूप, चैत्य आदि समाहित हैं और लौकिक में वार्ता, सेतुबन्ध और प्रासाद आदि[१४९] । साधारणत: तीन शैलियां मंदिरों की हैं-- नागर, बेसर, और द्राविड़ । बेसर के पुन: [illegible], मिश्रक, वराट आदि पर्याय शब्द हैं । इनके अतिरिक्त लतिन , साधार, भूमि, नागर-पुष्पक और विमान आदि शैलियों का भी प्रयोग हुआ है[१५०] । आलोच्यकाल में नागर शैली के हजारों मंदिर पंजाब, हिमालय, कश्मीर, राजस्थान, पश्चिमी भारत, गंगा की घाटी, उड़ीसा, बंगाल और मध्यप्रदेश में निर्मित हुए जिनमें प्रादेशिकता एवं स्थानीय तत्व भी समाविष्ट हुआ[१५१] । द्राविड़ अथवा दाक्षिणात्य प्रकार के मंदिरों का निर्माण तंजौर, मदुरा, कांची और विजयनगर आदि के चोलों, पाण्ड्यों व और पल्लवों आदि ने किया[१५२] । बेसर शैली उत्तर और दक्षिण की शैलियों का सम्मिलित स्वरूप है[१५३] । स्तूप, चैत्यगृह और विहार तीनों ही बौद्ध जीवन के आधार हैं[१५४] । दो प्रकार के स्तम्भों का निर्माण हुआ, जिनमें धर्मस्तम्भ और राजस्तम्भ आते हैं । राज-स्तम्भों का स्वरूप कीर्ति-स्तम्भ, लाट, मीनार, आदि के रूप में है । इनका प्रयोग दुर्गों, मंदिरों, राजप्रासादों, राजकीय आवासों आदि में हुआ है[१५५] । अलाउद्दीन खिलजी का कीर्ति-स्तम्भ दौलताबाद के यादव-दुर्ग के द्वार पर स्थित है[१५६] । मनुष्यों के सामान्य आवासों का भी विशेष स्थापत्य था[१५७] । ग्राम्य-स्थापत्य भी धीरे-धीरे विकसित हुआ[१५८] । नागरीय वास्तु भी वैशिष्ट्य परक है[१५९] । दुर्गों का निर्माण

राजप्रासादों की भव्यता, वापी, तड़ाग, दीर्घिका, कूप आदि में तत्कालीन वास्तुकला का निदर्शन हुआ है।[१६०]

मुसलिम वास्तुकला अधिकांश हिन्दू शिल्पियों की प्रज्ञा के सहारे, हिन्दू-मुसलिम सामंजस्य की आधारशिला पर निदर्शित हुई।[१६१] दिल्ली, अजमेर, आगरा, जौनपुर, लखनऊ, गौड़, गुजरात, मालवा, बीजापुर, सासाराम आदि स्थानों में किले, मस्जिदें, मकबरे और इमाम बाड़े आदि मुसलिम वास्तुकला के सुन्दरतम स्वरूप अवलोकनीय हैं।[१६२] कुतुबुद्दीन के दिल्ली और अजमेर के मकबरे हिन्दू-मुसलिम वास्तुकला के समन्वय का सन्देश देते हैं।[१६३] अलाउद्दीन खिलजी के द्वारा १३१०ई० में निर्मित कुतुब मस्जिद के दक्षिण का दरवाजा हिन्दू प्रभाव की पुष्टि करता है।[१६४] जौनपुर में शरकी सुलतानों के द्वारा निर्मित मस्जिदें हिन्दू० मुसलिम शैली की प्रतीक हैं और इनमें तुगलकी विशालता का परिधान है।[१६५] पठानों की राजधानी मालवा वहां के सुलतानों की वास्तुशैली का उद्घोष करती है।[१६६] इसी प्रकार बंगाल, गुजरात, पंजाब, राजपूताना और विजयनगर के भव्य मकबरे मुसलिम वास्तुशैली के प्रतिमान हैं।[१६७]

स्थापत्य कला की ही भांति मूर्तिकला का व्यापक स्वरूप विवेच्यकाल में उपलब्ध होता है। डॉ० भगवतशरण उपाध्याय के अनुसार 'भारत की मूर्तिकला की सौन्दर्य समाधि, कल्पना और भावबोधकता में उसकी किसी अन्य देश की कला समता कर सकती है, यह कहना आसान नहीं है।[१६८] मूर्तिविज्ञान के क्षेत्र में भी इसका इतिहास युगों के इतिहास से सम्बन्धित है, जैसे प्राड्० मौर्य युग,

मौर्य युग, शुंग युग, शक-कुषाणयुग, गुप्त-युग, पूर्व मध्ययुग, उत्तर-मध्य-युग, आधुनिक युग और वर्तमान युग [१६६]। युगानुरूपिणी कला-शैलियां भी अनेक प्रकारों में परिवर्तित होती गईं। किसी एक युग में भी अनेक शैलियों का समानान्तर प्रचलन रहा। स्थानीय प्रवृत्ति और अभिरुचि के कारण मूर्तिकला में भी विविधता आई। इस काल में विविध धर्मों एवं सम्प्रदायों की बहुमुखी प्रवृत्ति के कारण मूर्तिकला की भावात्मकता-कल्पनाशीलता में पर्याप्त परिवर्तन हुए। इस काल में स्वतन्त्र बड़ी मूर्तियों का निर्माण तो हुआ, किन्तु अधिकांश मन्दिरों आदि के दीवारों पर अंकित मिलती है। पीतल और तांबा आदि धातुओं में ढली हुई मूर्तियों का बाहुल्य इस काल में हुआ। मूर्तियों पर क्षेत्रीय एवं प्रान्तीय प्रभाव दृष्टिगोचर होता है। पाल राजाओं की उत्तम मूर्तियां इसी काल में निर्मित हुई [१७०]। तांत्रिक बौद्ध धर्म और शाक्त धर्म की समानता के कारण बौद्ध-तारा और हिंदू लक्ष्मी की मूर्तियों में पर्याप्त साम्य है [१७१]। महोबा में प्राप्त बोधि सत्वों की मूर्तियां लखनऊ संग्रहालय में सुरक्षित हैं, जो ११वीं-१२ वीं शताब्दी का उत्कृष्ट कलात्मक रूप प्रदर्शित करती है [१७२]। सूर्य की बड़ी मूर्तियां इस काल तक निर्मित होने लगी थी। इनमें से एक विक्टोरिया म्युजियम में आरक्षित है [१७३]। भुवनेश्वर, कोणार्क, पुरी, खजुराहो, ऐलोरा आदि के मन्दिरों पर भोगासन अंकित किये गये हैं। मिथुन भाव की यह प्रवृत्ति तत्कालीन विश्व के अनेक मन्दिरों पर अभ्यंकित हुई है। यथा बाबुल के मिलिता का मन्दिर, ग्रीक अफरोदिति और रोमन वीनस का मन्दिर, यक्षी मूर्तियां, बौद्ध जैन स्तूपों की वेष्टनियों पर नग्न नारी मूर्तियां आदि द्रष्टव्य है [१७५]।

तत्कालीन चित्रकला भी अन्य कलाओं की ही तरह प्रागैतिहासिक काल से समुद्भवसवित तत्कालीन भारत तक प्रवर्तित-परिवर्तित एवं संवर्द्धित होता हुई अनेक शैलियों में विभक्त हुई।[१७६] तत्कालीन भारत की चित्रण-शैली में मानवाकृति और सौन्दर्य के प्रतिमानों के आधार पर पर्याप्त परिवर्तन हुआ। अब तक मानव अवयवों आदि में नुकीलापन लाने की प्रवृत्ति अधिक हो गई थी और इसके साथ ही मध्यकालीन अनेक क्षेत्रीय प्रभाव भी समाविष्ट हो गये थे जिसके कारण अनेक शैलियां बन गई। इनमें प्रधानत: गुजरात या जैन शैली, राजस्थानी या राजपूत शैली, अजन्ता शैली प्रमुख है। क्षेत्रीय आधार पर दक्षिणी शैली, पश्चिमी शैली, और पूर्वी शैली के रूप में इन्हें रखा जा सकता है। प्रधानत: दो प्रकार के चित्र-- भित्ति चित्र और प्रतिकृति उपलब्ध होते हैं।[१७७] राजपूत शैली की तीन उपशैलियां -- राजस्थानी, काश्मीरी और पहाड़ी हैं। गुजराती शैली में अधिकांश जैन-कल्प-सूत्रों अथवा निमंत्रणों के चित्रण का कार्य हुआ है।[१७८] पाटल-संग्रह के सचित्र कल्पसूत्र पर ११८०ईसवी की तिथि अंकित है। लन्दन में इण्डिया आफिस और ब्रिटिश म्यूजियम के अन्तर्गत १३७०ई० और १४०७ई० के दो सचित्र कल्पसूत्र सुरक्षित हैं।[१७९]

धर्म-दर्शन, मत-सम्प्रदाय एवं लोक-मान्यताएं

डॉ० राधाकमल मुकर्जी धर्म और भारत की अभिन्नता पर प्रकाश डालते हुए ६ वीं या १० वीं शती में, कावेरी की घाटी में रचित 'भागवत' में आधृत भावभूमि का निदर्शन करते हुए लिखते हैं कि

पवित्र नदियों, पर्वतों और पावन तीर्थस्थलों, अवतारों, साधुप्रकृति राजाओं, भक्तों और धर्मप्राण पुरुषों का यह देश महान है।[180] उनके अनुसार भारतवर्ष भौगोलिक ईकाई नहीं वरन पूजा और श्रद्धा की वस्तु है, ईश्वर के प्रति स्पृहा और उसकी अनुभूति का प्रतीक है।[181] उन्होंने भारत को ही 'क संस्कृति' का मूलरूप माना है।[182] भारतवर्ष में सम्पूर्ण यूरोप-महाद्वीप से भी अधिक पुनर्जागरण और धर्म-सुधार हुए हैं।[183] धर्मशास्त्रों में भी परिस्थितियों के अनुकूल परम्पराओं के परिवर्तन पर, आध्यात्मिक सिद्धान्तों का तत्कालीन सन्दर्भों में सदुपयोग की भूमिका पर व्यवस्था की गई है।[184] वस्तुत: ९००ई० से १४००ई० तक का भारत उक्त तथ्य का संश्लिष्ट प्रतिमान है, जिसमें वैदिक -दर्शन, उपनिषद्-दर्शन, षड्-दर्शन, बौद्ध-दर्शन, जैन-दर्शन, इस्लामिक दर्शन की समन्वय-साधना का केन्द्रबिन्दु मानव-धर्म-संगम पर प्रतिष्ठित है। अनेकश: पूजा-पद्धतियां, नीति-विवेचन, तत्व-मीमांसाएं आचारपीठिका, साधनामार्ग, सैद्धान्तिक-संहति, तंत्र-मंत्र, देवी-देवार्चन आदि समाहित हैं। विविध मत-सम्मत धाराओं का दृश्य-पटल इस समय-शिला पर सम्वलित हुआ है।

आलोच्यकालीन भारत में प्रमुखत: बौद्ध, जैन, वैष्णव, शैव और इस्लाम धर्म ही प्रवर्तित थे, किन्तु इनके अन्तर्गत भी विभिन्न मतान्तर हो चुके थे। बौद्धों में तांत्रिक बौद्ध, वज्रयानी, कालचक्र यानी और सहजानी देश के अनेक भागों-- बंगाल, बिहार, काश्मीर, मध्यदेश और दक्षिण भारत में फैले हुए थे। जैनियों में श्वेताम्बर और दिगम्बर भेद हो चुके थे और इनका प्रभाव क्षेत्र

गुजरात, दक्षिण भारत और दकन था । वैष्णवों में मायामनाचार्य, रामानुजाचार्य, निम्बार्काचार्य, मध्वाचार्य, विष्णुस्वामी, रामानन्द आदि के विभिन्न मत बन चुके थे । शैव तंत्र, वीर शैव मत और पाशुपत मत आदि प्रचलित थे[१८५] । इस्लाम धर्म भी ला-इलाह-इल्ल ल्लाह मुहम्मदुर रसूलि ल्लाह[१८६] की भावना लेकर असलामे अलेकुम(आपको शान्ति मिले) के स्थान पर खून बहा रहे थे । यों तो समस्त धर्मों का मूलतत्व एक ही था -- ‘यतोऽभ्युदय निश्रेयससिद्धि: सधर्म:’[१८७] और ‘धारणाद्धर्म:’[१८८] के आधार पर धर्म को समाज-संचालक मानते हुए ‘एकं सद्विप्रा बहुधा वदन्ति’[१८९] के रूप में सभी का मिलन-बिन्दु एक ही था । और ‘सत्यस्य प्रतिमा अर्चित’[१९०] के आधार पर, ‘एको देवा: सर्व भूतेषु’[१९१] का मानदण्ड स्थापित करते हुए मूलभूत ऐक्य का प्रदर्शन किया गया है, किन्तु इनके देवी-देवता भिन्न थे, पूजा-पद्धतियां अलग-अलग थीं । तत्वज्ञान के विभिन्न स्वरूप थे । आचार संहिताएं परिस्थितियों के परिवेश में बनी थीं । दार्शनिक-चिन्तन में वैभिन्य था ।

सन्दर्भ- सरणि

-o-

(द्वितीय अध्याय)

सन्दर्भ-सरणि

-o-

(द्वितीय अध्याय)

१-(अ) डॉ० राजबली पाण्डेय,हिस्टारिकल एण्ड लिटरेरी,इन्सक्रिप्सन्स, चौखम्बा संस्कृत सीरिज, वाराणसी,वाल्युम १३, १९६२ ।

(ब) डॉ० वासुदेव उपाध्याय, प्राचीन भारतीय अभिलेखों का अध्ययन, भाग१ तथा भाग २, प्रज्ञा प्रकाशन पटना, द्वि०सं० १९७०ई० ।

(स) पं० रमाकान्त झा, अभिलेखमाला, चौखम्बा विद्या भवन,वाराणसी, १९६२ई० ।

(द) श्री रामप्रकाश ओझा, उत्तरी भारतीय अभिलेखों का एक सांस्कृतिक अध्ययन, प्रकाशन केन्द्र लखनऊ, प्र०सं० १९७१ई० ।

२- डॉ० राममूर्ति त्रिपाठी, आदिकालीन हिन्दी साहित्य की सांस्कृतिक पीठिका, पृ० १२६,मध्य प्रदेश हिन्दी ग्रंथ एकाडमी,प्र०सं० १९७३ई० ।

३- उपरिवत्, पृ० १६० ।

४- उपरिवत्, पृ० १६० ।

५- डॉ० गुलाबचन्द्र चौधरी,पोलिटिकल हिस्ट्री आफ नार्दर्न इण्डिया फ्राम (जैन स्रोताधारित) पृ०-०२१- २५ , सोहनलाल जैन धर्म-प्रचारक समिति,अमृतसर पब्लिकेशन,१९५४ ।

६- डॉ० शम्भुनाथ पाण्डेय, आदिकालीन हिन्दी साहित्य,पृ०४०, विश्वविद्यालय प्रकाशन, वाराणसी,प्र०सं० १९७०ई०

तथा

डॉ० धीरेन्द्र वर्मा, मध्यदेश, पृ० ६-११ ।
बिहार राष्ट्रभाषा-परिषद्,पटना,प्र०सं० सन १९५५ई० ।

७- डॉ० आर०सी० मजूमदार, दि स्ट्रगल फार इम्पायर,पृ०२९७, भारतीय विद्या भवन, बम्बई, सेकं० लिमिटेड १९६६ ।

८- डॉ० अशोक कुमार श्रीवास्तव, इण्डिया ऐज डिस्क्राइब्ड बाई दि अरब ट्रेवलर्स, साहित्य संसार प्रकाशन,गोरखपुर,फर्स्ट एडी०,१९६७ ।

९- क डॉ० आर०सी० मजूमदार, दि देहली सल्तनत,पृ० १-१०,भारतीय विद्या भवन,बाम्बे,सेकेण्ड एडी० १९६० ।

१०- डॉ० आर०सी० मजूमदार,दि स्ट्रगल फार इम्पायर,पृ०३३९, भारतीय विद्या भवन,बम्बई,सेकेण्ड एडी०,१९६६ ।

११- उपरिवत्,पृ० ३४४ ।

१२- उपरिवत्, पृ० ३४८ ।

१३-(अ) प्रो० मोहिबुल हसन, हिस्टोरीज आफ मेडुवल इण्डिया १६-१७, मेनाक्षी प्रकाशन,मेरठ ।

(ब) श्री ए०बी०एम०हबीबुल्ला, दि फाउण्डेशन आफ मुसलिम रूल इन इण्डिया, सेण्ट्रल बुक डिपो,इलाहाबाद, सेकेण्ड एडी०,१९६१ ।

(स) यूसुफ हुसेन ,मध्ययुगीन भारतीय संस्कृति, भारत प्रकाशन मन्दिर, अलीगढ़ ।

१४- (अ)डॉ० ए० एल० श्रीवास्तवा, मेडुवल इण्डियन कल्चर,शिवलाल अग्रवाल एण्ड कम्पनी,आगरा,सेकेण्ड एडी०,१९७१ ।

(ब)डॉ० गौरीशंकर हीराचन्द ओझा,मध्यकालीन भारतीय संस्कृति, हिन्दुस्तानी एकेडमी, इलाहाबाद, तृ०सं०,१९५४ ।

(स) डॉ० बी०एन०एस० यादव, सोसायटी एण्ड कल्चर इन नादर्न इण्डिया, सेण्ट्रल बुक डिपो, इलाहाबाद, फर्स्ट एडी० १९७३ ।

१५-(अ) डॉ० राममूर्ति त्रिपाठी, आदिकालीन हिन्दी साहित्य की सांस्कृतिक पीठिका, पृ० २०९, म०प्र० हिन्दी ग्रंथ अकादमी, भोपाल, प्र०सं०, १९७३ ।

(ब) डॉ० राजबली पाण्डेय, हिन्दी साहित्य वृहद इतिहास, प्र० भा०, द्०सं०,पृ० ४१९, ना०प्र०सभा, काशी प्रकाशन, सं० २०१४ वि० ।

१६- महर्षि अरविन्द, `भारतीय संस्कृति के आधार` से डॉ० मीरा श्रीवास्तव द्वारा संकलित एवम् अनूदित`भारतीय संस्कृति` पृ० ५, श्री अरविन्द ऐक्शन, पांडिचेरी-२ प्रकाशन ।

१७- डॉ० अवधबिहारी पाण्डेय, पूर्व मध्यकालीन भारत का इतिहास, पृ० ३-५२, सेण्ट्रल बुक डिपो, इलाहाबाद प्रकाशन,१९७०ई० ।

१८- उपरिवत् ।

१९- उपरिवद ।

२०- उपरिवद ।

२१- उपरिवत् ।

२२- उपरिवत् ।

२३- उपरिवत् ।

२४- उपरिवत् ।

२५- उपरिवत् ० पृ० ५५-२८७ ।

२६- उपरिवत् ।

२७- डॉ० राममूर्ति त्रिपाठी, आदिकालीन हिन्दी साहित्य की सांस्कृतिक पीठिका, पृ० १३०-१३१, म०प्र० हि० ग्रंथ अकादमी, भोपाल, प्र०सं०१९७३ ।

२८- उपरिवत् ।

२९- डॉ० अवधविहारीलाल अवस्थी, राजपूत राजवंश, कैलाश प्रकाशन, लखनऊ, प्र०सं०, १९७० ।

३०- (अ) डॉ० ए० एल० बाशम, दि वण्डर दैट वाज इण्डिया, चैप्टर-४ लन्दन, रिप्रिण्ट, १९५६ ।

(ब) प्रो० अनन्त सदाशिव अलतेकर, प्राचीन भारतीय शासन पद्धति, भारतीय भण्डार, प्रकाशन, इलाहाबाद, चतुर्थ सं०, सं०२०२९वि०।

(स) स्व० काशीप्रसाद जायसवाल, हिन्दू राजतंत्र, पहला खण्ड, ना० प्र०स०, वाराणसी, चतुर्थ सं०, सं० २०२७ वि० ।

(द) डॉ० बेणीप्रसाद, हिन्दुस्तान की पुरानी सभ्यता, हिन्दुस्तानी एकेडमी, इलाहाबाद, तृ० संशोधित संस्करण, १९६७ ।

(य) डॉ० रमेशचन्द्र मजुमदार, प्राचीन भारत, चौदहवां अध्याय, प्रकाशक मोतीलाल बनारसीदास, वाराणसी, प्र०सं०१९६२ ई० ।

(र) एडीटर्स प्रो० मोहम्मद हबीब एण्ड खालिक अहमद निजामी, दि इण्डियन हिस्ट्री कांग्रेस पापुलर पब्लिशिंग हाउस, नयी दिल्ली, अगस्त १९७० ।

(ल) डॉ० रामजी उपाध्याय, प्राचीन भारतीय साहित्य की सांस्कृतिक भूमिका, पृ० ५१०-५८८, लोक भारती प्रकाशन, इलाहाबाद, प्र०सं० १९६६ ।

(व) डॉ० आर०सी० मजुमदार, दि स्ट्रगल फार इम्पायर, चैप्टर १३, पृ० २६९-२७४, भारतीय विद्या भवन, बाम्बे, सेकेण्ड एडी०, १९६६ ।

(स) श्री हरिहरनाथ त्रिपाठी, भारतीय विचारधारा, पृ०१-१४७, प्रकाशक नन्दकिशोर एण्ड संस, वाराणसी, प्र० सं० ।

३१- ऋग्वेद १.२५.२० तथा १.१७.१ तथा २.२८.२ ।

३२- तैत्तिरीय संहिता २.६.२.२ ।

३३- शतपथ ब्राह्मण ५.४.४.१४ तथा ५.४.४.१६-१६ तथा ६.३.३.११ ।

३४- डा० ए०एल० बाशम, दि वण्डर दैट वाज इण्डिया, चैप्टर-४ , लन्दन, रिप्रिण्ट, १६५६ ।

३५- महाभारत, शांतिपर्व, २५.३२-३४ ।

३६- कौटिल्य, अर्थशास्त्र १.४.१६ ।

३७- उपरिवत् २.१ ।

३८- मनुस्मृति ७.१४-२१ ।

३९- डॉ० रामजी उपाध्याय, प्राचीन भारतीय साहित्य की सांस्कृतिक भूमिका, पृ० ५१७-५१८ ।

४०- उपरिवत् ,पृ० ५१६ ।

४१- उपरिवत्, पृ० ५१६-५२० ।

४२- उपरिवत्, पृ० ५१०-५८८।

४३- उपरिवत्

४४- राजशेखर, काव्य मीमांसा ४।५-६,७,१० ।

४५- सोमदेव सूरि, यशस्तिलक, पृ० ३१५, काशी प्रकाशन ।

४६- आचार्य दण्डी, दशकुमार चरित, पृ० २५६ ।

४७- `ये पि मन्त्र कर्मशास्त्रकर्तारः शुक्रांगिरसविशालाक्षबाहुदन्ति पुत्र पराशर प्रभृतयस्तैः किमरिषड्वर्गं जितः कृतं वा तः शास्त्रानुष्ठानम् ।`

४७- डॉ० ए०बी०एल० अवस्थी, राजपूत पालिटी, पृ०२४, कैलाश प्रकाशन, लखनऊ, १६६८ ।

४८- उपरिवत्, पृ० २५,२६ ।

४६- उपरिवत्, पृ० २६-३२ ।

५०- उपरिवत्, पृ०३२ ।

५१- कार्पस इन्स्क्रिप्शनुम इण्डिकारुम, वाल्युम ४,पृ०१५०, १५७ ।

५२- डॉ० ए०बी०एल० अवस्थी,राजपूत पालिटी,पृ०३७ ।

५३-(अ) राजबली पाण्डेय,हिस्टारिकल एण्ड लिटरेरी इन्स्क्रिप्शन्स।

(ब) डॉ० वासुदेव उपाध्याय, ए स्टडी आफ ऐन्शियण्ट इण्डियन इन्स्क्रिप्शन्स, पृ० ३७३-४०५,पार्ट २ ।

५४- डॉ० अवधबिहारी पाण्डेय, पूर्व मध्यकालीन भारत का इतिहास पृ० ३५०, सेण्ट्रल बुक डिपो, इलाहाबाद, प्र०सं०१९७० ।

५५- उपरिवत् ।

५६- उपरिवत् ।

५७- श्री लक्ष्मीनारायण गुप्त, मध्यकालीन भारतीय सभ्यता और संस्कृति का इतिहास, पृ० ४०७, प्रेम बुक डिपो,आगरा प्रकाशन, १९७१ ।

५८- उपरिवत्,पृ०४०७ ।

५९- उपरिवत्, पृ० ४०८ ।

६०- डॉ० आर०सी० मजूमदार, दि देलही सुल्तानेट पृ०४४४ ।

६१- श्री लक्ष्मीनारायण गुप्त, मध्यकालीन भारतीय सभ्यता और संस्कृति का इतिहास,पृ० ४०८ ।

६२- उपरिवत्, पृ० ४१० ।

६३- उपरिवत्, पृ०४१० ।

६४- डॉ० अवधबिहारी पाण्डेय, पूर्व मध्यकालीन भारत का इतिहास पृ० ३५४-३५५ ।

६५- उपरिवत्, पृ० ३५५ ।

६६- श्री लक्ष्मीनारायण गुप्त, मध्यकालीन भारतीय सभ्यता और संस्कृति का इतिहास, पृ० ४१२ ।

६७- उपरिवत्, पृ० ४१३ ।

६८- उपरिवत्, पृ० ४१३-४१५ ।

६९- डॉ० राममूर्ति त्रिपाठी, आदिकालीन हिन्दी साहित्य की सांस्कृतिक पीठिका, पृ० १७० ।

७०- उपरिवत्, पृ० १७० ।

७१- उपरिवत्, पृ० १७० ।

७२- उपरिवत्, पृ० १७४ ।

७३- उपरिवत्, पृ० १७४ ।

७४- उपरिवत्, पृ० १७४ ।

७५- उपरिवत्, पृ० १७५ ।

७६- उपरिवत्, पृ० १७५ ।

७७- उपरिवत्, पृ० १७५ ।

७८- उपरिवत्, पृ० १७५ ।

७९- उपरिवत्, पृ० १७५ ।

८०- उपरिवत्, पृ० १७६ ।

८१- डॉ० राजबली पाण्डेय, हिन्दी साहित्य का वृहत इतिहास, प्र०भाग, खण्ड १, अध्याय ५, पृ० १०७ ।

८२- डॉ० राममूर्ति त्रिपाठी, आदिकालीन हिन्दी साहित्य की सांस्कृतिक पीठिका, पृ० १७६ ।

८३- उपरिवत्, पृ० १७६ ।

८४- उपरिवत्, पृ० १७६ ।

८५- डा० राजबलीपाण्डेय, हिन्दी साहित्य का वृहत इतिहास, पृ० १०७ ।

८६- उपरिवत्, पृ० १०७ ।

८७- उपरिवत्, पृ० १०७ ।

८८- उपरिवत्, पृ० १०८ ।

८९- उपरिवत्, पृ० १०८ ।

९०- उपरिवत्, पृ० १०८ ।

९१- डॉ० राममूर्ति त्रिपाठी, आदिकालीन हिन्दी साहित्य की सांस्कृतिक पीठिका, पृ० १७७ ।

९२- डॉ० राजबली पाण्डेय, हि०सा० बृहत इतिहास,प्रथम भाग, पृ० १०९ ।

९३- उपरिवत्, पृ० १०९ ।

९४- उपरिवत्, पृ० १०८ ।

९५- उपरिवत्, पृ० १०९ ।

९६- उपरिवत्, पृ० १०९ ।

९७- उपरिवत्, पृ० १११ ।

९८- उपरिवत्, पृ० १११ ।

९९- डॉ० राममूर्ति त्रिपाठी, आदिकालीन हिन्दी साहित्य की सांस्कृतिक पीठिका, पृ० १७८ ।

१००- उपरिवत्, पृ० १७९ ।

१०१- उपरिवत्, पृ० १७९ ।

१०२- उपरिवत्, पृ० १७९ ।

१०३- उपरिवत्, पृ० १७९ ।

१०४- डॉ० राजबली पाण्डेय, हि०सा० का बृहत इतिहास, प्र०भाग, खण्ड १, पृ० ११२, अध्याय ५ ।

१०५- उपरिवत्, पृ० ११२ ।

१०६- उपरिवत्, पृ० ११२ ।

१०७- डॉ० राममूर्ति त्रिपाठी, आदिकालीन हि०सा० की सांस्कृतिक पीठिका, पृ० १७९ ।

१०८- यजुर्वेद ३१।११ तथा ऋग्वेद १०।९०।१२ ।

१०९- श्री मोहनलाल महतो 'वियोगी' आर्यजीवन दर्शन,पृ०३२०-३६०, बिहार हिन्दी ग्रन्थ अकादमी,पटना प्रकाशन, प्र०सं०१९७१ई० ।

११०- श्री लक्ष्मीनारायण गुप्त,मध्यकालीन भारतीय सभ्यता एवं संस्कृति का इतिहास, पृ० ३०७,४३०८ ।

१११- उपरिवत्, पृ० ३०५ ।

११२- उपरिवत्, पृ० ३०५ ।

११३- श्री के० दामोदरन, भारतीय चिन्तन परम्परा,पृ० ३०४,पीपुल्स पब्लिशिंग हाउस, दिल्ली

११४- श्री के० एम० अशरफ, लाइफ एण्ड कण्डीशन्स आफ दि पीपुल्स आफ हिन्दुस्तान, पृ० ७८ ।

११५- श्री के० दामोदरन, भारतीय चिन्तन परम्परा, पृ० ३०५ ।

११६- श्री मुरे टी० टाइटस, इस्लाम इन इण्डिया एण्ड पाकिस्तान, पृ० १७७ ।

११७- डॉ० आर०सी० मजुमदार , दि हिस्ट्री एण्ड कल्चर आफ दि इण्डियन पीपुल, वाल्युम ५, पृ० ५१५ ।

११८- एपीग्राफिया इण्डिया, १३- १८ ।

११९- एनुअल रिपोर्ट ~~xxxx~~ आन साउथ इण्डियन एपीग्राफिया,नं०४५ आफ दि योर , १९१० ।

१२०- डॉ० आर०सी० मजुमदार, हिस्टोरी एण्ड कल्चर आफ दि इण्डियन पीपुल, वाल्युम ५, पृ०५१७ ।

१२१- उपरिवत्, पृ० ५१७ ।

१२२- उपरिवत्,पृ० ५१७-५१९ ।

१२३- उपरिवत्, पृ० ५२१ ।

१२४- उपरिवत्, पृ० ५२१ ।

१२५- उपरिवत्, पृ० ५२५ ।

१२६- एपीग्राफिया कर्नाटिका, वाल्यूम ७ ।

१२७- डॉ० आर०सी० मजुमदार, हिस्ट्री एण्ड कल्चर आफ दि इण्डियन पीपुल, वाल्यूम ५, पृ० ५२६, भारतीय विद्या भवन, बम्बई ।

१२८- उपरिवत्, पृ० ५२६ ।

१२९- उपरिवत्, पृ० ५२६ ।

१३०- डॉ० राममूर्ति त्रिपाठी, आदिकालीन हिन्दी साहित्य की सांस्कृतिक पीठिका, पृ० १६५ ।

१३१- श्री लक्ष्मीनारायण गुप्त, मध्यकालीन भारतीय सभ्यता एवं संस्कृति का इतिहास , पृ० ३६२ ।

१३२- उपरिवत्, पृ० ३६३ ।

१३३- डॉ० आर०सी० मजुमदार, दि देलही सल्तनत, पृ० ६४० ।

१३४- श्री लक्ष्मीनारायण गुप्त, म०भा० सभ्यता एवं संस्कृति का इतिहास, पृ० ३६६ ।

१३५- उपरिवत्, पृ० ३६६ ।

१३६- उपरिवत्, पृ० ३६७ ।

१३७- उपरिवत्, पृ० ३६८ ।

१३८- उपरिवत्, पृ० ३७३ ।

१३९- उपरिवत्, पृ० ३७४ ।

१४०- उपरिवत्, पृ० ३७४ ।

१४१- डॉ० आर०सी० मजुमदार, दि देलही सल्तनत, पृ० ६५८ ।

१४२- उपरिवत्, पृ० ६५८ ।

१४३- डॉ० रामजी उपाध्याय, प्राचीन भारतीय साहित्य की सांस्कृतिक भूमिका, पृ० ६८१ ।

१४४- ऋग्वेद १०.७०.६ ।

१४५- ऐतरेय ब्राह्मण ६.५.१ ।

'देवशिल्पान्येतेषां वै शिल्पानामनुकृतीह शिल्पमधिगम्यते ।'

१४६- डॉ० रामजी उपाध्याय, प्रा० भा०सा० की सांस्कृतिक भूमिका, पृ० ६८२ ४- ६८३ (सं० डॉ० राजबली पाण्डेय, हिं०सा० का बृ० इतिहास) ।

१४७- डॉ० भगवतशरण उपाध्याय, कला, चतुर्थ खण्ड, हिं०सा० की पीठिका पृ० ५६५-५६७, ना०प्र०स० प्रकाशन, वाराणसी ।

१४८- उपरिवत्।

१४९- उपरिवत् ।

१५०- उपरिवत् ।

१५१- उपरिवत् ।

१५२- उपरिवत् ।

१५३- उपरिवत् ।

१५४- १६७ सं० डॉ० राजबली पाण्डेय, हिंसा० का बृहत इतिहास, प्रथम भाग,खण्ड ४,अध्याय १,पृ० ५७५- ६११, ले० डा० भगवतशरण उपाध्याय ।

१६८-१७५ उपरिवत्, अध्याय २, पृ०६१२-६३४ ।

१७६-१७९ उपरिवत्, अध्याय ३, पृ० ६३५-६३९ ।

१८०- डॉ० राधाकमल मुकर्जी, भारत की संस्कृति और कला, पृ० ३० राजपाल एण्ड संस, दिल्ली प्रकाशन, १९५९ ई० ।

१८१- उपरिवत्, पृ० ३०-३१

१८२- उपरिवत्, पृ० ३१ ।

१८३- उपरिवत्, पृ० २४ ।

१८४- उपरिवत्, पृ० २४ तथा --
डॉ० पाण्डुरंग वामन काणे, धर्मशास्त्र का इतिहास,प्र०भा०,प्र० खण्ड, प्र० ३-९७, हिन्दी समिति, उ०प्र० प्रकाशन, वि०सं० ।

१८५- डॉ० आर०सी० मजुमदार, दि स्ट्रगल फार इम्पायर, पृ०३६८ ।

१८६- राहुल सांकृत्यायन, इस्लाम धर्म की रूपरेखा, पृ० ८२-८३ ।
किताब महल, इलाहाबाद, चतुर्थ संस्करण, १६६४ ई०

तथा

सैयद अबुल आला मौदुदी, इस्लाम प्रवेशिका, पृ०८२, मरकजी मक्तबा जमाअत इस्लामी हिन्द, दिल्ली, तृ०सं०, १६६७ ।

१८७- वैशेषिक सूत्र १।१।२ ।

१८८- महाभारत शान्तिपर्व -- १०६।११।

१८९- ऋग्वेद-- १।१६४।४६ ।

१९०- यजुर्वेद -- ३२।३

१९१- श्वेताश्वतरोपनिषद्-- ६।११

एको देव: सर्व भूतेषु गूढ:
सर्व्वं व्यापी सर्व्वभूतान्तरात्मा ।
कर्म्माध्यक्ष सर्व्वभूताधिवास:
साक्षी चेता केवलो निर्गुणश्च ।।

-0-

तृतीय अध्याय

-0-

आदिकालीन हिन्दी रासो काव्य परम्परा में प्रतिबिम्बित भारतीय समाज : समाज-संगठन, वर्ण, जाति, कुल कर्म और आश्रम

तृतीय अध्याय

-0-

आदिकालीन हिन्दी रासो काव्य परम्परा में प्रतिबिम्बित भारतीय समाज : समाज-संगठन, वर्ण, जाति, कुलकर्म और आश्रम

(विषय- विवरणिका)

भारतीय समाज में वर्ण, जाति और संस्कृति का सम्बन्ध ; जैन धर्म तथा वर्ण-जाति ; इस्लाम धर्म तथा जातियां -- उपजातियां, सामाजिक संरचना, रासो काव्यों में चार वर्ण, षट्भेष तथा दरस-षट्, परम्परागत वर्ण चतुष्टय तथा दरस- षट्; पृथ्वीराज रासो में १८ वर्ण, व्यावसायिक चतुर्वर्ण ; नव मुस्लिम ; जातियों की आकृति-मूलकता, जातियों के गुण-कर्म ; ब्राह्मण, पुरोहित और ज्योतिषी ; क्षत्रियों की जाति- उत्पत्ति, वंशावली, सामाजिक प्रतिष्ठा, ब्रह्म-क्षत्रियत्व, आकृति- प्रकृति, कर्तव्य-चरित्र, शौर्य- शिक्षा, स्वामिभक्ति और शरणागत-संरक्षा ; बनिक और उनका मुख्य धर्म, चरित्र, आकृति-प्रकृति, दया-दानशीलता ; शूद्र, नाई, नट, नर्तक, माली, सुनार ; अहीर, कायस्थ, दसौंधी, जाट, भाट, चारण, विच्छिन्न आश्रम-व्यवस्था, सन्दर्भ-सरणि ।

-0-

तृतीय अध्याय

-0-

आदिकालीन हिन्दी रासो काव्य परम्परा में प्रतिबिम्बित

भारतीय समाज

भारतीय समाज में वर्ण और जातियां, सांस्कृतिक चेतना की आधायिका हैं। जैन धर्म में प्रथमतः वर्ण और जातियां प्रश्रय नहीं पा सकीं, किंतु कालान्तर में वह भी इनसे प्रभावान्वित हुआ। इस्लाम धर्म का भी भारतीयकरण जातियों- उपजातियों के रूप में हो गया। आलोच्यकालीन रासो काव्यों -- पृथ्वीराज रासो, परमाल रासो आदि में चार वर्णों का उल्लेख मिलता है। पृथ्वीराज रासो में महाराज सोमेश्वर,[1] पृथ्वीराज[2] और सलख-पंवार[3] के राज्यों में चार वर्णों को सुखपूर्ण जीवनयापन और होलिका के अवसर पर आपस में क्रीड़ा करते हुए दिखाया गया है।[4] पृथ्वीराज रासो और परमाल रासो में षट्वर्ण, दरस- षट् और षट्भेष का उल्लेख प्राप्त होता है।[5] महाराज पृथ्वीराज को उनके राज्याभिषेक के समय 'षट्-दरस', दर्शन और आशीर्वाद देते हैं,[6] साथ ही पृथ्वीराज चौहान को सर झुका कर आभार-प्रदर्शन करते हैं। चन्दवरदायी ने पृथ्वीराज के राज्य में षट्-वर्णों का निवास और मोहम्मद[7] गोरी के आक्रमण के समय षट्-वर्णों का चिन्तित होना निदर्शित किया है। कवि[8] चन्द अपने को षट्-वर्णों में श्रेष्ठ मानते हुए[8अ] आत्माभिमान प्रदर्शित करता है। पृथ्वीराज रासो के अन्तर्गत यह स्थल द्रष्टव्य है --

षट दरस दरसि आसिष्ष देत । प्रथिराज बंदि सिर मेलि लेत ।
दै दान मान षट भेष कौ । कहै राज दुग्गा हुजर ।

\+ + +

आवै न पार लक्खो सहज । षट बरन गुष्षह ग्गन ।

\+ + +

ग्रह बंभन ग्रहवान नर, ग्रह क्षित्री कह ग्रन्न
सुणी क्ष नर नारि मुख, सह लग्गे सन रन्न ।।

\+ + +

षट बरन नर भट्ट को । दहि बिरद बर कोह ।

परमाल रासो में भी रानी मल्हना आरती उतारती हुई षट-भेष को दान देती है[9]। पृथ्वीराज चौहान भी चण्डी देवी की पूजा के बाद षटभेष को दान देते हैं[10]। परमाल रासो का यह उद्धरण द्रष्टव्य है--

करै आरती मल्हन दे, कंचन थारि उतारि ।
दियव दान षटभेष कह, गावत मंगलचारि ।

\+ + +

दियव दान षट भेष कह चहुवान सुख पाय ।

पृथ्वीराज रासो में चन्दवरदायी ने ब्राह्मण जाति को षट-कर्मी संज्ञा से विभूषित करते हुए उन्हें वेदज्ञ,मर्मज्ञाता और गुरुता मण्डित कहा है[11] :--

फुनि पंडित मंडप मंडिय, वेद पाठ आधार ।
छट करमी मरमी अधिक, गुरु संगह गुरु भार ।

उल्लिखित उद्धरणों -- षट-वर्ण, षट-दरस तथा षट-भेष से यह स्पष्ट होता है कि परम्परागत वर्ण-चतुष्टय की धारणा के साथ

था तत्कालीन समाज में षट-वर्ण व्यवस्था भी प्रचलित था । सम्भवत: इनमें योगी, सन्यासी, भाट, जंगम, ब्राह्मण और यती को पूज्य मान कर, विभिन्न अवसरों पर उन्हें दानादि दिया जाता था[१२]। `राजस्थानी शब्दकोश` के आधार पर ब्राह्मण, जोगी, जंगम, भाट, सन्यासी और साधु-- यह षट-दर्शन अथवा षट-वरण कहे जाते हैं[१३]। पं० ज्वालाप्रसाद मिश्र द्वारा सम्पादित `जाति-भास्कर` के अन्तर्गत यह उल्लेख है कि षट-दर्शन में बहुत सी जातियां और भिक्षुक मिलकर एक रूप हो गये थे[१४]। डॉ० मोतीलाल मेनारिया इनके अन्तर्गत -- ब्राह्मण, चारण, सन्यासी, जंगम, यती और योगी की गणना करते हैं[१५]।

पृथ्वीराज रासो में ही १८ वर्णों को भोज देने का चित्रण मकर संक्रान्ति के पर्व पर, समर विक्रम के द्वारा किया गया है --

मुंजाई रावर समर । आवै बरन अठार ।
नह को पूछै अप्प पर। जिम्मै अन्न अपार[१६]।

डॉ० वासुदेवशरण अग्रवाल के अनुसार पाणिनि काल से ही जातीय अठारह श्रेणियां बन गई थीं[१७]। डॉ० दशरथ शर्मा के द्वारा `कान्हड़ - प्रबंध` के अन्तर्गत अठारह श्रेणियों का निर्देश किया गया है[१८]। मत्स्यपुराण में भी शूद्रों की अठारह जातियां बताई गई हैं[१९]। पृथ्वीराज रासो में भाटों को एक जाति कहा गया है --

बरदाय दुग्ग दुग्गह सुजिय । भट्ट जाति जोहं दुनी[२०]।

इसी प्रकार हम्मीर रासो में भी क्षत्रिय जाति का उल्लेख किया गया है --

रह्यौ नहिं जाति विशेष । भए निर्मूल जो क्षात्रि अशेष[२१]।

+ + +

दूजै तीजै उपजै, क्षात्रि जाति पड़िहार[२२]।

प्रताति यह है कि तत्कालीन भारत में अनेक व्यवसायों के अनुसार अनेक जातियां-उपजातियां, चतुर्वर्ण समाहित हो गई थीं और उनके विविध कार्य-कलाप निश्चित हो गये थे । इस्लाम धर्मावलम्बियों का कोई विशेष वर्ण-व्यवस्था नहीं था । पृथ्वीराज रासो में ही उन्हें मलेच्छ, हमीर तथा तुर्क कहा गया है :--

भिरे जांम दोई जुध्ध हाडू हमीर ।[२३]

\+ \+ \+

ग्रहे मेछ भग्गे जुरे सूर जुहै[२४] ।

\+ \+ \+

रहे जानि हिंदू तुरक केलि होरी ।[२५]

++ ++ ++

कहे मेच्छ हिन्दू मिले जुद्ध अन्नी[२६]

मुसलमानों को ही पृथ्वीराज रासो में दानव और असुर भी कहा गया है --

लच्छनि ग्रीव वन वीर रच ।

दह दिसि भिरि दानव मिलिय ।[२७]

++ ++ ++ ++

उतर आसुर सेना रची । मज्झे हाडुलि जंबु ।[२८]

विवेच्यकाल में फिरंगी, नव मुसलमान और मुसलमानों के लिए असुर, दानव, निशाचर, म्लेच्छ और पिशाच आदि सम्बोधन प्रयुक्त होने का कारण पारस्परिक धर्म-विद्वेष था । वेद-विहित मान्यताओं की अवमानना करने वालों को प्रारम्भ से ही इन शब्दों से अभिहित किया जाता था । कहीं-कहीं मुसलमानों के लिए `यवन` शब्द का भी प्रयोग किया गया है । इसी प्रकार हिन्दुओं को भी घृणावश `काफर` शब्द से पुकारा जाता था --

कहा उर काफर दागहु मुज्फ ।

कहा भर अवध आगरि मुज्फ ॥[२९] --पृ०रा० काशी संस्करण

उक्त तथ्य का निदर्शन अलबरूनी इन शब्दों में करता है --

In the third place in all manners and usages they differ from us to such a degree as to frighten their children with us with our dress and our ways and customs, and as to declare us to be devil's breed, and our doings as the very opposite to all that is good and proper.[30]

पृथ्वीराज रासो में पठानों का आकृतिमूलक चित्रण प्रस्तुत किया गया है, जिसमें उनके ऊंचे कंधे, छोटा गर्दन, लम्बा मुंह, लम्बी बाहें, लाल रंग के कान, मुंह और आंखें बताया गई हैं[३१]।

ऊंच कहर कंधान, छोट गिरदान लंब मुख ।

रत्त कर्न मुख चक्खु, कंक अनसंक अवनि हुअ ।[३२]

\+ + +

पृथ्वीराज रासो के अनुसार मुगल दाढ़ी और मूंछ दोनों रखते थे[३३]। कविचंद ने मुसलमानों का अनेक उपजातियों को दर्शाया है[३४] :--

सरवानि ऐराकि मुगल्ल कहो । बहु जाति अनेक अनेक मतो ।

\+ + +

अनेक जात जानैति कुल। विरह नैत अभि ग्रहि करद ।

तुरकान बीच बल्लोच बर । चिंतपुर हाबी मरद ।

मोहम्मद गोरी की फौज में स्थान विशेष के आधार पर जातियोंके नाम मिलते हैं । पृथ्वीराज रासो के अनुसार इनमें गहव्वर ,तत्तार,

गक्खर, खुरासानी, रूमी, मुगल, हब्सी, सुरतानी, ईराकी, बदली और उजबक आदि जातियों के सैनिक शामिल थे।[35] डॉ० माताप्रसाद गुप्त द्वारा सम्पादित पृथ्वीराजरासउ के ९२ वें सर्ग और ९९ वें छन्द के अन्तर्गत शहाबुद्दीन गोरी के दरबार में चौंतीस मुस्लिम जातियों के नाम गिनाये गये हैं।[36]

क्षत्रिय जाति के ही समान मुसलमानों के भी सम्बन्ध में पृथ्वीराज रासो में यह बताया गया है कि युद्धस्थल में प्राण त्याग करने वाले मुसलमानों को भी बहिश्त में हूरें वरण करती हैं, मुसलमानों में भी स्वामिधर्म क्षत्रियों की ही भांति था और जो व्यक्ति युद्ध-क्षेत्र में अपने स्वामी का साथ छोड़ता था, उसे दोज़ख मिलता था और इस प्रकार के भगोड़ों का मांस कुत्ते और कौवे तक नहीं खाते थे[37] --

बढ़ि सु बर भिस्त अरु बचन जिय, आनंयो गौरी गरुव।

\+ \+ \+

क्षत्रिनि इच्छित अच्छरी, मिच्छवि इच्छत हूर।

मुसलमानों की वीरता और स्वामिभक्ति का प्रतीक मीरहुसैन है जो कि मोहम्मद गोरी का चचेरा भाई है। पृथ्वीराज रासो के अनुसार वह युद्ध क्षेत्र में पृथ्वीराज चौहान की ओर से लड़ता हुआ मारा जाता है।[38] मुसलमानों की निर्दयता का उल्लेख कई बार हुआ है।[39] मोहम्मद गोरी पृथ्वीराज चौहान की निर्ममतापूर्वक आँखें फोड़वाता है, जब कि पृथ्वीराज चौहान ने उसे कई बार कैद से आदर पूर्वक मुक्त किया था[40] :--

तुम कड्ढहु चहुआन। नयन दिठ बंकन कंढय।

भ्रम पारि तेन बहु आन गहि। बंधिय राजन कढ्ढि द्रिग।

भारतीय संस्कृति में वर्ण और जाति की व्यवस्था गुण-कर्म के अनुसार पुरातनकाल से चली आ रही है । वैदिक युग में अपने मूल रूप में वर्ण व्यवस्था थी । ऋग्वेद पुरुष सूक्त में वर्ग, वर्ण या जाति का उल्लेख हुआ है[४१] :

ब्राह्मणोऽस्य मुखमासीद् बाहू राजन्य: कृत: ।
ऊरू तदस्य यद्वैश्य: पद्भ्यां० शूद्रो अजायत ।।

तत्कालीन भारत में यह वर्ण और जातियां समाज की संगठनात्मक इकाई प्रकृति के गुणभेद की परिणति स्वरूप एवं मनोवैज्ञानिक आधार पर थीं । श्रीमद्भगवतगीता की भी यही धारणा है[४२]:--

स्वे स्वे कर्मण्यभिरत: संसिद्ध ब लभते नर:

पृथ्वीराज रासो के अन्तर्गत ब्राह्मणों को विप्र विप्र, द्विज, द्विजराज, भूदेव, भुगुर, गुर, बम्भन अथवा बांमन संज्ञाओं से अभिहित किया गया है[४३] :--

बोलि विप्र प्रथिराज, सब बुद्धी अधिकारिय ।

चन्दवरदाई के द्वारा किसी ऐसे ब्राह्मण के सामने पड़ जाने पर जिसके मस्तक पर तिलक न हो, यात्रा न करने का उल्लेख किया गया है[४४] :

अतिलक बंमन स्याम अपु-जोगी हीन विभुक्त ।
समुह राज परस्स्ये । गमन बरज्जै नित ।

प्रतीत होता है कि ब्राह्मणों के लिए चन्दन, तिलक और यज्ञोपवीत आदि अनिवार्य थे[४५] । क्षत्रियों के लिए ब्राह्मण पूज्य माने जाते थे, जिनके देखने से शरीर के पाप नष्ट हो जाते थे[४६] । समाज में ब्राह्मणों को अत्यधिक प्रतिष्ठा थी । महाराज पृथ्वीराज प्रतिदिन सर्वप्रथम गाय और ब्राह्मण का दर्शन करते थे[४७] :

प्रात रात जग्गे प्रथम गो दुज दरसन किन्न ।

ब्राह्मणों के लिए वेदों का अध्ययन, दान लेना-देना, अध्ययन-अध्यापन, यज्ञ और पौरोहित्य आदि प्रमुख कार्य थे[४८] :

ओऽम् नमो सिद्धं प्रथमं पठाय । सब भाव भेद अक्खर बताय ।

+ + +

कहो विप्र ते उट्ठि ते प्रात चल्ले.... वेद विप्प ।

पृथ्वीराज रासो में पृथ्वीराज चौहान को १४ विद्या, ७२ कला और ८४ विज्ञानों की शिक्षा पुरोहित गुरुराम के द्वारा दी जाती है[४९] । संयोगिता तथा उसकी सखियों को 'विनय मंगल' की शिक्षा ब्राह्मणों द्वारा दी जाती है[५०] । पृथ्वीराज चौहान को अक्षर ज्ञान के पूर्व ओऽम नमः सिद्ध का मंत्र सीखना पड़ता है[५१] । वीसलदेव, पृथ्वीराज, वीरसिंह देव तथा राजसिंह के राज्याभिषेक के समय ब्राह्मणों द्वारा यज्ञ किया जाता है[५२] । विवाह, प्रासाद-निर्माण, सरोवर-सृजन आदि अवसरों पर दुष्ट ग्रहों की शान्ति के लिए ब्राह्मण यज्ञ करते थे । ब्राह्मणों को ज्योतिष-ज्ञान होता था । पृथ्वीराज-चौहान ब्राह्मणों से शुभमुहूर्त पूछते हैं, जब वह संयोगिता हरण के लिए प्रस्थान करते हैं[५३] :

बोल्यौ बंभन सूर तंह, कहौ सु मन की बात ।

सो दिन पंडित देहि हम, जिहि दिन चले सघात ।

पृथ्वीराज रासो आदि में विशेष कार्यों की निष्पत्ति के पूर्व ग्रहों की स्थिति और मुहूर्त आदि की जानकारी के लिए ब्राह्मणों अथवा गणकों को बुलाया जाता है । प्रतीति यह है कि तत्कालीन समाज में ज्योतिष शास्त्र में पारंगत ब्राह्मणों को ज्योतिषी कहा जाता था और उनका मुख्य कार्य ग्रह नक्षत्रों की स्थिति का निर्देश, मुहूर्त बताना, शकुन-अपशकुन की जानकारी, जन्मपत्री

बनाना और अच्छे-बुरे सपनों का परिणाम निश्चित करना था । महाराज
सोमेश्वर को उनका ज्योतिषी प्रातः काल ही उन्हें ग्रहों की स्थिति, योगिनी
विचार तथा उस दिन के शुभा-शुभ फल की जानकारी कराता है[५४]। पृथ्वी-
राज रासो में अनेक स्थलों पर ब्राह्मणों के ज्योतिष-कर्म के उल्लेख से भरा
पड़ा है । जब महाराजा अनंगपाल स्वप्न में एक शेर को यमुना के उस पार
से दिल्ली आकर एक दूसरे सिंह से क्रीड़ा करते हुए देखते हैं और साथ ही
तोमरों को दक्षिणांचल की ओर जाते हुए देखते हैं, तब इस स्वप्न का फल
जब जानने के लिए वह एक ज्योतिषी को बुलाकर उसे आसन और पान देकर
स्वप्न बताते हैं और वह ज्योतिषी उन्हें स्पष्ट कर देता है कि तोमरों का
विनाश होगा और दिल्ली नगरी पृथ्वीराज चौहान के अधिकार में आयेगी[५५]।
इसी प्रकार का स्वप्न पृथ्वीराज चौहान को भी दिखायी पड़ता है, जिसमें
पृथ्वीराज चौहान योगिनी के द्वारा दिल्ली के सिंहासन पर अधिष्ठित होते
हैं और इसके लिए पृथ्वीराज की मां ज्योतिषी बुलाकर स्वप्न का फल पूछती
है[५६]। ज्योतिषियों द्वारा पांच दिन के बाद ही पृथ्वीराज के लिए दिल्ली का
राज्याधिकार मिलने की भविष्यवाणी की जाती है[५७]। सामन्तों के द्वारा
पृथ्वीराज को सलाह भी दी जाती है कि ज्योतिषियों को बुलाकर अपने पिता के
शत्रुओं को नष्ट करने के लिए प्रयाण करने के पूर्व ज्योतिषियों से शुभ मुहूर्त की
जानकारी की जाये[५८]। ज्योतिषी आता है और शुभघड़ी मुहूर्त बताते हुए
आक्रमण का समय निश्चित करता है[५९]। इसी ग्रन्थ में सोमेश्वर को भी
युद्ध हेतु प्रस्थान-पूर्व मुहूर्त पूछने की ओर संकेत है[६०]। गुप्त धन की जानकारी
के लिए ज्योतिषी अदृश्य में छिपी हुई सम्पत्ति को खुदाई के पूर्व मंत्र-शक्ति के
द्वारा दुष्ट ग्रहों को शान्त करते हैं । वह ज्योतिषी कीली आदि के द्वारा
राज्यों को स्थायी बनाने के लिए प्रयास करते हैं[६१]:

सम मध जोतिगा । सव्व जोतिग उच्चारे ।

द्रिष्ट राह ग्रह दुष्ट। मंत्रह जंत्रह बर टारे ।।

पृथ्वीराज रासो में यह विदित किया गया है कि तोमरवंश को स्थायी रूप से दिल्ली पर शासन हेतु महाराज कल्हन ने ज्योतिषी के द्वारा एक मंत्राभिषिक्त कीली गाड़ी थी । अनंगपाल के द्वारा ~~उसी कीली को पुनः दूसरे~~ ज्योतिषी ~~से~~ ~~जन्म~~ जन्मपत्रियाँ बनाने का कार्य भी किया जाता था । अनंगपाल ने अपने दौहित्र पृथ्वीराज के जन्म पर ज्योतिषी के द्वारा जन्मपत्री लिखवाई थी । ज्योतिषियों की वाणी ध्रुवसत्य समझी जाती थी तथा उनके कथन पर पूर्ण विश्वास किया जाता था । यदि कभी कोई राजा उनकी भविष्यवाणी पर विश्वास न करके उनके कथन के विरुद्ध कार्य करता था तो अभिशप्त होता था । इस प्रकार की घटना का वर्णन अनंगपाल के सम्बन्ध में किया गया है, जब वह व्यास के द्वारा अभिमंत्रित कीली परीक्षार्थ करने के लिए उखाड़ लेते हैं तब वह व्यास के द्वारा दुर्मति बताया जाता है और उसको चौहानों द्वारा तथा चौहानों को तुर्कों द्वारा पराजित होने की भविष्यवाणी करता है[63]। प्रिया कुंवरि के विवाह के समय अपशकुन होने पर ज्योतिषी भविष्यवाणी करता है कि २१ वर्ष के बाद दिल्ली पर हिन्दू अथवा तुर्क दोनों में एक ही का यश शेष रहेगा[64]। ऐसा प्रतीत होता है कि उस समय कुछ ज्योतिष छल-कपट और प्रपंच के द्वारा जनता को मूर्ख बनाकर पैसा ऐंठने का धंधा भी करते थे जिन्हें वेश्याओं का रूप कहा गया है[65]:

गनिका गनिक कब्बंद की, ठग विधा परवीन ।

परमाल रासो तथा पृथ्वीराज रासो से यह स्पष्ट होता है कि उस समय ब्राह्मण केवल शास्त्रों के जानकार ही नहीं थे, वरन् शस्त्रविधा में भी निपुण थे[66]:

चलंति विप्र नागरं । करंत लोह अगारं ।

इसके अतिरिक्त ब्राह्मण भोजन बनाने का कार्य सम्पादित करते थे । कविचंद-बरदायी ने स्वतः गजनी में बन्दी किये गये पृथ्वीराज चौहान के लिए १०ब्राह्मण रसोइये का कार्य करने के लिए नियुक्त बताये हैं[67]।

क्षत्रियों के सम्बन्ध में पृथ्वीराज रासो, परमाल रासो आदि में विस्तृत विवरण प्राप्त होता है। इनकी जाति, उत्पत्ति, वंशावली, समाज में स्थान, ब्रह्म-क्षात्रियत्व, आकृति-प्रकृति, कर्तव्य-चरित्र, शौर्य-शिक्षा, स्वामिभक्ति और शरणागत-संरक्षा आदि के विवरण रासो-ग्रन्थों में अनेकशः उपलब्ध हैं। पृथ्वीराज रासो के आधार पर यह ज्ञात होता है कि क्षत्रियों की उत्पत्ति आबू पहाड़ पर ऋषियों के द्वारा किए गए यज्ञादि अनुष्ठानों से हुई।[68] पृथ्वीराज रासो में चन्द्रवंश और सूर्यवंश की उत्पत्ति का विवरण प्राप्त होता है।[69] पृथ्वीराज रासो में ही चौहानों की आद्य उपजाति की उत्पत्ति अग्निकुण्ड के द्वारा दिखायी गई है।[70] परमाल रासो में चन्देलवंश की उद्भूति के सम्बन्ध में चन्द्रदेव को विधवा ब्राह्मणी के द्वारा उत्पन्न बताया गया है तथा ब्रह्मा का यह आश्वासन भी उद्धृत किया गया है कि धरती का भार आततायियों से कम करने के लिए बनिल और ऊदल आल्हा तथा ऊदल के रूप में अवतरित होंगे।[71]

क्षत्रियों के लिए पृथ्वीराज रासो में राजपुत, क्षितिपति, ठाकुर और रजपूत आदि सम्बोधन प्राप्त होते हैं।[72] पृथ्वीराज रासो में ही राजपुत शब्द के लिए परशुराम के द्वारा क्षत्रिय वंश विनाश की कथा दी गई है[73] --

परसराम छिति पति हते छिति अप्पी निज बंध।

+ + +

दस हजार ब्रमवंत। रिषि छिय ठंकि धरत्री।

फरसराम के करत। बार इक्कीस न छि त्री।

कासिप को है द्रिमयौ। उदधि सारो महि मंडल।

तपन तात मन छांडि। गयौ मन ग्रहै कमंडल।

बहुधा विचार तब कड्ढि। मिष रछा कारन थप्पिय।

उत्पन्न हुर तिनके सरन। दिष्षि नाम रजपुत(रजपूत)दिय।

पृथ्वीराज रासो में कई स्थानों पर क्षत्रियों के ३६ कुलों का या वंशों का उल्लेख किया गया है । यह वंश किसी भी विशेष अवसर-- विवाह,राज्यारोहण, पुत्रोत्पत्ति अथवा युद्ध-प्रयाण के काल में आहूत किए जाते थे :

छत्तीस कुली वर बंस किय [७४]

विगसंत वदन छत्तीस बंस [७५]

पृथ्वीराज रासो में एक छन्द के अन्तर्गत छत्तीस राजवंशों का उल्लेख किया गया है, जिसके आधार पर कर्नल टाड ३० वंश और डा० राजबली पांडेय तथा चिन्तामणि विनायक वैद्य ३६ वंशों का नामांकन करते हैं [७६] । पृथ्वीराजरासो के छत्तीस वंश और वह छंद इस प्रकार है [७७]-- रविवंश, चन्द्रवंश, यादववंश, कछवाहे, परमार, तोमर, चौहान, चालुक्य, राठौर, सिलार, आभीर, दाहिया, मकवाना, गौर, गोहिल, गहिलौत, चावड़ा, दधिषट, कारहपाल, कोटपाल, हुल, डाड़ा, कलाष, मट, निकुंभ,धन्यपालक, राजपाल, कालछर :

रवि ससि यादव बंस, ककुत्स्थ परमार सदावर ।
चाहुवान चालुक्क, छंद सिलार आभो यर ।
दोयमत मकवान, गरूअ गोहिल पुत्र ।
चापोत्कट परिहार, राव राठौर रोसजुत ।
देवरा टांक सैंधव अनिग, यौतिक प्रतिहार दधिषट ।
कारट्ट पाल कोटपाल हुल, हरितट गौर कलाष भट ।
धन्यपालक निकुंभ वर, राजपाल कविनीस ।
काल छुरक्के आदि दे, बरनै बंस छतीस ।

यद्यपि तत्कालीन भारत में छत्तीस राजवंशों की यह संख्या राजकीय उत्थान-पतन के साथ घटती बढ़ती रही है, किन्तु पृथ्वीराज रासो में समस्त कुलों की समान स्तरीय प्रतिष्ठा का उल्लेख किया गया है [७८] :

सिवान वंस हलास कुल, राम समान गनिये अवर ।

कई स्थलों पर चौहानों को सर्वोच्च घोषित किया गया है :[79]

सुरनाथ सग गुर सकल सोम । वंसह हलास चहुवान ओप ।

+ + +

पुत्री पुत्र पवित्र पंच अवनी हलास ....वन ।

पृथ्वीराज रासो के अन्तर्गत गुजरों को गंवार और मूर्ख मान कर सम्बोधित किया गया है और इस प्रकार उनकी हास्यास्पद स्थिति का चित्रण भी अनेक स्थलों पर उपलब्ध होता है ।[80]

रे गुज्जर गंवार, राज ले मंत न होई ।

+ + +

गुज्जर गमार संग्रह चला । पंत देव दुग्गन गने ।

+ + +

म्हे गामा गुज्जर गल्लियां । हंसाई हंसाईयां ।

क्षत्रियों को परमाल रासो और पृथ्वीराज रासो में ब्रह्म तथा द्विज शब्दों से भी नामों के आगे या पीछे स्थापित करने की प्रथा चालुक्यों और चन्देलों के सम्बन्ध में प्रतीत होता है :[81]

रट्ठौर पवार मरुथलिय । ब्रह्म-चालुक जंगल भरा ।

+ + +

चालुक्क चाड चालुक्य दुज । कुमल कुसल मंडित तन ।

+ + +

पुनि प्रगट्यौ चालुक्क । ब्रह्मचारी व्रत धारिय ।

परमाल रासो के अन्तर्गत राजाओं के नाम के साथ ब्रह्म शब्द जोड़ने का कारण उनका मातृपक्ष विधवा ब्राह्मणी से सम्बद्ध होता है :

पच्चीस वर्ष बुता तब भई, इंद्र शाप से विधवा भई।[८२]

\+ + +

ता दुजकर का कन्य का प्रघटे बंस बंदेल
ता दुजकर की कन्य का प्रगटे बंस बंदेल।[८३]

यह सम्भावना है कि १२ वीं शती से पूर्व ही एक जाति क्षत्रिय बन गई थी। डॉ० वासुदेव उपाध्याय, डॉ० ओझा, डॉ० दशरथ शर्मा, डॉ० भण्डारकर आदि विद्वानों ने इस नवीन जाति के संबंध में इस सम्भावना की पुष्टि की है।[८४] परमाल रासो के अन्तर्गत यह बताया गया है कि परमार्दि देव ने अपने कुल के साथ ब्रह्म शब्द का जोड़ा जाना अपमानजनक समझ कर, ब्रह्म शब्द के प्रयोग को समाप्त कर दिया था[८५]:

सुनिय बंस उतपति सब, भुगति गयौ लजाय।
अब पुशवर मम बंस मंह, दिग्विजय ब्रह्म मिटाय॥

उक्त विवेचन से यह स्पष्ट है कि राजपूतों की उत्पत्ति उनके वंश और कुल-प्रतिष्ठा के सम्बन्ध में विविध मत एवं विवरण इन शक्तिसम्पन्न एवं सामान्य जाति की पुरुषार्थ का मुख्यतः आख्यान करते हैं।[८६]

क्षत्रिय जाति वीर जाति थी और वह हंस-हंस कर मृत्यु का आलिंगन भी करता था। इनके अभाव में भरत वीरविहीन हो जाता-- यह धारणा पृथ्वीराज रासो में व्यक्त की गई है।[८७] परमाल रासो तथा पृथ्वीराज रासो में कई स्थलों पर क्षत्रियों के दर्पपूर्ण आकृति-प्रकृति मूलक चित्रों को वर्णित किया गया है। क्षत्रिय जाति के वीरों को विशाल शरीर, सबल भुजाओं, ऊंचे कंधों, चौड़े वक्ष, लाल आंखों सहित रूपायित किया गया है।[८८] पृथ्वीराज चौहान की लम्बी मूंछों का भी उल्लेख मिलता है।[८९] पृथ्वीराज रासो और परमाल रासो में क्षत्रियों को 'मुंझार' संज्ञा से सम्बोधित किया गया है।[९०] महाराज भीम

के चचेरे भाई हरा सिंह का कन्ह चौहान नर वह से इसलिए अलग कर देता है, क्योंकि उसने उसके सामने मूंछों पर ताव दे दिया था[६१]। पृथ्वीराज इस रासो में ही एक स्थान पर ऐसे क्षत्रियों के लिए जो स्वामिरक्षार्थ तत्पर नहीं थे और मूंछें रखते थे, उन्हें जारज-पुत्र कहा है[६२]:

पुनि कह्यौ कन्ह नृप जैत सौं, स्वामि रषि जिनु तन तजै ।
तिन जननि दास बुध जन कहैं, मुंछ धरत मुक्ख लजै ।

क्षत्रियों के वेश में पगड़ी अथवा पाग आवश्यक परिधान माना जाता था। परमाल रासो और पृथ्वीराज रासो में इसका वर्णन अनेक स्थलों पर मिलता है। चन्द बरदाई पृथ्वीराज चौहान को पाग का आकर्षक स्वरूप प्रस्तुत करता है[६३]। वह रावल समर विक्रम के द्वारा दिल्ली रक्षा हेतु पाग बांधने की प्रशंसा करता है[६४]। उसके द्वारा मोहम्मद गोरी को बांधने के लिए पगड़ी बांधने की प्रशस्ति की जाती है[६५]। परमाल रासो के अन्तर्गत ऊदल और मलिखान की पगड़ियों का उल्लेख है[६५क]। पृथ्वीराज रासो में भीम के पास पाग और चोली भेजने का कथानक है[६६]। अपने पिता के युद्धक्षेत्र में प्राण त्यागने पर प्रतिकार की भावना से पृथ्वीराज का पगड़ी न बांधने का भी उल्लेख किया गया है[६७]:

छुल मुक्कि माघ बंधन तजिय । सुवृत वार लीनौ विश्राम ।
चालुक्क भीम मर मंजि कै । कढौ तात उदरह गुणाम ।

परमाल रासो में महाराज परमाल को तत्कालीन दिल्लीश्वर, यह संदेश भेजता है कि उसकी पुत्री ब्रह्मा के साथ परमाल का विवाह तभी संभव है, जब कि वह अष्टधातु के स्तम्भ का भेदन करे अथवा यह मान ले कि उसकी पगड़ी किसी से उधार ली गई है[६८]:

नातर अपुंक ग्रीम धरि क्रम दन्त दबाई ।
दीन वचन मुक्खे कहे मम पाग पराई ।।

आलोच्यकाल में रासो काव्यों से यह ज्ञात होता है कि यज्ञोपवीत पहनने की प्रथा कुछ विशेष अवसरों पर क्षत्रियों में था। इंछिनी विवाह के समय इंछिनी के पिता एक जनेऊ भेंट करते हैं:[99]

जर कंमर जनेउ, हथ्थ संकर नग मंडित

ध्रुवं जनेउ धारह, कहौ सुबंस कारह।

रासो-काव्यों से यह ज्ञात होता है कि उस काल में क्षत्रियों को युद्ध विद्या में प्रवीण किया जाता था। पृथ्वीराज चौहान ने ३६ प्रकार के अस्त्र-शस्त्र चलाने सीखे थे।[100] डा० मोतीलाल मेनारिया ने अपने ग्रन्थ डिंगल साहित्य में उक्त तथ्य की पुष्टि की है।[101] युद्धविद्या सीखने के साथ ही क्षत्रिय अनेक अन्य विद्याओं की भी शिक्षा ग्रहण करते थे। पृथ्वीराज चौहान ने १४ विद्याएं, २७ शास्त्र और ७२ कलाओं का अध्ययन किया था।[102] इसके साथ ही पृथ्वीराज चौहान के द्वारा संस्कृत, प्राकृत, अपभ्रंश पैशाची, मागधी तथा शौरसेनी की जानकारी प्राप्त की गई थी:[103]

संस्कृतत प्राकृत चैव अपभ्रंश: पिशाचिका।

मागधी शौरसेनी च षट भाषाश्चैव ज्ञायते।।

शिक्षा के अनेक अंगोपांगों का ज्ञान क्षत्रिय प्राप्त करते थे। कुछ क्षेत्रों में वह ब्राह्मणों से भी अधिक कुशल समझे जाते थे। पृथ्वीराज चौहान का साला कैमास चतुर्दश विद्याओं में निष्णात माना जाता था। और उसे पृथ्वीराज चौहान ने खट्टूवन में गूढ़ धन निकालते समय पत्थर पर अंकित रहस्य का उद्घाटन करने के लिए आदेश दिया था।[104]

क्षत्रिय लोग धर्मशास्त्र के ज्ञाता भी थे। पृथ्वीराज रासो में समर विक्रम रावल को योगीन्द्र की उपाधि से इंगित किया गया है:[105]

जोगिंदराइ जा हथ्थ हुअ, सुबर बीर उप्पर कलक।

जयचन्द्र का मन्त्री सुमन्त जब राजसूय यज्ञ की सूचना लेकर आता है तब पृथ्वीराज इस कार्य को समय-प्रतिकूल बताते हुए ज्ञानपूर्ण मन्त्रणा देते हैं।[106] मोहम्मद गोरी के साथ अन्तिम युद्ध के समय जामराय ने पृथ्वीराज को राजर्षि, त्रिकालज्ञ, व्यास

योगीराज कह कर उनसे राज-धर्म, सेवक-धर्म और क्षत्रिय-धर्म की जानकारी चाही है तथा विविध भक्तियों के सम्बन्ध में ज्ञान प्राप्त करने की इच्छा व्यक्त की है।[१०७] पृथ्वीराज चौहान उस समय धर्मशास्त्रों की ज्ञानवार्ता से परिपूर्ण प्रवचन करता है।[१०८] उक्त उद्धरणों से यह स्पष्ट है कि क्षत्रिय विभिन्न शास्त्रों के मर्मज्ञ और धर्मज्ञ दोनों ही होते थे।

तत्कालीन क्षत्रियों की यह मान्यता थी कि ईश्वर की सृष्टि में उनका कर्तव्य निश्चित कर दिया गया है और तलवार चलाने की योग्यता प्राप्त करना ही उनका जीवन लक्ष्य है।[१०९]

करतार हथ्थ तरवार दिय, यह नुतन रजपूत करि।

रावजैत सिंह रणक्षेत्र में तलवार लिये हुए मरना श्रेयस्कर समझते थे:[११०]

जिन दीनो जियन मरन, दई हथ्थ हम लेक।
और न चिंतन- चिंतिये, सो रन रष्षै एक ।।

परमालरासो के अन्तर्गत क्षत्रियों का युद्ध क्षेत्र में मृत्यु वरण करना ही जीवन-लक्ष्य बताया गया है, इसलिए कि वह न तो खेती कर सकते हैं न व्यापार कर सकते हैं और न ही भिक्षावृत्ति कर सकते हैं।[१११] पृथ्वीराज रासो में भी क्षत्रियों के लिये कृषि-कार्य अकर्म बताया गया है, योद्धाओं की खेती तलवार से मरना बताया गया है। यह भी स्पष्ट है कि राजाओं की सेवा में अधिकांश क्षत्रिय ही होते थे:[११२]

एक और प्रथिराज, राज मंगे हल काजे।
समौ ताकि गोविन्द, अग्ग जरसिंघ सु भाज।
+ + +
मरदां खेती स्थ मरन, क्षत्रिय समप्पन हथ्थ।
+ + +
जंग बचन सुत्रि के नहिं नष्षय
ते रजपुत धरम नहिं रष्षय ।

पृथ्वीराज रासो में ही पृथ्वीराज की यह इच्छा व्यक्त की गई है कि तलवार की धार पर उसका प्राणोत्सर्ग हो और इसके लिए वह नित्यप्रति ईश्वर से प्रार्थना करता था[११३]:

तुलसीदल हर अरपि । मृत्यु असिवर की मंगिय ।

पृथ्वीराज चौहान के द्वारा रावल समर विक्रम और चामुंडराय को यह बताया जाता है कि युद्ध क्षेत्र में मरने पर स्वर्ग और अप्सराएं मिलती हैं और जीतने पर यश और ऐश्वर्य की प्राप्ति होती है[११४]। हम्मीर रासो में भी इसी प्रकार की अभिव्यक्ति मिलती है[११५]:

जीते सौ धर भुग्गि, वं, जुज्झे सुरपुर वास ।

दोऊ जा किजी अमर, तजौ मोह जग आस ।

इसके साथ ही पृथ्वीराज रासो में ही युद्ध भूमि में मरने वाले क्षत्रियों का मुंड शंकर भगवान अपनी मुण्डमाला में धारण कर लेते हैं-- की अभिव्यक्ति की गई है[११६]। चन्दवरदाई ने १७ वर्षीय वीर वकुलेन का युद्ध भूमि में मारा जाना निदर्शित किया है[११७]। जो क्षत्रिय युद्धभूमि से भागता था, वह अपने वंश को लांछित करता था[११८]:

जे भागे तेऊ मरे, तिन कुल लाइय खेह ।

भिरे सु नर सु नर गय जीति मिलि चले अमर पुर गेह ।।

पृथ्वीराज रासो में इसी प्रकार के कथन यत्र-तत्र बिखरे पड़े हैं। नाहरराय कहता है कि राजपूत वीर होने के नाते, मैं युद्ध क्षेत्र से भागने के स्थान पर मरकर अपनी कीर्ति छोड़ना चाहता हूं[११९]।

भग्गोंन भुंमि रजपूत हौं, करौं नाम जिमि अचल ध्रुव ।

परमाल रासो में कई स्थानों पर राजपूत के लिए युद्धभूमि में टुकड़े-टुकड़े हो जाना श्रेयस्कर बताया गया है, किन्तु रणक्षेत्र से भागना उचित नहीं[१२०]।

क्षत्रिय-जाति युद्ध-क्षेत्र में भी कतिपय मान्यताओं की प्रतिष्ठा करती थी। वह अधम युद्ध नहीं करते थे। हिन्दू-आस्थाओं हिन्दू

विश्वासों तथा हिन्दू रणनीतियों के विरुद्ध वह युद्ध-क्षेत्र में भी प्रवृत्त नहीं होते थे। पृथ्वीराज रासो में सोमेश्वर के द्वारा मालव नरेश पर सामन्तों के परामर्श के बावजूद रात्रिकाल में हमला नहीं किया जाता है, क्योंकि क्षत्रियों द्वारा रात में युद्ध करना अधम कोटि का माना जाता था, इसके साथ ही सोते समय, शौचादि करते समय, स्त्री रमण-पूजन, स्नान मंत्र जाप करते हुए किसी को मारना अधर्म मानते थे[१२१]:

रतिवाह मल जुद्ध अधम सित्रा परिमान ।
छद्द कपट मारिये, अधम निद्रागत जान ।।
मन मोचन रति रचन सेव पुजन जल न्हान ।
मंत्र जाप अप्पत, को नह घात सुजान ।
हुम मंह तंत सच्चो कहिय इह अधम्म ध्रम्म हारिये ।
जो गिनन पुरुष निन्दा अपर, तो रति वाह विचारिये ।

अन्य स्थलों पर भी पृथ्वीराज रासो में अधर्म-युद्ध वर्जित किया गया है[१२२]। क्षत्रियों की उस काल में यह भी धारणा थी कि समान शक्ति वाले शत्रु से ही युद्ध करना चाहिए और शत्रु के डर से अपना और से किसी भी प्रकार का संधि-प्रस्ताव निन्दनीय समझा जाता था[१२३]। पृथ्वीराजरासो में गोविन्दराज मेवाती मुंगल पर आक्रमण करने से पृथ्वीराज को इसी कारण से विरत करता है[१२४]। अपने शत्रु को भी घायल हो जाने पर न मारना, उसका उपचार करना, जीवन दान देना, सुरक्षा सहित आदरपूर्वक विदा करना-- ये सब क्षत्रियों के औदार्य के प्रतीक थे[१२५]। क्षत्रियों के रक्त में स्वामिभक्ति संचरित होती था। स्वामियों के लिए सर्वस्व दान उनका मुख्य कार्य था[१२६]:

धरै धर्म सीस सु क्षत्रीय सूरै । उबारंत स्वामी अधारैसूरै ।

पृथ्वीराज रासो में संकट-काल में स्वामि का साथ छोड़ना निन्दनीय कहा गया है। उनका मुंह रखाना व्यर्थ कहा गया है। उनके लिए रौरव-नरक, शूकर योनि आदि का कष्ट बताया गया है तथा विविध घृणास्पद भक्ष्य-अभक्ष्यों का मुंह में धारण करना बताया गया है :

जाको जार जाति सौं कहियै । असल बीज रजपूत न कहियै ।[127]

\+ + +

पुनि कहो कन्ह नृप जैत सौं, स्वामी रहित जिन तनु तजे ।
तिन जननि कौख अवजन कहै, मुंह धरत मुअक्खन लजे ।[128]

\+ + +

रन छोरै स्वामि सेवक पराय
सत जन्म जोर जम लोक जाय ।[129]
पावंद का देखे बुरा अंग रखावन दूर ।
कहै अल्ह रजपूत को । दीजे नरक क र ।[130]

\+ + +

कछु न लोक तिन ठाम, जिन न साईं तन रक्ख्यौ ।
नवर निकट ह जाव,पुरुनि अत्रमन्नन भक्ख्यौ ।।[131]

स्वामि-भक्ति और स्वामि-धर्म निर्वाह के उदाहरणों से पृथ्वीराज रासो परिपूर्ण है । दूसरे शब्दों में कहा जा सकता है कि अपने स्वामियों के प्रति क्षत्रियों में अंधभक्ति था । परमाल रासो में भी इस प्रकार के उदाहरण अनेकानेक हैं,जिसमें अपने स्वामियों के गुण-अवगुण का विचार किये बिना ही उनके लिये प्राणत्याग की भावना व्यक्त की गई है :[132]

ऐगुन तजि सब भूप के । स्वामि-धर्म सह काम ।

क्षत्रिय वर्ग अपनी शरण में आये हुए शत्रुओं को भी प्राणदान देते थे । शरणागतों की रक्षा करना वह परम धर्म मानते थे । शरणागत के लिए कभी-कभी उन्हें युद्ध-भूमि में सर्वस्व त्याग करना पड़ता था । पृथ्वीराज चौहान ने स्वतः मीर हुसैन को अपनी शरण में लिया था और उन्होंने मोहम्मद गोरी की धमकियों की परवाह न करते हुए शत्रुता मोल ली थी :

मेछमुष देख न नृपति, विपति परी हुइ क्रम ।
इक सरनाई कर ग्रहन, इक धर रष्षन ध्रंम ।[133]

रासो काव्यों में अधिकांशतः वैश्यों के लिए वणिज, वनिक, साहु या साहि आदि शब्दों का प्रयोग किया गया है और उनका मुख्य धर्म दया का पालन करना निदर्शित किया गया है।[134] चन्दवरदाई ने इनके चरित्र और आकृति पर प्रकाश डाला है। पृथ्वीराज रासो के अनुसार इन्हें कोमल शरीर, भारी पेट, ढीले अंग, डरपोक, कानों पर लेखनी चढ़ाये हुए तथा बोलने में सांस फूल जाने वाले चित्रित किया गया है। यह छल-कपटपूर्ण बताये गये हैं और उन्हें इतना कपटी निरूपित किया गया है कि वह ब्रह्मा और विष्णु को भी छल सकते थे, वहीं दूसरी ओर उन्हें बहुत ही दानी, दयापूर्ण और निष्पाप भी निरूपित किया है।[135] चन्दवरदायी ने वैश्यों को नगर-शोभा वर्णन करने में अल्पपति और करोड़पति कहा है:[136]

सोभंत नगर जिहि बड़े साहि। लष कोट द्रव्य जिन हट्ट-माह।

पृथ्वीराज रासो के अन्तर्गत महोबा खण्ड में गंगा वैश्य को युद्ध करते हुए बताया है।[137] इसी प्रकार परमाल रासो में भी ईसुर नाम का बनिया युद्ध करता है।[138]

पृथ्वीराज रासो तथा परमाल रासो में शूद्र जाति का उल्लेख किया गया है। पृथ्वीराज रासो में शूद्रों का कार्य सेवा करना निरूपित किया गया है:[139]

दया सु धर्म्म बनिअं। सेवा ध्रम शूद्र सदाई।

परमाल रासो में नाई को किसी भोजन के समय आगन्तुकों को बुलाने के लिए भेजा जाना बताया गया है।[140]

पृथ्वीराज रासो में माली को राजा परमार देव के बाग की रक्षा करते हुए बताया गया है।[141]

पृथ्वीराज रासो में सुनार जाति का उल्लेख किया गया है और वह घर-घर जाकर सोना काटने का कार्य करते थे:[142]

कट्टहिं ते हेम ग्रहि ग्रहि सोनार।

बुद्धिमान बजाज़ साड़ियां बेचने का कार्य करते थे[१४३] :

बुद्धि बजाज जु बिच्चहिं सार ।

पृथ्वीराज रासो में अहीर जाति का उल्लेख किया गया है । अहीरों के गाय-भैंस और बैल आदि जानवर होते थे । इनके यहां दूध और दही अपरिमित रहता था । जब अहीरों के घर दही का मन्थन किया जाता था तब प्रति दिन सुबह बादलों के गरजने के समान आवाज़ होती थी[१४४] । अहीरों के घरों की महिलाएं दही बेचने जाती थीं[१४५] । यह अहीर राजपूतों की तरह बलिष्ठ होते थे । पृथ्वीराज रासो अहीरों के दो हजार सैनिकों को महान पराक्रमी बताता है[१४६] । चन्द बरदाई का कथन है कि अहीर और गूजर दो जातियां इसप्रकार की होती थीं कि युद्ध क्षेत्र में उनका कोई बाल बांका नहीं कर सकता था[१४७] :

गुज्जर अहीर अस जाति होई ।

तिन लोह लोप सक्कै न कोई ।

पृथ्वीराज रासो के अन्तर्गत कायस्थ जाति को लेखक माना गया है । युद्ध के लिए तैयार होकर मकरंद कायस्थ को देखकर धीर पुंडीर उसका मज़ाक उड़ाता है[१४८] :

लषि कायथ मकरंद । चंद पुंडीर अषोई ।

कर लेषनि किरवान । दंत सावतन सोई ।

बीसलदेव का विश्वमंत्री एक कायस्थ बताया गया है, जिसका नाम किरपाल था[१४९] । परमाल रासो के अन्तर्गत चन्द्रब्रह्म के द्वारा सुजान नाम के कायस्थ को दीवान बनाया गया है[१५०] । परमाल ने अपने ऊपर आक्रमण होने पर विचार-विमर्श के लिए कायस्थ मंत्री को आहूत किया था[१५१] । पृथ्वीराज रासो में ही महाराज भीम अपने कायस्थ मंत्री से कैमास को अपनी ओर मिलाने तथा मोहम्मद गोरी को परास्त करने के सम्बन्ध में मंत्रणा करते हैं[१५२] । पृथ्वीराज रासो से ही यह भी स्पष्ट होता है कि कायस्थ लोग सेना में भी कार्य करते थे[१५३] । पृथ्वीराज रासो के अन्तर्गत ही एक बसौंधी जाति का उल्लेख है ।

जयचन्द ने चन्दवरदाई को अपने दरबार में बुलवाने के पूर्व एक ब्राह्मण को चन्दवरदाई के काव्य-गुणों की जानकारी के लिए भेजा था :-[१५४]

तिन ब्लोचिय मों कह्यो । चौकि परष्षहु छंद ।

परमालरासो में युद्धप्रिय एवं शौर्यपूर्ण जाट जाति के लिए 'जट्ट' शब्द का प्रयोग किया गया है।[१५५] पृथ्वीराज रासो में नट और नर्तक नामक एक अविश्वसनीय जाति का उल्लेख किया गया है :--[१५६]

नट नाटक बहु सार ।

+ +

नट नाटक हंमा हम नहिं बुफिफिय सुरतांन ।

इसी प्रकार पृथ्वीराज रासो में ही चाण्डाल, कोल, वेश्या, मंगोल और भिल्लनी के भी उल्लेख मात्र हैं।[१५७]

पृथ्वीराज रासो और परमालरासो में भाट और चारण दो जातियों का कई स्थलों पर वर्णन मिलता है, यद्यपि भाट और चारण को हिन्दी कोशों के अन्तर्गत एक ही जाति मान लिया गया है[१५८], किन्तु विभिन्न विद्वानों-- जे०एच० हटन, इलियट आदि ने इन्हें दो भिन्न जातियों के रूप में निरूपित किया है।[१५९] इनसाइक्लोपीडिया आफ रेलिजन एण्ड एथिक्स में भी इन्हें दो जातियों के रूप में माना गया है। 'शब्द कल्पद्रुम' के अनुसार इन्हें 'अमरकोश' में नट, भागवत में देवयोनि और पद्मपुराण के अन्तर्गत इनको गन्धर्वविशेष की संज्ञा दी गई है।[१६०]

कवि चन्दवरदाई के द्वारा चारणों को वेदज्ञ होना इंगित किया गया है।[१६१] भाटों को सामाजिक दृष्टि से ब्राह्मणों के समकक्ष मानते हुए उन्हें पुराण, वेद, अनेक की भाषाओं, आचारनीति, ज्योतिष आदि का ज्ञाता माना गया है। ब्राह्मणों की ही तरह वह आदर के पात्र थे :[१६२]

करि जुहार यहुवान, भट्ट आदर बहु किन्नौ ।

+ + +

दस हथ्थ रष्षि दानो असोस, सिर नयौ नहीं मन करियरास

+ + +

किय अर्ध पाद भाषा सुकवित्त । उच्चार विमल बानी सुललित ।

पृथ्वीराज चौहान ब्राह्मणों की तरह भाटों को दान और पुरस्कार प्रदान करते थे ।[१६३] परमाल रासो में भाटों पर युद्ध क्षेत्र में भी शस्त्र न चलाने का उल्लेख है ।[१६४] पृथ्वीराज रासो के अन्तर्गत माधो भट्ट को नाटक, संगीत, तर्कशास्त्र और छह भाषाओं का ज्ञाता बताया गया है । दुर्गाकेदार और चन्द दोनों ही ८४ विद्याओं के जानकार वैद्यक, पुराण तथा तंत्र-मंत्र के मर्मज्ञ,[१६५] स्वप्न-फल, शकुनशास्त्र तथा १४ कलाओं में सिद्धहस्त प्रतिपादित किये गये हैं । भाट युद्ध भी करते थे । वीर गीत सुनाकर वीरों को प्रोत्साहित करते थे । वंश-परम्पराओं के कार्यकलापों का विवरण देते थे । क्षत्रियवंशों की कीर्ति का गान करते थे[१६६] :

वंस छत्तीस कत्तीन कह । भाट विरुद्द भनंत ।

\+ + +

कविराज सु राखि उर्द्ध कर में जयमाल सु डार बयौ घर में ।

\+ + +

जग्गन भाट बरिल्लय । सुजाहि सग्ग विल्लिय ।

बल्यौ सुभट्ट जल्हन । नहीं सुजुद्ध छल्लन ।।

पृथ्वीराज रासो के अन्तर्गत भाटों के लिए गर्हित शब्दों का भी प्रयोग किया गया है । भाटों को वाचाल बताते हुए भोला भीम के द्वारा उन्हें आपस में संघर्ष कराने वाला चित्रित किया गया है । पृथ्वीराज रासो में ही भाटों को आडम्बरपूर्ण तथा दम्भी कहते हुए दूसरों की सम्पत्ति हड़पने वाला कहा गया है । मोहम्मद गोरी के अंतिम आक्रमण के समय प्रजाजन चन्दवरदायी को गृहनाशक कहते हैं । पृथ्वीराज चौहान के सामन्तों का यह कथन कि भाट, नट और चारणों की गति सत्य नहीं माननी चाहिए :-- आदि के द्वारा भाटों, चारणों और नटों की[१६७] तत्कालीन समाज में अविश्वसनीय स्थिति का द्योतन होता है :--

बैन आद सो करै । होत भट्टहु को जायो ।

\+ + +

अहो चंद दंद न करहु । तुम कल चंद सुभाय ।

\+ + +

भट हिंमो आडंबरहु । अरु पर जानन कि. ।

\+ + +

घर घालि भट्ट सुलो घरह । सुबर विप्र तोहा कहन

\+ + +

भट नट चारन ज भारह । इनको मति न मन्नियै सह ।

तत्कालीन भारत में वर्ण-व्यवस्था का प्रचलन तो था, किन्तु चतुराश्रम-व्यवस्था का पूर्णतः पालन नहीं होता था । पृथ्वीराज चौहान गुरुराम से पच्चीस वर्ष का उम्र तक शिक्षा प्राप्त नहीं करते ।[९६८] सन्यास लेने को प्रवृत्ति को पृथ्वीराज रासोम में वर्जित किया गया है--

कनिट बट बडुवह, कोय आचरन ग्रेह वर ।
व्रत सन्यास आचरण, पंच चब कलि न होइ धर ।।[९६९]

अनंगपाल अपनी पत्नी सहित बद्रीनाथ में तपस्या करने जाते हैं --

लै चल्यौ संग निज तरुनि दे दिल्लिय अगनेस ।
मन वच क्रम बद्री चल्यौ, साधन जोग जोगेस ।[९७०]

किन्तु अपनी प्रजा की पुकार पर पुनः वापस आकर दिल्ली पर आक्रमण करके राज्य को पुनः हस्तगत करना चाहते हैं--

सत तीन भर सुमर जे, निज बैराग सरूप ।
तिन बंधी तरवार फिरि, बदलि भेष वर रूप ।[९७१]

अन्यत्र सामायिक सन्यास लेने पर व्यक्तियों की प्रशंसा माना गया है, अथवा इस प्रकार की विरक्ति को सांसारिक कष्टों के कारण पलायन की संज्ञा दी गई है । वस्तुत: आश्रम-व्यवस्था में विश्वास के कारण गृह-त्याग नहीं होता था, बल्कि इसकी पृष्ठभूमि में कुछ और कारण रहते थे --

किं दारिद्र दु दुष्ट पुष्ट तनयं किं भूमि तत्र हरं ।
किं वनिता च वियोग दैव विपदा, निर्वांगिता किं नरं ।
किं जनमानस रूष्ट पुष्ट कुगता, किं नागरि सपुरं ।
किं माता प्रित रंगभंग सरसां, आलिंगता सुन्दरा[१७२] ।

श्री जिनदत्तसूरि विरचित उपदेश रसायन रास के अन्तर्गत पुत्र और पुत्रियों का विवाह, योग्य गृहस्थ परिवार में करने का उल्लेख मिलता है--

बेट्टा बेट्टी परिणाविज्जहिं
ते वि समाणधम्म-घरि दिज्जहिं ।
विसमधम्म-घरि जइ वीवाहइ
तो सम्मतु सु निव्वाहइ[१७३] ।।

-0-

सन्दर्भ - सारणि

(तृतीय अध्याय)

सन्दर्भ-सरणि

(तृतीय अध्याय)

१- पृ०रा०,सम्पादक, कविराव मोहन सिंह, प्र० साहित्य संस्थान, उदयपुर, भाग३, समय१, छन्द-३ ।

२- पृ०रा०, सम्पादक, डॉ० श्यामसुन्दरदास, का०ना०प्र० सभा, वाराणसी, प्रकाशन, पृ०८०, छन्द १४६ ।

३- पृ०रा०, सम्पादक, कविराव मोहन सिंह, सा०सं०, उदयपुर, प्रकाशन, भाग१, पृ०३२२, छन्द ७० ।

४- पृ०रा०, सम्पादक, डॉ० श्यामसुन्दरदास,का०ना०प्र० सभा, वाराणसी, प्रकाशन, पृ०६१७, छन्द -३ ।

५- डॉ० राजपाल शर्मा, हिन्दी वीर काव्य में सामाजिक जीवन की अभिव्यक्ति, आदर्श साहित्य प्रकाशन,दिल्ली, प्र०सं०१९७४ई०, पृ०४६ ।

६- पृ०रा०, सम्पादक, डॉ० श्यामसुन्दरदास, का०ना० प्र० सभा, प्रकाशन, पृ०६००, छन्द --६० ।

७- उपरिवत्, पृ०२१२७, छन्द १४३ ।

८- उपरिवत्, पृ०२३९९, छन्द ९१ ।

९- (अ) उपरिवत्,क्रमश: पृ०६००,छन्द ६०,पृ०६४१,छन्द ६६, पृ०३९३, छन्द १७८,पृ०२१२७,छन्द १४३, पृ०२३९९,छन्द ९१ ।

९- परमाल रासो, सम्पादक, डॉ० श्यामसुन्दरदास,का०ना०प्र० सभा, प्रकाशन, खण्ड ६,छन्द ६५ ।

१०- उपरिवत्, खण्ड४, छन्द २५

११- पृ०रा०,सम्पादक, कविराव मोहन सिंह, सा०सं०उदयपुर प्रकाशन भाग१, पृ०३११ छन्द ४५ ।

१२- डॉ० राजपाल शर्मा, हिन्दी वीरकाव्य में सामाजिक जीवन की अभिव्यक्ति, आदर्श साहित्य प्रकाशन, दिल्ली-३१, पृ०४८, प्र०सं०,१९७४ई० ।

१३- राजस्थानी- सबद-कोस,भाग१, पृ०५८४

१४- सम्पादक, पं०ज्वालाप्रसाद मिश्र जाति--भास्कर,पृ०३६६ ।

१५- डॉ० राजपाल शर्मा, हिन्दी वीरकाव्य में सामाजिक जीवन की अभिव्यक्ति, आदर्श साहित्य प्रकाशन,दिल्ली-३१,पृ०४८ ।

१६- पृ०रा०,सम्पादक, डॉ० श्यामसुन्दरदास,का०ना०प्र०सभा, प्रकाशन, पृ०२११९,छन्द ६६ ।

१७- डॉ० वासुदेवशरण अग्रवाल, पाणिनिकालीन भारत,पृ०२५२ ।

१८- डॉ० राजपाल शर्मा, हिन्दी वीरकाव्य में सामाजिक जीवन की अभिव्यक्ति, आदर्श साहित्य प्रकाशन,दिल्ली,पृ०४९ ।

१९- मत्स्यपुराण ९।२०,२१--

शिल्पी च नर्तकश्चैव काष्ठकार: प्रजापति:
चर्मकश्चिक्रश्चैव सूतको रजक स्तथा ।
गन्धकस्तन्तुकारश्च चक्रिकश्चर्मकारक:
सूनिको ध्वमिकश्चैव कौलिक को मत्स्यघातक: ।
औनामिकस्तु चाण्डाल: प्रकृत्यष्टादशैवता: ।

२०- पृ०रा०, सम्पादक, डॉ० श्यामसुन्दरदास, का०ना०प्र०सभा, प्रकाशन,पृ०२१७६,छन्द ४३६ ।

२१- हम्मीर रासो महेशकृत,तुलनार्थ,छन्द ३६ ।

२२- उपरिवत्, छन्द ५५ ।

२३- पृथ्वीराज रासउ, सं०डॉ० माताप्रसाद गुप्त, पृ० साहित्य सदन,फांसी,११ : १२: १७ ।

२४- उपरिवत्-- ११: १२ :१६

२५- उपरिवत् -- ११ : १२ : २८

२६- पृ०रा०, सम्पादक,डॉ० श्यामसुन्दरदास,का०ना०प्र०सभा, प्रकाशन, पृ०११०६ छन्द ७५ ।

२७- उपरिवत्,पृ०१०३५, छन्द २ ।

२८- उपरिवत्, पृ०२२७६, छन्द १००६ ।

२६- उपरिवत्,पृ० २०३६,छन्द ११७ ।

३०-

३१,३२- पृ०रा०सम्पादक, कविराव मोहन सिंह साहित्य संस्थान उदयपुर प्रकाशन,भाग१,पृ०१८७,छन्द ३१ ।

३३- पृ०रा०,सम्पादक, डा०श्यामसुन्दरदास,का०ना०प्र०सभा, प्रकाशन, पृ०२४०५ ,छन्द १४६ ।

३४- उपरिवत्, पृ०६४८,छन्द २० तथा पृ० १३६२ छन्द ६६ ।

३५- उपरिवत्, पृ०६४८,छन्द १७-२० तथा पृ०१३६२,छन्द ६६ ।

इसी प्रकार समय ५१ छन्द ६६ में मुस्लिम जातियां उल्लिखित हैं--

खां खुरसान ततार, बीय ततार बंधारो हबसो रोमो बिलचि, बलचि कुरेस बुखारो सैद सैलानो सेख,बीर भट्टी मेवाती बोगता चिमनोर, पीर जादा लोहानी अन्नेक जात जानैतिकुल ,बिरलोज असिग्रहि करद ।

तुरकान मीर बल्लोच भर, चिंत पुर हासोमरद ।

३६- पृथ्वीराज रासउ, सम्पादक, डॉ० माताप्रसाद गुप्त प्र० साहित्य-सदन चिरगांव झांसी, प्र०सं०पृ०२६६-२६७ ।

रोहंमो रोहंगी हल्ले दुरंमो ।
सुहम्मो प्रवनो सुहव्वे करंमो ।
घरैते तरैते सुधारे सुमेले ।
तुरक्को ममक्की ममन्न जलेले ।
इबस्सो हकम्मे रहम्मे सुहम्मे ।
पयंगे पवंगी पवन्ने सुपन्ने ।
मिवाजो विराजी सकज्जे हसल्ले ।
समन्नो, सुसुन्नो सुगल्ले बब मसल्ले ।
सुम सेषजादे अवादे पठाणे ।
दिषे साहि गोरी गरज्जे सुठाने ।

३७- पृ०रा० सम्पादक, कविराव मोहन सिंह, सा०सं० उदयपुर, प्रकाशन, भाग२, पृ०५०८, छन्द २६ तथा भाग ४, पृ०७४१ ।

३८,३६- उपरिवत्, भाग१, पृ०२६६, छन्द ७१ ।

४०- पृ०रा० सम्पादक, डॉ० श्यामसुन्दरदास, का०ना०प्र०सभा प्रकाशन, पृ०२३७३, छन्द १६३१ ।

४१- यजुर्वेद ३१।११ तथा ऋग्वेद, पुरुष-सूक्त १०।६०।१२

४२- गीता, अध्याय १८ श्लोक ४५ ।

४३- पृ०रा०, सम्पादक, डॉ० श्यामसुन्दरदास, का०ना०प्र०सभा, प्रकाशन, पृ०११४६, छन्द १२७ ।

४४- पृ०रा०, सम्पादक, कविराव मोहनसिंह, साहित्य संस्थान, उदयपुर, प्रकाशन, भाग४, पृ०६०६, छन्द ६७ ।

४५- उपरिवद्,भाग४,पृ०६५४,छन्द २२ ।

४६- पृथ्वीराज रासउ,सम्पादक,डॉ०माताप्रसाद गुप्त,प्र० साहित्य-सदन झाँसी, ४ :१० :१६

४७- पृ०रा०, सम्पादक,कविराव मोहन सिंह,भाग१,पृ०१२८, छन्द ६४ ।

४८- पृ०रा० ,सम्पादक, डॉ०श्यामसुन्दरदास,काशी प्रकाशन, पृ०१५४,छन्द ७३० ।

तथा

पृथ्वीराज रासउ, सम्पादक,डॉ० माताप्रसाद गुप्त, ४ : १० : ६ ।

४९- पृ०रा०, सम्पादक, मोहनसिंह, भाग१,पृ०२८,छन्द ६ ।

५०- उपरिवत्,भाग३, पृ० २७६ ।

५१- पृ०रा०, डॉ० श्यामसुन्दरदास, काशी प्रकाशन,पृ०१५४, छन्द ७३० ।

५२- उपरिवद ,पृ०६६,छन्द ३४१ ।

५३- पृ०रा०,सम्पादक, मोहन सिंह, उदयपुर प्रकाशन,भाग३, पृ०२५६,छन्द १६ ।

५४- उपरिवत्,भाग३,पृ०१० छन्द २१-२२

५५- पृ०रा०,सम्पादक, डॉ० श्यामसुन्दरदास,काशी प्रकाशन, पृ०५९३,छन्द १९ ।

५६- पृ०रा०,सम्पादक मोहन सिंह, उदयपुर प्रकाशन,भाग१, पृ०८४,छन्द ९ ।

५७- उपरिवत्, भाग१, पृ०८६,छन्द १० ।

५८- पृथ्वीराज रासउ सम्पादक डॉ० श्यामसुन्दरदास,काशी प्रकाशन,पृ०१२०१ छन्द १८ ।

५९- उपरिवत्, पृ०१२०१, छन्द १६

६०- पृ०रा०,सम्पादक, मोहनसिंह,उदयपुर प्रकाशन,भाग१,पृ०१७६ छन्द ४ ।

६१- पृथ्वीराज रासो, सम्पादक, डॉ० श्यामसुन्दरदास काशी प्रकाशन,पृ०७३५,छन्द ३६७ ।

६२- रा०,सम्पादक मोहन सिंह, भाग१, पृ०८६,छन्द १४१६ ।

६३- उपरिवत्,भाग १,पृ०८६,छन्द २२ ।

६४- उपरिवत्,भाग१,पृ०६२, छन्द ४६-४७ ।

६५- उपरिवत्, भाग३, पृ०६५,छन्द १८ ।

६६- परमाल रासो, सम्पादक, डॉ०श्यामसुन्दरदास,काशी प्रकाशन,खण्ड २१,छन्द ३६ ।

६७- पृ०रा०,सम्पादक, डॉ० श्यामसुन्दरदास,काशी प्रकाशन, पृ०२३७८,छन्द १६६६ ।

६८- उपरिवत्,पृ०४८,छन्द २४३ से पृ०५३ तथा छन्द २७५ तक ।

६९- उपरिवत्, पृ०२११८,छन्द ८७-८८ ।

७०- उपरिवत्,पृ०१४६१,छन्द १६६ ।

७१- परमाल रासो, सम्पादक, डॉ० श्यामसुन्दरदास, काशी प्रकाशन,खण्ड १, छन्द ६५ से ७३ तथा खण्ड १, छन्द ७७ से १५५ ।

७२- पृ०रा०, सम्पादक, डॉ० श्यामसुन्दरदास,काशी प्रकाशन, पृ०२१०,छन्द २६४ तथा पृ०१५२४,छन्द २३१ एवं पृ०२१६४ छन्द ५१७ ।

७३- उपरिवत्, पृ०२११८,छन्द ८६ ।

७४- उपरिवत्,पृ०७४६,छन्द २४२ ।

७५- उपरिवत्, पृ०१४८, छन्द ७१५ ।

७६- श्री चिन्तामणि विनायक वैद्य, हिन्दू भारत का अन्त, पृ० ७५ से ७८ तक ।

७७- पृ०रा०, सम्पादक, डॉ० श्यामसुन्दरदास, काशी प्रकाशन, पृ०५३, छन्द २७८ ।

७८- पृ०रा०, सम्पादक, मोहनसिंह, उदयपुर प्रकाशन, भाग४, पृ०६२० , छन्द ११ ।

७९- पृ०रा०, सम्पादक, डॉ० श्यामसुन्दरदास, काशी प्रकाशन, पृ०३००, छन्द ४ तथा पृ०२१०, सम्पादक, मोहन सिंह, उदयपुर प्रकाशन, भाग१, पृ०२१२, छन्द ६ ।

८०- उपरिवत्, भाग२, पृ०७६४, छन्द १८तथा पृ०रा०, सम्पादक, डा० श्यामसुन्दरदास काशी प्रकाशन, पृ०२१३३, छन्द १८५

तथा

उपरिवत्, पृ०२१८५, छन्द ४८७ ।

८१- उपरिवत्, पृ०२१६५, ३७२ तथा पृ०५५, छन्द २७६ तथा पृ० ४६, छन्द २५० ।

८२- परमाल रासो, सम्पादक, डॉ० श्यामसुन्दरदास काशी-प्रकाशन, खण्ड१, छन्द १०१ ।

८३- उपरिवत्, खण्ड१, छन्द ७८

८४(अ) Dr. Vasudeva Upadhyaya, The Socio-Religious Condition of North India, Chowkhamba Sanskrit Series, Varanasi, Page 32.

(ब) डॉ० गौरीशंकर हीराचन्द ओझा, राजपूताना का इतिहास, भाग१, पृ०५१ ।

(स) Dr. Dasharath Sharma, Early Chauhan Dynasties, Page 242.

८५- परमालरासो, सम्पादक, डॉ० श्यामसुन्दरदास,काशी प्रकाशन,खण्ड२,पृ०१०७ ।

८६- डॉ० कृष्णचन्द्र अग्रवाल,पृथ्वीराज रासो के पात्रों की ऐतिहासिकता, प्रकाशक,विश्वविद्यालय हिन्दी-प्रकाशन, लखनऊ,पृ०१ ।

८७- पृथ्वीराज रासउ, सम्पादक डॉ० माताप्रसाद गुप्त प्रकाशक, साहित्य सदन झांसी में द्रष्टव्य--

अंबर छाइउ अम्बुतिन षिति छाही षित्रीन ।

--११ : ६ : २

++ ++ ++

सुष्कि चाइ ग्रहि बंधइ तेग । ६ :२३ : १०

++ ++ ++

मरण बोचइ पृथिराज हसहि छत्र करि पयठठह ।

मोच लग्ग निज पायि कहइ ताइ धरि बइठ्ठह ।

--८ :६ : १-२

++ ++ ++

तुम जानउ षित्री कइ न कोइ ।

निव्वीर पुहमि कबहु न होइ । २ :३ :२५-२६

८८- परमाल रासो, सम्पादक, डॉ० श्यामसुन्दरदास, काशी प्रकाशन,खण्ड१५, पृ०२५६ ।

८९- पृ०रा०, सम्पादक, डॉ० श्यामसुन्दरदास,काशी प्रकाशन,पृ०१३७१, छन्द ४६ ।

९०- उपरिवत्, पृ०४७८,छन्द १७६

तथा

परमाल रासो, खण्ड ३५, पृ०२५१

९१- पृ०रा०, सम्पादक,डॉ० श्यामसुन्दरदास,काशी प्रकाशन, पृ०२८५,छन्द ९१ ।

९२- पृ०रा०,सम्पादक, मोहन सिंह, उदयपुरप्रकाशन,भाग१, पृ० ३३६,छन्द २१ ।

९३- पृ०रा०, सम्पादक डॉ० श्यामसुन्दरदास,काशी प्रकाशन, पृ०१५६,छन्द ७५१ ।

९४- उपरिवत् , पृ०१०६२,छन्द २२० ।

९५- पृ०रा०, मोहनसिंह, उदयपुर प्रकाशन, भाग ४,पृ०६६० छन्द १०१ ।

९५(क) परमाल रासो, सम्पादक, डॉ० श्यामसुन्दरदास,काशी प्रकाशन,खण्ड २८, छन्द १५ तथा खण्ड ५,छन्द १४३ ।

९६- पृ०रा०,सम्पादक डॉ० श्यामसुन्दरदास,काशी प्रकाशन, पृ०११४८, छन्द १२४ ।

९७- उपरिवत्, पृ०११४८, छन्द १२४ ।

९८- परमाल रासो, सम्पादक डॉ० श्यामसुन्दरदास,काशी प्रकाशन, खण्ड २४, छन्द ५ ।

९९- पृ०रा०, सम्पादक, डॉ० श्यामसुन्दरदास,काशी प्रकाशन, इंच्छिनी विवाह प्रसंग ।

१००- पृ०रा०,सम्पादक, मोहन सिंह, उदयपुर प्रकाशन,भाग१, पृ०२८, छन्द २१२ ।

१०१- डॉ० मोतीलाल मेनारिया, डिंगल साहित्य,पृ०३४४ ।

१०२- पृ०रा०,सम्पादक, मोहन सिंह, भाग१, पृ०१८,छन्द६०-६१ ।

१०३- उपरिवत्,भाग१, पृ०२८ छन्द ६४ ।

१०४- उपरिवत्, भाग२, पृ०५३६,छन्द ४ ।

१०५- उपरिवत्, भाग३, पृ०३६९,छन्द ६६ ।

१०६- उपरिवत्,भाग४, पृ०१०७०,छन्द २५४ ।

१०७,१०८ उपरिवत्,भाग४, पृ०१०७१-१०७५ ।

१०९- उपरिवत्, भाग२, पृ०७४७,छन्द ४४९ ।

११०- पृ०रा०, सम्पादक, डॉ० श्यामसुन्दरदास,काशी प्रकाशन,पृ०४५७,छन्द ५८ ।

१११- परमाल रासो, सम्पादक, डॉ० श्यामसुन्दरदास, काशी प्रकाशन, खण्ड १९,छन्द १-२ ।

११२- पृ०रा० सम्पादक, मोहन सिंह, भाग४, पृ०६५७,छन्द २३ तथा भाग३,पृ०२०१,छन्द १८ तथा काशी प्रकाशन, पृ०२५३५,छन्द १९१ ।

११३- उपरिवत्, पृ०१९९५,छन्द ६८ ।

११४- पृ०रा०,सम्पादक, मोहन सिंह,भाग४,पृ०१०५४ छन्द२२६।

११५- हम्मीर रासो के अन्तर्गत तुलनार्थ द्रष्टव्य,छन्द ६९०

११६- पृ०रा०,सम्पादक मोहन सिंह,भाग१, पृ०४०४ । छन्द२१

११७- पृ०रा०,सम्पादक, डॉ०श्यामसुन्दरदास,काशी प्रकाशन, पृ०११९६,छन्द १२१ ।

११८- पृ०रा०,सम्पादक, मोहन सिंह,भाग१,पृ०१४५,छन्द५८ ।

११९- उपरिवत्, भाग१,पृ०१६४,छन्द ५७ ।

१२०- परमाल रासो, सम्पादक, डॉ० श्यामसुन्दरदास,खण्ड५, छन्द १४७ ।

१२१- पृ०रा० सम्पादक, मोहनसिंह,भाग २,पृ०५०३,छन्द९९।

१२२- उपरिवत्, भाग२,पृ०४९६,छन्द २

१२३,१२४उपरिवत्,भाग१,पृ०३९७,छन्द १५ ।

१२५- उपरिवत्, भाग२,पृ०५३०,छन्द ७० ।

१२६- पृ०रा०,सम्पादक डॉ० श्यामसुन्दरदास,काशी प्रकाशन,पृ०२५७७,छन्द ५१ ।

१२७- उपरिवत्, पृ०२५५१,छन्द ३०६ ।

१२८- पृ०रा०,सम्पादक मोहनसिंह भाग १,पृ०३३६,छन्द२१।

१२९- परमाल रासो, सम्पादक, डॉ० श्यामसुन्दरदास,खण्ड ११, छन्द ७६ ।

१३०- पृ०रा०,सम्पादक डॉ० श्यामसुन्दरदास,काशी प्रकाशन, पृ०२५५३,छन्द ३२४ ।

१३१- पृ०रा०, सम्पादक, मोहनसिंह,पृ०३३६, छन्द २१ ।

१३२- परमाल रासो, सम्पादक, डॉ० श्यामसुन्दरदास,खण्ड३ छन्द १०७ ।

१३३- पृ०रा०,सम्पादक, डॉ० श्यामसुंदरदास,पृ०३८६,छन्द१४।

१३४- पृ०रा०,काशी प्रकाशन, पृ०२०१२,छन्द १२० ।

१३५- उपरिवत्, पृ०२०२६,छन्द १५६-१५६ ।

१३६- उपरिवत्, पृ०२१२६,छन्द १५६ ।

१३७- उपरिवत्, पृ०२० २५८५,छन्द ५७६ ।

१३८- परमाल रासो, काशी प्रकाशन, खण्ड २४,छन्द ६१ ।

१३९- पृ०रा०,काशी प्रकाशन, पृ०२०१२,छन्द १२५ ।

१४०- परमाल रासो, काशी प्रकाशन, खण्ड १५ ,छन्द १५७ ।

१४१- पृ०रा०,काशी प्रकाशन, पृ०२५०८,छन्द ७८

१४२- पृथ्वीराज रासउ,सम्पादक डॉ० माताप्रसाद गुप्त२:३:५८

१४३- उपरिवत् ४ : २५ : ६ ।

१४४- पृ०रा०,काशी प्रकाशन,पृ०५८२,छन्द ३३ ।

१४५- पृ०रा०,काशी प्रकाशन,पृ०५८२,छन्द ३२ ।

१४६- उपरिवत्, पृ०५८२,छन्द ३४ ।

१४७- उपरिवत्, पृ०५८२, छन्द ३५ ।

१४८- उपरिवत्, पृ०२५७३,छन्द ४८३ ।

१४९- उपरिवत्, पृ०८८,छन्द ४१९ ।

१५०- परमाल रासो, काशी प्रकाशन, खण्ड २,छन्द १९ ।

१५१- पृ०रा०, काशी प्रकाशन, पृ०२५२५,छन्द १३७ ।

१५२- पृ०रा०, उदयपुर प्रकाशन, भाग२, पृ०४६०,छन्द ७६ ।

१५३- पृ०रा०,काशी प्रकाशन, पृ०२५६५, छन्द ४११ ।

१५४- उपरिवत्, पृ०१६५०,छन्द ४८८ ।

१५५- परमाल रासो, काशी प्रकाशन, खण्ड २४,छन्द ६५ ।

१५६- पृथ्वीराज रासउ, सम्पादक, डॉ० माताप्रसाद गुप्त
१२ : ६ : १ तथा १२ : २० : २ ।

१५७- उपरिवत्, ४ : २५ : ३, ७ : २५ : १, ४ : २३ : ७ ,
७ : २७ : १९-२० , ७ : १० : ६,
४ : १६ : ७२-७३ ।

१५८-(अ) द्रष्टव्य, हिन्दी शब्द सागर,पृ०९७५ तथा पृ०२५५६ ।
(ब) द्रष्टव्य, नालन्दा विशाल शब्द सागर,पृ०३७२,तथा
पृ०१०१६ ।

१५९- डटन, `कास्ट इन इण्डिया`,पृ०२७६ तथा इलियट,
मेमोयर्स आन दि हिस्ट्री ,फोकलोर एण्ड डिस्ट्रीब्यूशन
आफ दि रेसेज आफ नार्थ वेस्ट इण्डिया,पृ०१८ ।

१६०(अ) इनसाइक्लोपीडिया आफ रिलीजन एण्ड एथिक्स,भाग२, पृ०५५४ ।

(ब) द्रष्टव्य, शब्दकल्पद्रुम, २।४४४ ।

१६१- पृथ्वीराज रासो,काशी प्रकाशन, पृ०१८८६,छन्द १०४ ।

१६२- उपरिवत, पृ०१५७१,छन्द ७२ तथा पृ०२४३७ छन्द ३८८ तथा पृ०२४१७,छन्द २४४ ।

१६३- उपरिवत, पृ०२६६, छन्द ५२ ।

१६४- परमाल रासो,काशी प्रकाशन, खण्ड ३५ छन्द २८ ।

१६५- पृथ्वी राज रासो, काशी प्रकाशन, पृ०६०४,छन्द ८ तथा उपरिवत्, पृ०२४०८,छन्द १७७-१८१ ।

१६६- उपरिवत्, पृ०५४६,छन्द ४४ तथा पृ०२६०७ ,छन्द७०७ तथा परमाल रासो ,काशी प्रकाशन,खण्ड २१,छन्द ४० ।

१६७- पृ०रा० काशी प्रकाशन, पृ०१२१३,छन्द १०६ तथा पृ०१०१८, छन्द १६ तथा पृ०१५२०, छन्द ६३ तथा पृ०२१३३,छन्द १८२ तथा पृ०३२१,छन्द १४३ ।

१६८- पृ०रा०, सम्पादक मोहनसिंह, उदयपुर प्रकाशन,भाग१, पृ०२८,छन्द ६० ।

१६९- उपरिवत, भाग ३,पृ०४१८, छन्द २१ ।

१७०- पृ०रा०, सम्पादक, डॉ० श्यामसुन्दरदास, काशी प्रकाशन, पृ०६०६,छन्द २७ ।

१७१- उपरिवत्, पृ०६२६,छन्द ८३ ।

१७२- उपरिवत्, पृ०१०६, छन्द ५४३ ।

१७३- श्री जिनदत्तसूरि उपदेश रसायन रास,अपभ्रंशकाव्यत्रयी में संकलित तथा श्री लालचन्द्र भगवानदास गांधी द्वारा सम्पादित,प्रकाशक, ओरियण्टल इन्स्टीट्यूट,बड़ौदा, पृ०५८-५९,छन्द ६३,वि०सं० १९९४ई० ।

-०-

चतुर्थ अध्याय

-0-

आदिकालीन हिन्दी रासो काव्य परम्परा में प्रतिबिम्बित पारिवारिक जीवन : परिवार, संस्कार, त्योहार, अभिवादन तथा सत्कार

चतुर्थ अध्याय

-0-

आदिकालीन हिन्दी रासो काव्य परम्परा में प्रतिबिम्बित पारिवारिक जीवन : परिवार, संस्कार, त्योहार, अभिवादन तथा संस्कार

(विषय- विवरणिका)

संयुक्त परिवार-- व्यष्टि और समष्टि का समतावादी समन्वय ; पाश्चात्य एवं भारतीय दृष्टिपथ ; परिवार -- व्यक्ति की शारीरिक, मनोवैज्ञानिक तथा सामाजिक शक्ति का आधार ; रासो काव्यों में वर्णित परिवार और पारिवारिक सदस्य ; मानव जीवन चक्र और षोडश संस्कार, संस्कारों की संख्या ; तत्कालीन भारत के प्रमुख चार संस्कार -- जातकर्म, नामकरण, विवाह एवं अन्त्येष्टि, रासो काव्यों में शुद्धि-कर्म, जातकर्म, मुख-दर्शन, नांदी- श्राद्ध, पुत्रजन्म पर बधाई, जन्ममुहूर्त, नामकरण, स्वयंवर प्रथा, कन्या- हरण वरण प्रथा, वैवाहिक मांगलिक कार्य, दहेज प्रथा, पतिधर्मशिक्षा, गौना एवं अन्य वैवाहिक कार्यकलाप ; बहुपत्नी प्रथा, अन्त्येष्टि क्रिया, षोडशदान; सती-प्रथा, विभिन्न त्योहार और उत्सव :, अभिवादन एवं आशीर्वाद- प्रणालियां, आतिथ्य-कर्म, सन्दर्भ-सरणि ।

-0-

चतुर्थ अध्याय

-0-

आदिकालीन हिन्दी रासो काव्य परम्परा में प्रतिबिम्बित पारिवारिक जीवन

भारतवर्ष में व्यष्टि और समष्टि का समन्वयात्मक एवं समतावादी भावभूमि पर संयुक्त पारिवारीय पौधा प्राचीनकाल से ही पुष्पित- पल्लवित होता रहा है। पाश्चात्य विचार-सरणि में बर्गेस-लॉक[1], मेकाइवर-पेज[2], निमकाफ[3] और डनलप[4] की कौटुम्बिक परि - भाषाएं भारतीय आदर्श को स्पर्श नहीं कर पातीं। वस्तुतः पारिवारिक संगठन के भारतीय स्वरूप का निदर्शन हमें ऋग्वेद[5], अथर्ववेद[6] आदि प्राचीनतम ग्रन्थों से लेकर पुराणों[7], स्मृतियों[8] एवं उपनिषदों[9] में यथास्थल मिलता है। बृहस्पति ने 'एक पाकेन वसताम्'[10] के अनुसार कुटुम्ब को एक संस्था कहा है जो एक साथ भोजन और आवास करे। अथर्ववेद में पारिवारिक व्यवस्था का उन्मेष इस प्रकार है--

> सहृदयं सामनस्यमविद्वेषं कृणोमि वः ।
> अन्यो अन्यमभिहर्यत वत्सं जातमिवाघ्न्या ।
> अनुव्रतः पितुः पुत्रो मात्रा भवतु संमनाः ।
> जाया पत्ये मधुमतीं वाचं वदतु शान्तिवाम् ।।
> मा भ्राता भ्रातरं द्विक्षन् मा स्वसारमुत स्वसा ।
> सम्यंचः सव्रता भूत्वा वाचं वदत भद्रया ।।[11]

-- ऐक्य-विधायिका, ममत्व-संधायिका एवं वाणी-माधुर्य की त्रिधा मूल धाराओं का संगम ही यहां निर्दिष्ट है । ऋग्वेद का ऋषि भी यही आदिष्ट करता है --

सं गच्छध्वं सं वदध्वं सं वो मनांसि जानताम् ।
देवा भागं यथापूर्वे संजानाना उपासते ॥[१२]

आलोच्यकालीन समाज में संयुक्त परिवार की व्यवस्था को प्रोत्साहन दिया जाता था । कुटुम्ब समाज की इकाई था । वर्ण, आयु, परम्परा, भाव तथा सामाजिक व्यवहार-क्रम के विलीनीकरण की प्रक्रिया के साथ यह व्यक्ति और समाज की मर्यादाओं का माध्यम था । परिणामत: परिवार में ही व्यक्ति को शारीरिक, मनोवैज्ञानिक तथा सामाजिक शक्तियां उपलब्ध होती थीं ।[१३]

आदिकालीन रासोकाव्यों में-- माता,[१४] पिता,[१५] पितामह[१६] भाई,[१७] बहिन,[१८] पुत्र, पुत्री,[१९] पति-पत्नी,[२०] भगिनी सुत,[२१] ननद,[२२] ताऊ,[२३] काका,[२४] अग्रज-अनुज,[२५] जेठ और अनुज-पत्नी,[२६] सपत्नी,[२७] धाय,[२८] नाना और दौहित्र,[२९] साले-बहनोई,[३०] भृत्य,[३१] सखी-दूती[३२] आदि के उल्लेख प्राप्त होते हैं । रासो काव्यों में जहां कहीं राजपरिवारों का चित्रण हुआ है, वहां दास-दासी,[३३][३४] अतिथि[३५] और पाहुना[३६] आदि शब्दों के प्रयोग हुए हैं । इसी प्रकार सम्बन्ध-स्थान सूचक शब्दों में ननसार[३७] और ससुरार[३८] आदि शब्द भी द्रष्टव्य हैं ।

पृथ्वीराज रासो के अन्तर्गत पिता और माता का स्थान अरसठ तीर्थों से भी बढ़कर माना गया है । घर में ही वह गंगा-गोदावरी नदियों के समान पवित्र थे । उनकी आज्ञा का पालन करने से पुण्यफल की प्राप्ति होती थी --

कहो आदि माता-पिता मुल जानं ।
पढ़े तारथं आठ सटठं प्रमानं ।
कहे गंग गोदावरी ग्रेह माहे,
जिनै मात सेव पिता सेव ताहै ।
धरा धुम्म राखे पिता वाच मानै ।
ग्रहे राज भारं सुरं पथ्थ थानै ।[३९]

पिता और माता की आज्ञा का अनुपालन ही सर्वश्रेष्ठ धर्म था । जो सन्तान, पिता-माता की आज्ञा का पालन नहीं करती थी वह गुरुघाती शिष्य अथवा पतिहन्ता नारी के समान था[४०] । माता को तत्कालीन समाज में पिता से कहीं अधिक पूज्यनीय समझा जाता था । पृथ्वीराज रासो में ही यह निदर्शित है कि यदि मां विष भी दे, तब भी उसका साथ अपरिहार्य है, भले ही उस पिता का साथ छोड़ दिया जाय जो सन्तान को बेचने के लिए तत्पर हो --

विखप्य घुटी माता दियै । वेचि पिता लै दाम ।
माता मरन न मुक्किये । पिता मरन मन मानि ।।[४१]

मां का स्थान पिता से आगे था । वह वीर-प्रसविनी थी[४२] यदि किसी मां का पुत्र रणक्षेत्र से पीठ दिखाता था या कायर होता था तो उसकी माता का दूध, अनुत्तम माना जाता था[४३] ।

परमाल रासो और पृथ्वीराज रासो में अनेक स्थलों पर माताओं द्वारा पुत्र हेतु कामना तथा व्रत-अनुष्ठान आदि का उल्लेख है,किन्तु उन्होंने कायर पुत्रों की उत्पत्ति के स्थान पर बांझ रहना ही श्रेयस्कर माना है --

देवल दै कहि बांफ न रुच्छिय ।
क्षत्रिय धर्म कर्म ग य भच्छिय ।
स्वामि शाकरे देह न कट्टिय ।
हा करतार कुछ नहि फट्टिय ।[४४]

++ ++ ++

मातिं साह सवनन सुना, जंपो मात निधान ।
मैं ग्रम्भह फुफयौ धरयौ गुंठिन पदा पान ।[४५]

तत्कालीन समाज में पति की मां को सास की संज्ञा से पुत्रवधुएं पुकारती थीं । उसका स्थान अत्यन्त उच्च था । सासों की आज्ञा पुत्रवधुओं को शिरोधार्य करना पड़ता था । पृथ्वीराज रासो में संयोगिता द्वारा पृथ्वीराज के नेत्र-विहीन होने की बात पर पश्चात्ताप किया जाता है कि कहीं किसी भी प्रकार उसके द्वारा सास की अवज्ञा तो नहीं हो गई --

कै न्योति विप्र परहर्यो ।
कर्यो नन बैन सासु कौ ।।[४६]

पृथ्वीराज रासो में ही पिता के छोटे भाई के लिए काका शब्द का प्रयोग किया गया है । काका और काकी की आज्ञा का पालन पिता की ही भांति करना अनिवार्य था । पृथ्वीराज चौहान के काका `कन्ह' थे और कन्ह की ही आज्ञा के अनुसार मुहम्मद गोरी को प्राण दण्ड नहीं दिया गया था जब कि सभी सामन्त इस राय के थे कि उसे मृत्युदण्ड मिलना चाहिए ।[४७]

परमाल रासो में बड़े भाई को पिता के समान समझा गया है --

जेठा बंध इ आल्ह मम होश्य ।
तात तुल्य जाना का मोश्य ॥[४८]

पृथ्वीराज रासो के अनुसार कन्ह का देहावसान हो जाने पर उसके अग्रज सोमेश्वर द्वारा पश्चात्ताप व्यक्त किया गया है कि उसके पूर्व सोमेश्वर की हो मृत्यु क्यों नहीं हो गई।[४९]

जेठ और अनुजपत्नी के सम्बन्ध पर भी पृथ्वीराज रासो में विचार किया गया है । पृथ्वीराज चौहान को शाप मिलने पर संयोगिता के मन में यह आता है कि कहीं ऐसा तो नहीं हुआ कि उसके द्वारा जेठ की मर्यादा भंग की गई हो--

कीनी न कानि के जेठ की । के बोलत ज्वाब न दयौ ।
बुल्लयौ सराय रिषि अंतकों।सता हाल के हरलयौ ।[५०]

पत्नी को पारिवारिक जीवन की धुरी माना गया है --

त्रिप व्याह राह ज्यं तौ सुचित, घर तरुणी तरुणाति घर[५१]

यह भी पृथ्वीराज रासो में स्पष्ट किया गया है कि परिवार के अन्तर्गत सर्वाधिक प्रेम का स्थान पत्नी का ही होता है,इसलिए कि वह पति के प्राण-त्याग पर सर्वस्व समर्पित करती है और वही पति की काम-पूर्ति का एकमात्र साधन होती है--

पूरन सकल विलास रस । सरस पुत्र फल दान ।
अंत होइ सहगामिनी । नेह नारि की मानि ।[५२]

युद्धक्षेत्र के अतिरिक्त सर्वत्र पत्नी का साहचर्य प्राप्त होता था ।[५३] पृथ्वीराज अपनी पटरानी इंच्छिनी के साथ गांठ जोड़कर राज्याभिषेक करते हैं ।[५४] सोमेश्वर भी अपनी तोमरवंशी पत्नी के साथ ही दानादि कार्य करते हैं ।[५५]

परमाल रासो के अन्तर्गत, मल्खान की पत्नी के द्वारा पत्नी-धर्म के उद्गार व्यक्त किए गए हैं, पत्नी के द्वारा पति को परमेश्वर माना गया है। वह पुरुष की जीवन-संगिनी है। दुख-सुख में सहचारिणी है, पति कैसा भी हो, किन्तु यदि वह सेवा करती है तो इस लोक में यश और परलोक में स्वर्ग पाती है।[५६]

परमाल रासो के अन्तर्गत ऊदल की पत्नी के द्वारा उन क्षत्राणियों को धिक्कारा जाता है जो युद्धक्षेत्र से विमुख होकर घर आने पर अपने पतियों के साथ सहवास करती थीं --

पिय भागे तिस अदरै, सौंपै सकल शरीर।
वह रजपुतनि कुक्करी, सुमुतन कहाँ गहीर।[५७]

पृथ्वीराज रासो के अन्तर्गत बहु-विवाह प्रथा के कारण गृह-कलह का उल्लेख कई स्थानों पर मिलता है --

को जानि मात विंझनी पार,
सौति को साल साले शरीर।[५८]

इसी प्रकार पृथ्वीराज चौहान की पटरानी इंच्छिनी ने भी सौतिया-डाह को सर्वाधिक कष्टदायक निरूपित किया है। उसके अनुसार यदि कोई पिता का वध कर दे अथवा किसी और प्रकार का बैरी हो, तब भी उससे मित्रता सम्भव है, किन्तु सौतेलेपन का दुःख सदैव कष्ट पहुंचाता रहता है और यह अन्तर्ज्वाला ग्रीष्मऋतु में लू की भांति जलाती रहती है --

पित्र घात सों मन मिलै । और बैर मिट जाइ ।
सौति बैर अन्तर जलनि । दिन प्रति ग्रासम लाइ ।[59]

इतना ही नहीं, चन्दवरदाई के द्वारा यह चित्रित किया गया है कि नारियां सभी कुछ सहन कर सकती हैं । वह धन-सम्पत्ति, स्वर्ण-वस्त्र, मोती आदि दूसरों को दे सकती हैं, किन्तु अपने पति-प्रेम का बंटवारा बर्दाश्त नहीं कर सकतीं --

धन ग्रह बंटन मुति ठग । हेम पटंबर सार ।
पुनि त्रिय पिय बंटन सुरति। लगै अधिक खगधार ।[60]

पृथ्वीराज रासो के ही अनुसार सौतों की मीठी-मीठी बातें और मन में शाप देना तथा प्रियतम के प्रेम को बंटाने वाली मानकर उनसे मुक्ति हेतु प्रार्थना की गई है --

मुख मिट्ठी बितां करै । मन में देत सराप ।
बटै प्रेम स प्रीय को । अन्तर दह-कै आप ।[61]

यदि कभी कोई सपत्नी स्वपति का सान्निध्य करती होसकती थी, तब वह शरीर पर अंगार के समान झुलसाने वाली प्रतीत होती थी --

सौति सुहागिल पुष्ष दिष्षि । लग्गैं नैनै अंगार ।
ज्यों ज्यों वह इंदा करै । त्यो त्यों करवत धार ।[62]

पृथ्वीराज रासो में सपत्नियों का मन मुटाव चरम सीमा पर दिखाया गया है, इसमें इच्छिनी और संयोगिता की ईर्ष्या चरम सीमा पर दिखाई गई है, जिसमें इच्छिनी ईर्ष्या के कारण मूर्च्छित

हो जाती है । इच्छिनी और रानियों का पृथ्वीराज चौहान से एक वर्ष तक मिलन नहीं होता है । इच्छिनी और अन्य रानियां सौतिया डाह के कारण महल छोड़कर जाने लगती हैं तथा इन्हें पृथ्वीराज से मिलने का अवसर प्राप्त होता है[63] ।

महाराज बोसलदेव की रानियों में पारस्परिक सपत्नी-द्वेष के कारण कौटुम्बिक कलह और संघर्षों का सामना करना पड़ता है[64] । पृथ्वीराज रासो के अन्तर्गत माता के पिता को नाना, मात-पित, मातुल-पिता आदि शब्दों का प्रयोग किया जाता था । पृथ्वीराज चौहान ने अनंगपाल के लिए इन शब्दों का प्रयोग किया है[65] । इसी प्रकार अनंगपाल ने भी पृथ्वीराज को पुत्री-पुत्र कहा है[66] तथा सोमेश्वर ने पुत्री-पुत्र कहा है[66] के लिए दौहित्र शब्द का प्रयोग किया है[67] ।

पृथ्वीराज रासो कालान्तर्गत साले-बहनोई प्रथा थी और यह एक दूसरे के लिए आपत्तिकाल में सर्वस्व त्याग करते थे । रावल समर विक्रम तथा पृथ्वीराज चौहान का एक दूसरे के प्रति स्नेह भाव पृथ्वीराज रासो के अन्तर्गत इस तथ्य को प्रमाणित करता है । मुहम्मद गोरी के अन्तिम आक्रमण के समय रावल समर विक्रम पृथ्वीराज चौहान के लिए प्राणार्पण करना चाहते हैं, किन्तु पृथ्वीराज चौहान उन्हें वापस लौट जाने के लिए अनुरोध करते हैं । किन्तु रावल समर विक्रम क्रोधित होकर पृथ्वीराज चौहान का अनुरोध ठुकरा देते हैं और अपना मन्तव्य इन शब्दों में प्रकट करते हैं कि यदि मैं आपके दुर्दिन में साथ नहीं दे सकता तब मेरा जीवन व्यर्थ है[68] । पृथ्वीराज रासो में ही बहनोई के लिये देश-विशेष का अधिपति

अथवा बहिन को कन्त कहा गया है[69]। बहनोई को अत्यधिक सम्मान दिया जाता था, अतिथि शिरोमणि समझा जाता था तथा वंश का पूज्य पुरुष माना जाता था[70]।

पृथ्वीराज रासो में पुत्री के लिए पिता अपनी मान-मर्यादा को तिलांजलि दे देता था। जयचन्द भी अपनी पुत्री संयोगिता के दृढ़ निश्चय को देखकर उसकी आंखों में आंसू और फीका मुंह निहार कर द्रवाभूत होते हैं और पृथ्वीराज के समक्ष यह कहते हुए कन्नौज वापस हो जाते हैं कि अपनी पुत्री और प्रतिष्ठा तुम्हें अर्पित कर रहा हूं[71]।

पृथ्वीराज रासो में ही इन्द्रावती का पिता पृथ्वीराज चौहान को अपनी ही पुत्री का अपहरण करने की सूचना देता है, इसलिए कि इन्द्रावती के द्वारा पृथ्वीराज चौहान की प्राप्ति न होने पर आत्महत्या का निश्चय किया गया था[72]।

पृथ्वीराज रासो के अन्तर्गत पुत्र का जन्म पिता की तपस्या का परिणाम माना जाता था। पृथ्वीराज का जन्म महाराज सोमेश्वर की अखण्ड तपश्चर्या की परिणति माना गया है[73]।

परमाल रासो के अन्तर्गत पुत्रप्राप्ति हेतु हेमवती तीर्थों की यात्रा करती है और देवताओं का अनुष्ठान करती है[74]। पृथ्वीराज रासो में ही उसी घर को श्लाघ्य समझा गया है जिस घर में एक पुत्र कम से कम हो[75]। अनंगपाल के द्वारा पुत्र के अभाव में सम्पूर्ण संसार व्यर्थ कहा गया है। यह भी कथन है कि जिस परिवार में पुत्र न हो वह परिवार नष्ट हो जाता है, उसमें किसी भी प्रकार के धार्मिक

कार्य न हो पाने के कारण पितृ-तर्पण नहीं हो पाता । केवल वही पुत्र सच्चा माना गया है,जो पितृ-ऋण चुकाता है।[७६]

रासो काव्यों में `धाय` का वर्णन कई स्थलों पर प्राप्त होता है । संयोगिता अपनी धाय के समक्ष मुंह खोलकर कुछ भी कहने में संकोच करती है और वह अपनी मां जाह्नवी से भी अधिक अपनी धाय का सम्मान करती है।[७७] बीसलदेव के पुत्र को अपनी धाय-बहिन के विधवा हो जाने पर वैराग्य हो जाता है और वह बौद्ध साधु बन जाता है।[७८]

भारतवर्ष में मानव-जीवन एक चक्र के समान समझा जाता रहा है और वैदिक काल या उससे पूर्व ही आत्मवादी एवं भौतिकवादी विविध धारणाओं के बीच ही देश और काल के अनुसार कतिपय संस्कारों की सृष्टि हुई थी । `संस्कार` शब्द का प्रयोग अनेक अर्थों में किया गया है , संस्कृत साहित्य में इसका प्रयोग संस्करण, परिष्करण, प्रशिक्षण, संस्कृति, शोभा, सौजन्य, स्वरूप, स्वभाव,धार्मिक विधि, धारणा, आभूषण, छाप, विधान आदि अर्थों में किया गया है।[७९] वेद, ब्राह्मण ग्रन्थ, आरण्यक, उपनिषद, गृह्य सूत्र,धर्मसूत्र, स्मृतियों,महाकाव्यों और पुराणों आदि में षोडश संस्कारों,इनकी पद्धतियों, प्रयोगों, प्रयोजनों विधायक अंगों आदि के सम्बन्ध में विचार-विमर्श हुए हैं।[८०] वस्तुत: यह संस्कार पारिवारिक उत्सव के रूप में विविध अवसरों पर मनाये जाते थे । इनकी संख्या भी घटती-बढ़ती रही है । आश्वलायन गृह्यसूत्र में ग्यारह संस्कारों की गणना है, बौधायन गृह्य सूत्र तथा पारास्कर गृह्य सूत्र में यह संख्या तेरह है । याज्ञवल्क्य-स्मृति में बारह,गौतम-धर्मसूत्र तथा गौतम स्मृति में चालीस संस्कारों का नामोल्लेख किया गया है, किन्तु उक्त संस्कारों

में जातिकर्म, नामकरण, विवाह तथा अन्त्येष्टि संस्कार ही अधिक प्रचलित थे। डॉ० वासुदेव उपाध्याय ने भी तत्कालीन भारत में इन्हीं चार संस्कारों का उल्लेख किया है।[८१]

पृथ्वीराज रासो में शुद्धि-कर्म, शिशु पृथ्वीराज के जन्म के बाद किया जाता है। पृथ्वीराज के नाना अनंगपाल ब्राह्मणों के द्वारा शुद्धि कर्म सम्पन्न कराते हैं --

`प्रमथ पुत्र सोमेस। गंधपुर ढुंढा गढ्ढिढय।
भई सुद्धि गंधवन। पुहप मंगल हुज पढ्ढिढय।[८२]

पृथ्वीराज रासो में पृथ्वीराज का जातकर्म होने से पूर्व पृथ्वीराज के पिता उसका मुख-दर्शन करते हैं। चन्दवरदाई ने इस कार्य को `नांदो श्राद्ध' कहा है और इस अवसर पर ब्राह्मणों के द्वारा वेदविहित जातकर्म की क्रिया होती है। नृत्य और गान आदि कार्य होते हैं --

`पथराइ राइमुष दरस कीन। किय, कम्म पुब्ब फल मान लीन।[८३]'

++ ++ ++ ++

करि जात कम्म मति ग्रन्थ सोधि।
वेदोक्त विप्प वर बुद्धि बोधि।
मंगल उच्चार करि नृत्य गान
अच्छरि अलाप सुर भवन जानि।[८४]'

पुत्र जन्म पर बधाई देने की प्रथा पृथ्वीराज रासो में प्रदर्शित की गई है। पृथ्वीराज का जन्म होता है, तब नगर की महिलायें सोने के थालों में रेशमी वस्त्र, चावल आदि द्रव्य लेकर बधाई

देने आती हैं --

सब नहर नारि श्रृंगार कीन । नृप अप्प कुंडमिलि चलि नवीन ।
थपि कनक थार भरि द्रव्य दूब । पटकूल अरफ जर क्ला ऊब ।[85]
अछिकत अनुप रोचन सुरंग । मृदुकमल हाथ लोचन कुरंग ।

इसी प्रकार पृथ्वीराज रासो में भी दास-दासियों को पुत्रोत्पत्ति[86] का समाचार देने पर घोड़े, हाथी, वस्त्र आदि दिये जाते हैं --

`सुनि सोमेस बधाइ दिय । दै गै चार गुराव ।`

जन्म-मुहूर्त विचारने का प्रचलन और जन्म का समय देखकर भविष्यकाल के सम्बन्ध में जानकारी करने की पद्धति विशेषरूप में थी । पृथ्वीराज चौहान के जन्म[87] पर अनंगपाल ने व्यास को बुलाकर जन्म-लग्न पर विचार कराया था । सोमेश्वर भी ज्योतिषियों को बुलाकर उनसे पृथ्वीराज की उम्र, विवाह, युद्ध आदि के सम्बन्ध में पूछते[88] हैं और उन्हें घोड़े, हाथी आदि अमित धनदान करके विदा करते हैं । महाराज पृथ्वीराज का नामकरण संस्कार[89] महाराज सोमेश्वर के द्वारा ज्योतिषियों के माध्यम से किया जाता है ।

तत्कालीन समाज में स्वयंवर आदि के माध्यम से विवाह संस्कार होता था[90] । मनुस्मृति आदि शास्त्रीयग्रन्थों में आठ प्रकार की वैवाहिक पद्धतियां निरूपित की गई[91] हैं ।

डॉ० दशरथ शर्मा के अनुसार एक हजार ईसवी के लगभग स्वयंवर प्रथा प्रचलित थी, जिसका[92] विवरण हेमचन्द्र और जयानक आदि के द्वारा प्रस्तुत किया गया है ।

पृथ्वीराज रासो से ही स्पष्ट होता है कि तत्कालीन राजा अपनी पुत्रियों के विवाहार्थ स्वयम्वर-प्रथा का अवलम्ब लेते थे और

कन्या जयमाल लेकर सुसज्जित पाण्डाल में विभिन्न राजाओं के बीच जाती थी और जिस किसी राजा को राजकवि द्वारा गुणगान सुनकर, जयमाल पहनाती थी, कन्या का विवाह उसी के साथ कर दिया जाता था।[६३] कन्याओं के अपहरण का विशेष प्रथा प्रचलित था, इस प्रथा में पूर्व अनुराग प्रेम-सन्देश अथवा किसी शुक, हंस,नट,भाट आदि के द्वारा गुणगान करने पर चित्र मात्र देखने से उत्पन्न होता था। इस प्रकार का प्रेमांकुर शशिव्रता, पद्मावती तथा संयोगिता में दिखाई पड़ता है।[६४] पृथ्वीराज रासो में यह निदर्शित है कि कन्यायें अपने पिता द्वारा चयन किये गये वर को उपयुक्त न मानकर अपने अभीष्ट वरों को अपहरण के लिए संदेश भेजती थीं--

जो क्षित्री कुल शुद्ध । वरनि वर रष्षह प्रानह ।[६५]

तत्कालीन समाज में कन्यायें अपने अभीष्ट वर को न पाने पर आत्मघात के लिए उद्यत रहती थीं।[६६] और अपने अभीष्ट राजा या राजकुमार के पास उन स्थानों की सूचना देती थीं जहाँ से उनका अपहरण किया जा सकता था --

ज्यौं रुकमनि कन्हर वरी । ज्यौं वरि संभरि कांत ।
शिव मंडपपच्छिम दिसा । पूजि समय स प्रांत ।[६७]

पृथ्वीराज रासो में इस प्रकार का अपहरण पद्मावती,शशिव्रता और संयोगिता का हुआ है, इस प्रकार के विवाहों को राक्षस अथवा गान्धर्व विवाह की संज्ञा दी जा सकती है।[६८] यदि कोई भी राजा या राजकुमार निश्चित तिथि और समय पर विवाहार्थ नहीं पहुंचता था, तब वह अपनी तलवार भेजता था कभी-कभी इसे

कन्या पक्ष की ओर से यह अपमानजनक भी समझा जाता था, जैसा कि इन्द्रावती के विवाह विवरण से विदित होता है।[९९]

वैवाहिक अवसरों पर आलोच्यकालीन समाज में अनेकशः मांगलिक कार्य सम्पन्न किये जाते थे। विविध आचार भी सम्पन्न किये जाते थे। डॉ० राजबली पाण्डेय ने इस प्रकार के बयालिस आचारों को परिगणित किया है।[१००] सर्वप्रथम सगाई का कार्यक्रम किया जाता था। पृथ्वीराज रासो में नाहरराय पृथ्वीराज चौहान को आठ वर्ष की अवस्था में ही माला पहनाते हुए सगाई का कार्यक्रम सम्पन्न करते हैं।[१०१] परमाल रासो और पृथ्वीराज रासो में कई स्थलों पर टीका भेजने की प्रथा का चित्रण किया गया है। इस प्रथा को ही लगन भेजना भी कहते थे।[१०२] इसमें अपने कुल के पुरोहित के द्वारा नारियल तथा वस्त्र, हाथी, घोड़े, आभूषण, मुद्रायें और मिठाइयों को वर पक्ष के पास भेजने की प्रथा थी। पृथ्वीराज रासो के अन्तर्गत शशिव्रता इन्द्रावती, प्रिथा कुंवरि तथा परमाल रासो में बेला की लगुन इसी प्रकार भेजी गई है।[१०३] इसी प्रकार परमाल रासो में लाखन की लगुन भी हाथी घोड़ों और स्वर्ण मुद्राओं सहित जाती है।[१०४] परमाल रासो में ही लाखन का टीका चढ़ने का विवरण है। जिसमें लग्न चढ़ते समय असीम धन लुटा दिया जाता है।[१०५] इसी प्रकार जब राजकुमार ब्रह्मा को लग्न चढ़ाई जाती है, तब उसे पान खिलाया जाता है, हाथ में नारियल दिया जाता है और टीका की सामग्री चौक में रक्खी जाती है।[१०६] परमाल रासो में ही यह विवरण दिया गया है कि पृथ्वीराज चौहान द्वारा लगुन में एक लाख स्वर्ण मुद्रायें

भेजा गई थी और महाराज चन्देल उसमें दो लाख और स्वर्णमुद्राओं को मिलाकर प्रजाजनों को बांट देते हैं।[१०७] हाथों में कंगन बांधने की प्रथा का उल्लेख पृथ्वीराज रासो में उपलब्ध होता है।[१०८] विवाह के समय कन्याओं के उबटन का उल्लेख इंछिनी और शशिव्रता के शृंगार वर्णनों में अनुस्यूत है।[१०९] चन्दबरदायी के द्वारा पृथ्वीराज चौहान को संयोगिता के साथ विवाह के अवसर पर मुकुट पहने हुए दिखाया गया है।[११०] परमाल रासो और पृथ्वीराज रासो में बारात की अगवानी की प्रथा का चित्रण है--

आगे हवै चावद लियव, रैन कुंवर अगिवान।[१११]

++ ++ ++

सुनि आवत बहु जान। करि अग्यौन कलश वर।[११२]

पृथ्वीराज रासो में तोरण, वन्दना की प्रथा का उल्लेख प्राप्त होता है।[११३]

तोरन करवर बंद तह । मुत्तिय अक्खित डारि

++ ++ ++

वंदन वर आयौ नृपति । तोरन संभरिवार ।

प्रीति पुरातन जानि कै । कामिनि पुजत मार ।

तत्कालीन भारतवर्ष में बारातों के आगमन पर 'जनवासा' दिया जाता था। परमाल रासो के अन्तर्गत ब्रह्मा की बारात में एक लाख बाराती दिये गये हैं। इसी प्रकार लाखन की बारात में तीन लाख बाराती थे।[११४]

रावल समर विक्रम की बारात में आठ हजार साधारण बाराती, दो हजार कोविद, एक हजार मागध तथा पांच सौ वैदिक पण्डित शामिल हुए थे।[११५] इंछिनी के लिए आयी हुई बारात

पांच दिन रोको गया था और बारातियों के साथ ही शहर के समस्त व्यक्तियों को भोजन दिया गया था । रुक्मिनी के पिता ने बारात के लिए सात खण्ड के प्रासाद में साज-सज्जापूर्ण जनवासा दिया था ।[११६]

पंच दिवस ब्यारों बरन । भुजंत अंन अपार ।
करत अन्न इह रिति न सुष। अब्बु वै भावार ।

पृथ्वीराज रासो में इंछिनी विवाह के अवसर पर 'बारबार' किया गया था जिसमें ज्योतिषियों ने मुहूर्त-विचार किया था और हाथी,घोड़े आदि महाराज सलष्नराज के द्वारा प्रदान किये गये थे ।[११७] परमाल रासो में भी ब्रह्मा की बारात के आगमन पर चौक पुर कर पुष्पायें मालायें एवं अस्त्र-शस्त्र दिये गये थे । स्त्रियों ने गीत गाये थे तथा भाटों के द्वारा प्रशस्ति-गान किया गया था ।[११८] विवाह के वक्त मण्डप बनाया जाता था, इसका प्रमाण पृथ्वीराज और पद्मावती के विवाह अवसर पर मिलता है ।[११९] भांवरों के समय वर और कन्या को पटा पर बैठाया जाता था ।[१२०] गणेश पूजन, कलशपूजा, गांठ जोड़ना, 'पानि-ग्रहन' अथवा 'हथलेवा' के कार्य सम्पन्न किये जाते थे ।[१२१] पृथ्वीराज रासो के वैवाहिक स्थलों से यह ज्ञात होता है कि भांवरों के समय विभिन्न देवो-देवताओं की कुल गुरुओं की पूजा की जाती थी और तभी कन्या बायीं ओर आकर बैठती थी --

ध्रुव कुल वारि विचार कर । ब्याहो बांम नरेस ।
ग्रहन पुजि ग्रह देव पुजि । पुजि अगिन दुंज देव ।
साषोचार उचार धुनि । प्रसन मन नृप देव ।
बंदपुर वहां राषि दिय । बन्हि बसन वुध गह ।
प्रोहित पुर उपदेश करि । बांम अंग कब तब आइ ।[१२२]

परमाल रासो में शिवराम के द्वारा ब्रह्मा को भांवरे पड़ने के समय चन्देल की प्रशस्ति का पाठ किया जाता है।[१२३] 'कन्यादान' की प्रथा का उल्लेख इच्छिनी विवाह के अवसर पर चित्रित किया गया है, जिसमें इच्छिनी की मां और पिता दोनों ही आपस में ग्रन्थि-बन्धन करते हुए कन्यादान करते हैं --

अच्छु पति पट गंठि त्रिय । विनय जोरि कर कान ।
इह कन्या नृप सोम सुत । दासपन पन दीन ।[१२४]

पृथ्वीराज रासो तथा परमाल रासो में अनेक स्थलों पर दहेज के लिए प्रस्तुत दास,दासियों,पण्डित, हाथी,घोड़े, रथ, हीरे, आभूषण एवं वस्त्र आदि की सूचियां प्राप्त होती हैं।[१२५] बारात की वापसी के समय वन्दीजनों आदि को विभिन्न वस्तुयें भेंट की जाती थीं।[१२६] बेटी की विदाई के समय कन्या की मां के द्वारा पतिधर्म की शिक्षा देने का उल्लेख पृथ्वीराज रासो में किया गया है --

मात सुचि परठिय सुमति । विधि अनेक चित यान ।
पतिव्रत सेवा पुंण्य धरम । इहे तत्व मति ठान ।
पति तुष्यै- तुष्यै जनम । पति वंचै बंचाइ ।
इहै सीष हम मन धरौ । ज्यौं सुहाग समवाइ ।[१२७]

वैवाहिक कार्य-कलापों से सम्बन्धित अनेकानेक आचार-विचार तत्कालीन रासो काव्यों में संग्रथित हैं। जिनमें बारात की वापसी पर वर और वधु का साज-सज्जा सहित आदर-सत्कार करना,कुल-देवताओं की पूजा-अर्चना, ससुराल में सुहाग रात मनाना, विवाह के उपरान्त एक साल बाद गौना करना,वधुओं को गृहस्थी की शिक्षा देना आदि प्रथायें गण्यमान हैं।[१२८]

बहुपत्नी प्रथा के उदाहरण पृथ्वीराज रासो और परमाल

रासो में उपलब्ध होते हैं । पृथ्वीराज चौहान का दस रानियां, मुहम्मद गोरी की पांच सौ दस बेगमें, परमाल को एक सौ साठ रानियां, ब्रह्मा का पचास रानियां और महाराज वीसलदेव की अनेक रानियों का उल्लेख रासो काव्यकारों ने किया है ।

पंच सत दस हरम । साह कामी तप मारी ।[१२९]

++ ++ ++

तब सकल मध्य एकत्र नारि । पुरुषासन तिन बंध्यौ विचार ।[१३०]

++ ++ ++

येक संत साठ रानी सहित राजा परमाल चलते भये ।[१३१]

++ ++ ++

पचीस हुप नारि व्याही तुम्हारी, सब सुन्दरी गाह चाहत न्यारी ।[१३२]

परमाल रासो तथा पृथ्वीराज रासो में अन्त्येष्टि सम्बन्धी विविध विवरण प्राप्त होते हैं । सती नारी और शौर्य पूर्ण पुरुष के पर्यवसान पर मंगल कार्य करना अभीष्ट बताया गया है ।[१३३]

परमाल रासो में ब्रह्म-रन्ध्र के द्वारा प्राणत्याग होने पर हरिपुर की प्राप्ति का विश्वास व्यक्त किया गया है --

रानिन स्यौं हरिवर गयव, ब्रह्मरन्ध्र तजि प्रान ।[१३४]

यदि कोई वीर रणक्षेत्र में प्राणोत्सर्ग करता था तब उसके मरण पर शोक व्यक्त करना श्लाघ्य नहीं माना जाता था । पृथ्वीराज रासो के अन्तर्गत पृथ्वीराज चौहान के पिता की युद्ध-भूमि में मृत्यु होने पर उन्हें शोक मनाने से विरत किया जाता है --

करत दुक्ख चहुआन, बरजि, प्रम्मार स्यंघ तह ।
आदि ब्रम्म क्षत्रीनि, करौंन संताप समर ग्रह ।[१३५]

पिता की मृत्यु के उपरान्त महाराज पृथ्वीराज को बारह दिन तक भूमिशयन करना पड़ा था[१३६]। वह एक बार भोजन प्राप्त करते थे तथा सांसारिक विलास की वस्तुओं से अनासक्त रहते थे[१३७]। इसी प्रकार महाराज सोमेश्वर की मृत्यु के उपरान्त षोडश-दान किया गया था--

सुन्यौ राज प्रथिराज । भूमि सिज्जा अवधारिय ।
तात काज तिन । दान षोडस विस्तारियौ[१३८] ।

पृथ्वीराज रासो के अन्तर्गत सती-प्रथा का उल्लेख कैमास की पत्नी के सम्बन्ध में प्राप्त होता है[१३९]। इसी प्रकार प्रिथा कुंवरि तथा पांच हजार राजपूत बालाओं का सती होना पृथ्वीराज रासो में वर्णित है[१४०]। परमाल रासो में भी महाराज परमाल की मां सोमवती का अपने पुत्र को पांच वर्षीय ही छोड़कर सती हो जाने का उल्लेख है[१४१]। डॉ० सत्यकेतु विद्यालंकार के अनुसार तत्कालीन भारत में मुसलमानों में भी आंशिक रूप में सती-प्रथा का होना बताया गया है[१४२]। पृथ्वीराज रासो में चित्ररेखा मीरहुसेन के साथ कब्र में दफन हो जाती दिखाई गया है[१४३]। परमाल रासो और पृथ्वीराज रासो में सती होने की कार्य-विधि का भी उल्लेख प्राप्त होता है --

चंदन मंदिर द्वार । रचियवर दिष्ष्य लघ्घु वर ।
विवह कुसुम वर रचिहि । सोहि पर वसन सुरह वर ।
किय जंब नद दान । रथय हय गय मगता मनि
विप्प वेद उच्चरहि । वेन सुरवर आयासनि ।
किय लोक लोक अंजुलिकुसुम सजि विमान सुर सिर फिरहि ।
संकुभिय अप्प साहागवनि । मभि गवन हाव्वहि हरहि[१४४] ।

आलोच्यकालीन रासो काव्यों के अन्तर्गत त्योहारों और उत्सवों का उल्लेख मिलता है, जिनमें दीपावली, विजयादशमी, रक्षा-बन्धन, होली, बसन्त पंचमी, शिवरात्रि, नवदुर्गा आदि त्योहारों का उल्लेख परमाल रासो, पृथ्वीराज रासो आदि में उपलब्ध है। दीपावली का त्योहार सर्वत्र मनाया जाता था[१४५]।

पृथ्वीराज रासो के अन्तर्गत दीपावली के सम्बन्ध में एक कथानक दिया गया है, जिसमें एक ब्राह्मण के घर में दीप जलते हुए देखकर लक्ष्मी का निवास उसी घर में हो गया तब समस्त प्रजा-जन उस ब्राह्मण को धनाढ्य देखकर कार्तिक अमावस्या के दिन दिये जलाने लगे[१४६]। रक्षाबन्धन अथवा सलोना का विवरण परमाल रासो में मिलता है और इसे 'कजरिया खोटने' अथवा 'भुजरियों का पवना' कहा गया है[१४७]। परमाल रासो में इन भुजरियों के खोटने के दिन दानादि देने की प्रथा का भी चित्रण मिलता है[१४८]।

चन्दबरदाई ने 'नवदुर्गा' के रूप में नवदुर्गा का उल्लेख किया है[१४९]। इस त्योहार को चैत के महीने में शुक्लपक्ष में पहले नौ दिन और क्वार के महीने में भी शुक्लपक्ष में प्रथम नौ दिन मनाया जाता था[१५०]। पृथ्वीराज रासो के अंतर्गत इस काल में दुर्गादर्शन, हवन और बलि आदि की प्रथा प्रचलित थी[१५१]। क्षत्रियों के लिए दशहरा से पूर्व की नौ दुर्गा पूजा का विशेष महत्त्व था[१५२]। इस त्योहार पर ब्राह्मणों की कन्याओं को भोजन देने का कार्य किया जाता था[१५३]। विभिन्न कार्यों की सफलता के लिए दुर्गा देवी की मनौती मानी जाती थी। चन्दबरदाई ने धार-पुण्डीर को देवी जी की मनौती मनाते हुए चित्रित किया है[१५४]।

विजयादशमी अथवा दशहरा मनाने के लिए पृथ्वीराज चौहान अपने सामन्तों के शक्ति-परीक्षण हेतु स्तम्भ-भेदन का कार्यक्रम आयोजित करते थे [१५५]। पृथ्वीराज रासो में बसन्त पंचमी मनाने का आयोजन वर्णित है [१५६]। यह कार्यक्रम अत्यधिक उल्लास और धूमधाम सहित सम्पन्न होता था। महाराज पृथ्वीराज अपने ही निवासस्थान पर तम्बू लगवाते थे, गलीचे बिछवाकर कपूर, केशर, कस्तूरी, अबीर, पुष्प, गुलाल, रोली, मिष्ठान्न, मेवा आदि सामग्रियां एकत्र की जाती थीं। सोने के सिंहासन पर भगवान कृष्ण की मूर्ति स्थापित की जाती थी। शहनाई नगाड़ा, नफीरी, ढोल, मृदंग, शंख, वीणा और वंशी आदि वाद्य यन्त्र बजते थे। विभिन्न साज-सज्जाओं सहित नर-नारियां श्रीकृष्ण के जीवन से सम्बन्धित नाटक आदि करते थे। महाराज पृथ्वीराज और उनके सामन्त गण उपस्थित रहते थे [१५७]।

पृथ्वीराज रासो में शिवरात्रि मनाने का विवरण प्राप्त होता है--

ग्यारह सौ गुन तीस वदि, फागुन चवदसि सोम।
सिवरतौ सोमेस नृप, निसा मंडि जप होम [१५८]।

यह त्योहार फाल्गुन के महीने में चतुर्दशी को सम्पन्न होता था। महाराज सोमेश्वर को पृथ्वीराज रासो में शिव का जाप, हवन, शिवलिंग का स्नान तथा घी के दिए जलाकर फूल चढ़ाते हुए दिखाया गया है। वह ब्राह्मणों को भोजन और वस्त्र तथा स्वर्ण मुद्राओं को भी प्रदान करते थे [१५९]।

पृथ्वीराज रासो में होली का त्योहार समस्त वर्णों और वर्गों की समता का त्योहार था। इस अवसर पर धनी और गरीब सभी आपस में गले मिलते थे --

च्यारि बरन इथकंत मिल । कलह रूप कलहंत ।
व्याधि-अव्याधि न जानहीं । ज्यों मन नहिं बिलसंत[२६०] ।

चन्दबरदाई ने होली मनाने का कारण 'ढुंढा' नाम की राक्षसी से मुक्ति माना है[२६१] । यह त्योहार समस्त सामाजिक मर्यादाओं को तिलांजलि देकर गाली-गलौज तथा कीचड़-धूल के साथ मनाया जाता था, जिसका प्रतिबिम्ब आज भी होली के अवसर पर दिखाई पड़ता है[२६२] ।

परमाल रासो तथा पृथ्वीराज रासो आदि रासो काव्यों से विदित होता है कि तत्कालीन समाज में अभिवादन और आशीर्वाद के विभिन्न रूप प्रचलित थे, जिसमें चरण स्पर्श, प्रणाम, जुहार, हाथ जोड़ना और सर-झुकाना तथा सलाम और सलाम आदि प्रयोग होते थे । परमाल रासो में अनंगपाल एक ब्राह्मण को दण्डवत् करते हैं[२६३] । चन्दबरदाई को भी बावन-वीर प्रकट होते ही दण्डवत् करते हैं[२६४] । पृथ्वीराज चौहान भी अपनी नित्य-क्रिया के उपरान्त देवताओं को पांच बार दण्डवत् करते दिखाये गये हैं[२६५] ।

प्रणाम करते हुए अभिवादन की प्रथा का उल्लेख पृथ्वीराज रासो आदि में है । चामुण्डराय पृथ्वीराज चौहान को और महाराज परमाल को आल्हा के द्वारा प्रणाम किया जाता है[२६६] । सलख-पंवार को भोला भीम का दूत प्रणाम करता हुआ दिखाया गया है[२६७] ।

पृथ्वीराज चौहान के सभी सामन्त पृथ्वीराज चौहान को हाथ जोड़ते हुए सिर झुका कर अभिवादन करते हैं[२६८] । परमाल रासो में देवताओं को जुहार करते हुए चित्रित किया गया है--[२६९]

किय मुजानम कल्पी नहर, कल्पेश्वरहि ब जुहार

ब्रह्मा की शादी के अवसर पर सभी निमंत्रित किये गये राजा परमाल को आते ही हाथी और घोड़ों से उतर कर जुहार करते हैं--[१७०]

उतरि अश्व गजराज ते नै नै करत जुहार ।

पृथ्वीराज रासो में भी प्रजाजन राज्याभिषेक के समय जुहार करने आते हैं।[१७१] इसी प्रकार अनेक स्थलों पर 'जुहार' करते हुए पृथ्वीराज रासो में और परमाल रासो आदि में विवरण प्राप्त होते हैं।[१७२] चरणस्पर्श करते हुए चरणों में गिरना और चरण पकड़ लेना आदि अभिवादन की प्रथायें पृथ्वीराज रासो और परमाल रासो में दृष्टिगोचर होती हैं।[१७३] पृथ्वीराज रावल समर विक्रम का चरणस्पर्श करते हुए दिखाये गये हैं।[१७४]

तत्कालीन भारत में मुसलमानों का प्रभाव पर्याप्त बढ़ चुका था और आपस में सलाम करने की अभिवादन प्रणाली भी प्रवर्तित हो चुकी थी। पृथ्वीराज रासो में हिन्दुओं के द्वारा हिन्दुओं को[१७५] मुसलमानों के द्वारा मुसलमानों को[१७६] अथवा हिन्दुओं और मुसलमानों के में भी पारस्परिक सलाम करने की प्रथा प्रचलित हो चुकी थी।[१७७] परमाल रासो में भी हिन्दुओं के द्वारा हिन्दुओं को सलाम करना द्रष्टव्य है।[१७८] तसलीम करना भी सामन्ती-संस्कृति का अंग बन गया था। पृथ्वीराज रासो में मुहम्मद गोरी के द्वारा पृथ्वीराज चौहान को तसलीम करते हुए दिखाया गया है।[१७९]

आशीर्वाद देने के लिए परमाल रासो के अन्तर्गत यह चित्रित किया गया है कि आल्हा-ऊदल द्वारा मलिखान की माता के चरण पड़ने पर वह उनको उठाकर मुंह चूमती है और आशीर्वाद देते हुए सिर सूंघती है।[१८०]

अतिथि सत्कार के लिए तत्कालीन भारत पूर्ववत् अतिथियों को देवता के समान समादृत करने के लिए प्रस्तुत था । अतिथियों के लिए विविध प्र उपहार भेंट करना, स्वागत के लिए आरती और कलश का आयोजन करना परमाल रासो और पृथ्वीराज रासो में निदर्शित है।[१८१] द्वारिका-दर्शन के लिए जाते हुए चन्द-बरदाई को प्रिथा कुंअरि सोने की थालियों में वस्त्र,आभूषण,व्यंजन, ताम्बूल आदि देती हुई गीत गाती है।[१८२] इसी प्रकार भोला भीम भी अपनी राजधानी में सौ घोड़े और एक हाथी भेंट करते हैं।[१८३] कन्नौज में संयोगिता की माँ एक हजार स्वर्णमुद्रायें ,मोती ,मणियों की मालायें और विविध-भोजन सामग्रियां चन्दवरदाई को प्रदान करती हैं।[१८४]

परमाल रासो में एक स्थल पर यह विवरण प्राप्त होता है कि महाराज चन्द्र ब्रह्म का जलयान नष्ट होने पर और उनके एक अज्ञात द्वीप में पहुंचने पर वहां के रहने वालों के द्वारा नाना प्रकार के उपहारों के द्वारा उनका सम्मान किया जाता है ।

कदल-फल-दल समन लै, इक मेवा पक्वान ।
बर्धमान आदर्श लै ब बाला पहुंचिय आय ।
सीरष पर आया करिय नृप कहं दियव दिखाय
गंधिय सकल सुगंध लै, पुर पुरजन को भीर ।
उपहारै लिज्जे नृपत कहै बैन ये कोर ।[१८५]

स्वागतार्थ विविध उपहार भेंट करने के अतिरिक्त तत्कालीनसमाज में चरण धोना[१८६] , आरती लेना,[१८७] वस्त्रों पर इत्रादि लगाना[१८८] ,अर्घ्य देना,[१८९] प्रदक्षिणा लगाना,[१९०]पांवड़े बिछाकर[१९१] सम्मानित करना आदि कृत्य भी प्रचलित थे ।

सन्दर्भ- सारणि

--

(चतुर्थ अध्याय)

सन्दर्भ-सरणि

-0-

(चतुर्थ अध्याय)

१- ई० डब्ल्यु० बर्गेस तथा एच० जे० लाक, दि फेमिली, पृ० ८ ।

२- आर०एम० मेकलवर और पेज, सोसाइटी, पृ० २३८ ।

३- एम०एफ० निमकाफ, दि फेमिली, पृ० ८ ।

४- डनलप, सिविलाइज्ड लाइफ, दि प्रिन्सिपुल्स एण्ड अप्लीकेशन्स आफ सोशल साइकालाजी, पृ० १३६-१३७ ।

५- ऋग्वेद, १०।१९१।२

सं गच्छध्वं सं वदध्वं सं वो मनांसि जानताम् ।

देवा भागं यथा पूर्वे संजानाना उपासते ।।

६- अथर्ववेद ३।३०।६

समानी प्रपा सह वो न्न भाग: समाने न यज्ये सह वोयनज्मि-सम्यंचोग्निं सपर्यतारा नाभिमिवाभित: ।।

७- विष्णुपुराण, ३।८।३३

८- मनुस्मृति, ३।११६-१७ तथा ३।२१ तथा २।२३६-२४२ ।

९- कठोपनिषद्, ३।१४

१०- बृहस्पति, २५।६

११- अथर्ववेद, २।३०।१-३ ।

१२- ऋग्वेद, १।१६१।२

१३- यंग (Young) गोश्ल साइकालाजी, पृ० २७४ ।

१४- पृ०रा०, सम्पादक मोहन सिंह, उदयपुर प्रकाशन, समय३, छन्द ७ तथा समय ५, छन्द २-४ ।

१५- उपरिवत्, समय १, छन्द ४२-४७ तथा समय ५ छन्द २४ ।

१६- उपरिवत्, समय १, छन्द ४० ।

१७- उपरिवत्, समय ६१, छन्द १५६ ।

१८- उपरिवत्, समय १ छन्द ४५ ।

१९- उपरिवत्, समय २, छन्द ७ तथा समय ४, छन्द ३, समय ६१, छन्द १६८ तथा समय १, छन्द ३८ ।

२०- उपरिवत्, समय १, छन्द ४२ ।

२१- उपरिवत्, समय १ छन्द ४५ ।

२२- उपरिवत्, समय ६१, छन्द ८० ।

२३- पृ०रा०, सम्पादक डॉ० श्यामसुन्दरदास, काशी प्रकाशन, पृ०६५४, २०१५ छन्द [illegible] व २०२ ।

२४- उपरिवत्, पृ० ६५४, छन्द ४२-४५ ।

२५- परमाल रासो, सम्पादक, डॉ० श्यामसुन्दरदास, काशी प्रकाशन, खण्ड ६, छन्द ३६ ।

२६- पृ०रा०, सम्पादक डॉ० श्यामसुन्दरदास, काशी प्रकाशन, पृ०२०१५, छन्द २०२ ।

२७- उपरिवत्, पृ०७४, छन्द ३७५ ।

२८- उपरिवत्, पृ० ३४७, छन्द ७० तथा पृ० ३४७, छन्द ७१ ।

२९- उपरिवत्, पृ० ५६५, छन्द ४० तथा पृ० ६२४, छन्द ५७ तथा पृ०५६४ छन्द २७ तथा पृ०२६२, छन्द २२१ ।

३०- उपरिवत्, पृ० २१६३, व छन्द ३६७ ।

३१- पृथ्वीराज रासउ, सम्पादक, डॉ० माताप्रसाद गुप्त, साहित्य सदन, झांसी प्रकाशन, ५ : २६ : १ ।

३२- उपरिवत्, ६ : १२ : ३ ।

३३- पृ०रा०, सम्पादक, मोहन सिंह, उदयपुर प्रकाशन, समय ५ छन्द६२ ।

३४- उपरिवत्, समय १४, छन्द ६६ तथा समय ५८ छन्द ३७७-३७८ ।

३५- उपरिवत्, समय ३८, छन्द १७-१८ तथा समय ५८, छन्द २६६, ३००-३०५ ।

३६- उपरिवत्, समय ३८, छन्द ४-६ तथा समय ६१, छन्द ६०-७६ ।

३७- उपरिवत्, समय १, छन्द ४८ तथा समय ५८ छन्द ३६४ ।

३८- उपरिवत्, समय ५ छन्द १५ ।

३९- पृ०रा०, सम्पादक डॉ० श्यामसुन्दरदास काशी प्रकाशन,पृ०२१६६, छन्द ५५४-५५५ ।

४०- उपरिवत्, पृ० ३४०, छन्द ५६ ।

४१- उपरिवत्, पृ० २०६४, छन्द ४०६ ।

४२- उपरिवत्, पृ० २२६६ छन्द ३७६ ।

४३- पृ०रा०, सम्पादक, मोहन सिंह, उदयपुर प्रकाशन, भाग १,पृ०३३६, छन्द २१ ।

४४- परमाल रासो, सम्पादक, डॉ० श्यामसुन्दरदास, काशी प्रकाशन, खण्ड ११, छन्द १३१ ।

४५- पृ०रा०, सम्पादक काशी प्रकाशन, पृ० १३५४, छन्द ४६ ।

४६- उपरिवत्, पृ० २०१५, छन्द २०२ ।

४७- उपरिवत्, पृ० ६५४, छन्द ४२-४४ ।

४८- परमाल रासो, काशी प्रकाशन, खण्ड ६,छन्द ३६ ।

४९- पृ०रा०, उदयपुर प्रकाशन, भाग ३, पृ०६०७, छन्द ४८ ।

५०- पृ०रा०, काशी प्रकाशन, पृ० २०१५, छन्द २०२ ।

५१- पृ०रा०, उदयपुर प्रकाशन, भाग ४, पृ० ७६७, छन्द ४८३ ।

५२- पृ०रा०, काशी प्रकाशन, पृ० २०१२, छन्द १७६ ।

५३- पृ०रा०, का० प्र०, पृ० १७६१, छन्द १२५५ ।

५४- पृ०रा०, उ०प्र०, भाग ३, पृ० ५१७, छन्द २६ ।

५५- उपरिवत्, भाग ३, पृ० ५६२, छन्द ४६ ।

५६- प०रा०, का० प्र०, खण्ड ४, छन्द १४४ तथा खंड ४ छन्द १४६-४६ ।

५७- उपरिवत्, खं० २२, छन्द २१ ।

५८- पृ०रा०, का० प्र०, पृ० ७४, छन्द ३७५ ।

५९- उपरिवत्, पृ० १९६३, छन्द १७ ।

६०- उपरिवत्, पृ० १९६४, छन्द २१ ।

६१- उपरिवत्, पृ० १९६३, छन्द १८ ।

६२- उपरिवत्, पृ० १९६४, छन्द २० ।

६३- उपरिवत्, पृ० १९८५, छन्द १८८ ।

६४- उपरिवत्, पृ० ८३, छन्द ४११ तथा पृ० ८५, छन्द ४९१ ।

६५- उपरिवत्, पृ० ५९५, छन्द ४० तथा पृ० ९२४, छन्द ५७ ।

६६- उपरिवत्, पृ० ५९४, छन्द २७ ।

६७- उपरिवत्, पृ० १०९२, छन्द २२१ ।

६८- उपरिवत्, पृ० २१६०, छन्द ३५४ तथा पृ० २१ ६३ छन्द ३६६ तथा पृ० २१६१, छन्द ३५६ ।

६९- उपरिवत्, पृ० २११२, छन्द ४५ तथा पृ० २१६२ छन्द ३६२ ।

७०- उपरिवत्, पृ०२११२, छन्द ४५ तथा पृ०२१६२ छन्द ३६२ ।

७१- पृ०रा०, उ०प्र०, भाग ४, पृ०८५१ छन्द ६५५ ।

७२- पृ०रा०, का० प्र०, पृ० ७९६, छन्द २६५-२६६ ।

७३- उपरिवत्, पृ० १४५, छन्द ६९६ ।

७४- प०रा०, का०प्र०, खण्ड१, छन्द १२३ ।

७५- पृ०रा०, का० प्र०, पृ० २६६५, छन्द ५२६ ।

७६- उपरिवत्, पृ० २४३२, छन्द ३५४ ।

७७- पृ०रा०, उ०प्र०, भाग ३, पृ० ५४०, छन्द ३ ।

७८- पृ०रा०, का० प्र०, पृ०७१, छन्द ३४७ ।

७९- डॉ० राजबली पाण्डेय, हिन्दू संस्कार, पृ०१८ प्रकाशक चौखम्बा विद्या भवन, वाराणसी ।

८०- उपरिवत्, पृ० १८(विषय सूची)

८१- डॉ० वासुदेव उपाध्याय, दि सोशियो रिलिजस कण्डीशन आफ नार्थ इण्डिया, पृ० १४१, चौखम्बा संस्कृत सीरिज,वाराणसी।

८२- पृ०रा०, का० प्र०, पृ० १३५, छंद ६८६ ।

८३- उपरिवत्, पृ० १४६, छन्द ६६६ ।

८४- उपरिवत्, पृ० १४८, छन्द ७१३-७१४ ।

८५- उपरिवत्, पृ० १३८, छन्द ६६१ ।

८६- उपरिवत्, पृ० १३८, छन्द ६६१ ।

८७- उपरिवत्, पृ० १३७, छन्द ६८६ ।

८८- उपरिवत्, पृ० १४८ छन्द ११२ ।

८९- उपरिवत्, पृ० १४७, छन्द ७०५ तथा ७१० ।

९०- डॉ० राजबली पाण्डेय, हिन्दी साहित्य का बृहद इतिहास,भाग१, पृ० १२०, ना० प्र० सभा, प्रकाशन ।

९१- मनुस्मृति, ३।३३ ।

हत्वा छित्वा च भित्वा च क्रोशन्तीं रुदतीं गृहात् ।
प्रसह्य कन्या हरणं राक्षसो विधिरुच्यते ।

९२- डॉ० दशरथ शर्मा, दे० `अर्ली चौहान डाइनेस्टीज`,पृ०२५६ ।

९३- पृ०रा०,का० प्र०, पृ० १५६६, छन्द १३ तथा पृ० १५६६, छन्द १२-१४ ।

९४- उपरिवत्, पृ० ७६१-७६३-७८६ ।

९५- उपरिवत्, पृ० ६३५, छन्द ३४ ।

९६- उपरिवत्, पृ० ६३५, छन्द ३३ तथा पृ० ७७२ छन्द ७९ ।

९७- उपरिवत्, पृ० ६३५, छन्द ६५ ।

९८- उपरिवत्, पृ० १७५४, छन्द १२०२-१२०५ तथा पृ० ६३८, छन्द ४६-४८ तथा पृ० १७- ३४, छन्द १०५८ तथा पृ० १९४६, छन्द २४५८ आदि ।

९९- उपरिवत्, पृ० ९९८, छन्द २१ तथा २५ तथा पृ० १०१३, छन्द१९५।

१००- डॉ० राजबलीपाण्डेय, हिन्दी साहित्य का बृहत् इतिहास, भाग १ अध्याय ५, पृ० १३२, ना०प्र०सभा, प्रकाशन ।

१०१- पृ०रा०, का० प्र०, पृ० ३३५, छन्द २५-२६ ।

१०२- पृ०रा०, उदयपुर प्रकाशन, भाग १, पृ० ३६० छन्द १९ तथा प०रा०, का०प्र०, खण्ड २४, छन्द ८२-८४ ।

१०३- पृ०रा०, उ०प्र०, भाग १, पृ० २९३, छन्द ३ तथा प०रा०, काशी प्रका० खण्ड १३, छन्द १४ ।

१०४- प०रा०, का०प्र०, खण्ड २४, छन्द ८७ ।

१०५- उपरिवत्, खण्ड २४, छन्द ८७ ।

१०६- उपरिवत्, खण्ड १३, छन्द ३१-३३ ।

१०७- उपरिवत्, खण्ड १३, छन्द ३८-३९ तथा ४० ।

१०८- पृ०रा०, का० प्र०, पृ० ५५६, छन्द ९३ ।

१०९- उपरिवत्, पृ० ५५६, छन्द ९३ ।

११०- उपरिवत्, पृ० ५७२, छन्द ३६ ।

१११- प०रा०, का० प्र०, खण्ड १५, छन्द २३७ ।

११२- पृ०रा०, का०प्र०, पृ० ५४६, छन्द २२ ।

११३- उपरिवत्, पृ० ५४७, छन्द २५ तथा पृ० १०८७, छन्द १९६ ।

११४- प०रा०, का०प्र०, खण्ड १३, छन्द १०५, १०६ तथा खण्ड २४, छन्द ८६ ।

११५- पृ०रा०, का०प्र०, पृ० ६५४, छन्द ६३ ।

११६- उपरिवत्, पृ० ५६०, छन्द १२० ।

[illegible]

११७- उपरिवत्, पृ० ५४७, छन्द २४ ।

११८- प०रा०, का०प्र०, खण्ड १५, छन्द १४३ ।

११९- पृ०रा०, का०प्र०, पृ० ६४०, छन्द ६९ ।

१२०- उपरिवत्, पृ० ५५५, छन्द ८२ ।

१२१- उपरिवत्, पृ० ५५५, छन्द ८२ तथा पृ० २०८० छन्द २०० तथा पृ० १३५, छन्द ६८३ तथा पृ० ३६५, छन्द १७८ तथा पृ० १३४१, छन्द २७ ।

१२२- उपरिवत्, पृ० ५५५, छन्द ८२-८४ ।

१२३- प०रा०, का० प्र०, खण्ड १५, छन्द १६५ ।

१२४- पृ०रा०, का० प्र०, पृ० ५५५, छन्द ८६ ।

१२५- उपरिवत, पृ० ६६१, छन्द १५६ तथा प०रा०,का०प्र०, खण्ड १५, छन्द १८९ ।

१२६- पृ०रा०, का०प्र०, पृ० ५६१, छन्द १२८ तथा पृ० ५७५ छन्द १६ तथा पृ० १०२७, छन्द ७० ।

१२७- उपरिवत्, पृ० १०२६, छन्द ६८-८९ ।

१२८- उपरिवत्, पृ० १२६६, छन्द ५७ तथा पृ० १२६६,छन्द ५९ तथा ६२-६३ तथा पृ० १२२६,छन्द ६२ तथा पृ० १२६७, छन्द ६४,६५,६७,६८ तथा पृ० १२६८, छन्द ७६ से पृ० १२६९ छन्द ७९ तथा पृ० ५५६,छन्द ८८ तथा पृ० ५५७, छन्द १०० तथा पृ० ५५८, छन्द १०२ आदि तथा परमाल रासो, का०प्र०, खण्ड १५, छन्द १८९ ।

१२६- पृ०रा०, का०प्र०, पृ० ७२५, छन्द ३२४ ।

१३०- उपरिवत्, पृ० ७४, छन्द ३७१ ।

१३१- प०रा०, का०प्र०, पृ० ५४१ ।

१३२- उपरिवत्, खण्ड २६, छन्द ३१ ।

१३३- उपरिवत्, खण्ड २, छन्द ६६ तथा पृ०रा०,उ०प्र०, भाग ३,छन्द ८८ ।

१३४- प०रा०, का० प्र० ,खण्ड २, छन्द ६६ ।

१३५- पृ०रा०, उ०प्र०, भाग ३,छन्द ८८ ।

१३६- पृ०रा०, का० प्र० , पृ० ११४८, छन्द १२३ ।

१३७- उपरिवत् ।

१३८- उपरिवत्, पृ० ११४७, छन्द १२२ ।

१३९- पृ०रा०, उदयपुर प्र०,भाग ३, पृ० ४६१, छन्द ६५ ।

१४०- पृ०रा०, का०प्र०, पृ० २३७१, छन्द १६२२ ।

१४१- प०रा०, का०प्र०, खण्ड ६, छन्द ४२ ।

१४२- डॉ० सत्यकेतु विद्यालंकार, भारतीय संस्कृति और उसका इतिहास, पृ० ४३४ ।

१४३- पृ०रा०, उ०प्र०, भाग १, पृ० २६६, छन्द ७१ ।

१४४- पृ०रा०,का०प्र०, पृ० १७१,छन्द १६२३ तथा प०रा०, खण्ड ३७ छन्द ६६ ।

१४५- पृ०रा०, का०प्र०, पृ० ६७६, छन्द ३४ ।

१४६- उपरिवत्, पृ० ६७७, छन्द १६ तथा पृ० ६७६ छन्द ३५ ।

१४७- प०रा०, का० प्र०, खण्ड १० छन्द ३२४ ।

१४८- उपरिवत्, खण्ड १०, छन्द ७६१ ।

१४९- पृ०रा०, उ०प्र०, भाग ४, पृ० ८६६, छन्द ४ ।

१५०- उपरिवत्, भाग ४, पृ० ८६६, छन्द ४ ।

१५१- उपरिवत् ।

१५२- उपरिवत्,भाग ४, पृ० ८६८, छन्द १ ।

१५३- उपरिवत्, भाग ४, पृ० ८६६, छन्द ३ ।

१५४- पृ०रा० , का० प्र०, पृ० २०२१, छन्द ६० ।

१५५- पृ०रा०, उ०प्र०, भाग ४, पृ० ८६८, छन्द १ ।

१५६- पृ०रा०, का०प्र०, पृ० १५६२, छन्द ७८-७६ ।

१५७- उपरिवत्, पृ० १५६२, छन्द ६६ से १५६४,पृ० छन्द ६६ ।

१५८- उपरिवत्, पृ० ३२६, छन्द १ ।

१५९- उपरिवत्, पृ० ३२८, छन्द २ तथा पृ० ३२६,छन्द ६ ।

१६०- उपरिवत्, पृ० ६७१, छन्द ३ ।

१६१- उपरिवत्, पृ० ६७३, छन्द २१ ।

१६२- उपरिवत्, पृ० ६७३, छन्द १७ से पृ० ६७३ छन्द १८ तक ।

१६३- प०रा०, का० प्र०, खण्ड १, छन्द ३७ ।

१६४- पृ०रा०, का० प्र०, पृ० ३०६, छन्द ५८ ।

१६५- उपरिवत्, पृ० १६६६, छन्द ६८ ।

१६६- उपरिवत्, पृ० ४४६, छन्द २२ तथा प०रा०,का०प्र०, खण्ड ८,छन्द२१ ।

१६७- पृ०रा०, का० प्र०, पृ० ४४६, छन्द २२ ।

१६८- उपरिवत्, पृ० ६६७ ।

१६९- प०रा०, का०प्र०, खण्ड १०, छन्द ४५३ ।

१७०- उपरिवत्, खण्ड १३, छन्द ६८ ।

१७१- पृ०रा०, का० प्र०, पृ० ५६६, छन्द ७६ ।

१७२- प०रा०, का० प्र०, खण्ड १३, कुल छन्द ६८ तथा पृ०रा०,का०प्र०, पृ० २२०५, छन्द १२०३ तथा पृ० ३१६, छन्द १३४ तथा पृ० ६२२, छन्द ५३ आदि ।

१७३- प०रा०,काशी प्र०,खण्ड-१, छन्द १३० तथा खण्ड २,छन्द १६ तथा खण्ड १५, छन्द १२८ तथा पृ०रा० का०प्र०, पृ० २००६,छन्द १६४ ।

१७४- पृ०रा०, का० प्र०, पृ० १०६५, छन्द ५७ ।

१७५- उपरिवत्, पृ० १३५७, छन्द ६७ ।

१७६- उपरिवत्, पृ० ७२२, छन्द २६६ ।

१७७- उपरिवत्, पृ० २५५, छन्द ४६ तथा पृ० ७०४ छन्द ३०४-३०५ ।

१७८- प०रा०, का० प्र०, खण्ड ३७, छन्द ४१ ।

१७९- पृ०रा०, का०प्र०, पृ० ४२१, छन्द २०६ ।

१८०- प०रा०, का० प्र०, खण्ड १५, छन्द १२५ ।

१८१- पृ०रा०, उ०प्र०, भाग ३, पृ० ५८२, छन्द ५०० ।

१८२- उपरिवत् ।

१८३- पृ०रा०, का० प्र०, पृ० १९७४, छन्द ६२ ।

१८४- उपरिवत्, पृ० १६६१, छन्द ७५४-७६५ ।

१८५- प०रा०, का०प्र०, खण्ड २०, छन्द ७७-७८ ।

१८६- पृ०रा०, का० प्र०, पृ० २१३५, छन्द १९१ ।

१८७- प०रा०, का०प्र०, खण्ड १६, छन्द ३० ।

१८८- पृ०रा०, का०प्र०, पृ०२१३०, छन्द १६४ ।

१८९- उपरिवत्, पृ० ४५२, छन्द २८ ।

१९०- उपरिवत्, पृ० २२०७, छन्द ६१५ ।

१९१- प०रा०, का० प्र०, खण्ड १५, छन्द १२३ ।

-0-

पंचम अध्याय

-0-

आदिकालीन हिन्दी रासो काव्यों में वर्णित सामान्य जन-जीवन : वसति, भोजन-पेय, परिधान, आभूषण, शृंगार, मनोविनोद और वाहन

पंचम अध्याय --

आदिकालीन हिन्दी रासो काव्यों में वर्णित सामान्य जन-जीवन : बसति, भोजन-पेय, परिधान, आभूषण, शृंगार, मनोविनोद और वाहन

(विषय- विवरणिका)

भारतीय जन-जीवन की अनिवार्य आवश्यकताएं ; शृंगार-सज्जा, कलात्मक अभिव्यक्ति, क्रीड़ात्मक अभिरुचि,; पुरुषार्थ चतुष्टय ; आवासीय व्यवस्था ; भोजन-पेय, सामान्य एवं विशेष भोज्य पदार्थ, भोजन-विधि, भोजन-स्थल, भोजन- निर्माण, दैनिक भोजन एवं विशेष भोज, ओंकार मंत्र के साथ भोजनारम्भ ; भोजन करते समय पशु-पक्षी , बच्चों का भोजन, राजकुमारियों का भोजन, भोज्य-पदार्थ, भोजनोपरान्त कपूर मिश्रित पान, सुरापान से घृणा, निम्न-वर्ग में मदिरापान, सुगन्धित वस्तुएं, वस्त्र-विन्यास, आभूषण, शृंगार-सज्जा, पूजा-परिधान, सोलह शृंगार, निर्धन वर्ग के आभूषण, पुरुषवर्ग के आभूषण ; कलात्मक विनोद तथा मनोरंजन, शौर्य-प्रदर्शन- प्रतियोगिताएं, विद्या-वाद, वेश्या-नृत्य, नाटक-संगीत समारोह, पशु-पक्षीयुद्ध, बालकों के विविध खेल ; महिलाओं के विनोद ; यातायात, वाहन, सन्दर्भ-सरणि ।

--0--

पंचम अध्याय

-0-

आदिकालीन हिन्दी रासो काव्यों में प्रतिबिम्बित सामान्य जन-जीवन

'उद्बुध्यध्वं समनसः सखायः' की ऋग्वेद निहित वाणी[1]-- 'समान- मना होकर जागो' तथा 'उदानुषा स्वायुषोदस्थाम्' अर्थात्[2] 'हम सभी उत्तम और मंगलमय जीवन के लिए प्रयत्नशील हों' की यजुर्वेदोक्त विविध जिजीविषा अनुस्यूत करते हुए मानव-मन निरन्तर उत्कृष्ट जीवनयापन की ओर अभिमुख रहा है । प्रत्येक युग में सामाजिक जीवन, अनिवार्य आवश्यकताओं की पूर्ति के साथ शृंगार-सज्जा, मनोरंजन, कलात्मक अभिव्यक्ति, क्रीड़ात्मक अभिरुचि तथा पुरुषार्थ-चतुष्टय के लिए प्रयत्नशील रहा है । भारतवर्ष में सभ्य जीवन के उदयकाल से लेकर आलोच्यकाल तक सामाजिक जीवन के विविध पक्ष जीवनदर्शन की लगभग एकरूपिणी दिशा का ही द्योतन करते हैं । आवास, भोज्य-पदार्थ, परिधान, यातायात के साधन, शिक्षा, मनोरंजन तथा ग्राम्य एवं नागरीय समाज का वर्ग-वैषम्य विभिन्न कालखण्डों में एक ही धरातल पर रूपायित किया जा सकता है[3] ।

पृथ्वीराज रासो तथा परमाल रासो आदि से तत्कालीन आवासीय व्यवस्था पर प्रकाश पड़ता है । पृथ्वीराज रासो में आवास के लिए निवास,[4] धाम,[5] दुर्ग,[6] गृह,[7] घर,[8] मन्दिर,[9] दरबार,[10] गढ़,[11] सभा[12] आदि शब्दों का प्रयोग किया गया है । पृथ्वीराज रासो के अन्तर्गत पृथ्वीराज चौहान और कन्नौज में रहने वालों के सात खण्ड के महलों की चर्चा की गयी है[13] ।

चन्दवरदाई ने स्वर्ण-जटित किवाड़ों का उल्लेख किया है।[१६] पृथ्वीराज चौहान के प्रासाद को चारों ओर से बाग के द्वारा सुसज्जित दिखाया गया है।[१५] परमाल रासो में भी परमार्दि देव के उद्यान में विविध वृक्ष एवं लतायें प्रदर्शित की गया है।[१६] कई स्थल के महलों के लिए 'अटारी' संज्ञा का प्रयोग किया गया है[१७] -- उज्ज्वल अंग सुअंग अंग, राजकुमारि अटानि चढ़ि।

मन्दिरों में सोने के मण्डप रहते थे और चारों ओर चबूतरे बनाये जाते थे।[१८] नगरों के बाहर उद्यानों की व्यवस्था होती थी।[१६] राजभवनों में भी बाग रहते थे।[२०] पृथ्वीराज रासो में 'गाम' शब्द का प्रयोग ग्रामों के लिए किया गया है।[२१] नगरों में समृद्धि सूचक बड़े बाजार थे।[२२]

भोजन और पेय पदार्थों, तत्सम्बन्धी आचार तथा सामान्य और विशेष भोज्य पदार्थों की चर्चा उपकरणों सहित रासो काव्यों में उपलब्ध होती है। पांच प्रकार के आहारों -- भोज्य, भक्ष्य, चोष्य, लेह्य और पेय का सांस्कृतिक विकास के साथ वैविध्यपूर्ण उल्लेख कामसूत्र और महाभारत आदि में प्राप्त होता है।[२३] गीता में भी रसाले, स्निग्ध, स्थिर और मनोरम आहारों की व्याख्या की गई है।[२४] नित्य-प्रति नव्य भोजन सामग्री तैयार करने वाले रसोइयों को अधिक प्रश्रय मिलता था, इसका प्रमाण पृथ्वीराज रासो में नीम की पत्तियों से सब्जी बनाने वाले रसोइया के उल्लेख में मिलता है --
नव पल्लव नींब रू नाय धरी, करई गति काढ़ि सु दूरि करी।[२५]

पृथ्वीराज रासो में भोजन करने की प्रथा का भी उल्लेख हुआ है, जिसमें भोजन करने का स्थान गोमय से लीपा जाता था और उसे अलग-अलग चौकों में बांट दिया जाता था --

गो गोमय चौको । विचित्र चित्रे अति बावक ।
लोक धवल धर हरित । धरा सिगरी भरि पावक[२६] ।।

भोजन-निर्माण के समय किसी भी निम्नकोटि के व्यक्ति के द्वारा न देखे जाने का निर्देश संयोगिता देता है --

कोजहु बहु आचार सों दरसन लहै न नीच[२७] ।

संयोगिता अपने रसोइया को कई प्रकार की सामग्रियां मिलाकर इस प्रकार का भोजन बनाने की आज्ञा देता है कि खाने वालों के द्वारा उन पदार्थों का नाम तक न जाना जा सके --

करियो अनेक पकवान बानि, सक्कै न कोई जिन जाति जिन[२८] ।

परमालरासो में मुसलमानों के साथ भोजन न करने का आभास मिलता है --

मेवा बहु पकवान मवन्निय । सब ठकुराइस भोजन किन्नव ।
तुरकन काज पुलाव पकायव । सिविर सिविर सबके पहुंचायव[२९] ।

दिन प्रतिदिन सामान्यत: थालियों में भोजन किया जाता था, किन्तु विशेष अवसरों पर पत्तलों और दोनों का प्रयोग होता था --

नूत-नूत पल्लव परवारि, पत्रावलि मंडिय ।
धोय तोय बिन छिद्र, धरे दोना ढिंग ठंडिय[३०] ।।

भोजन करते समय गंगा की ओर मुंह किया जाता था, साथ ही `ओंकार मन्त्र` का पाठ करते हुए भोजन किया जाता था[३१] । पृथ्वीराज रासो में कुछ ऐसे पशु-पक्षियों का भोजन के समय पास में रखना उचित समझा जाता था, जो भोजन के सम्बन्ध में यह इंगित करते थे कि भोजन विषाक्त है अथवा नहीं, यदि भोजन विषाक्त होता था, तो हंस, मोर, क्रौंच, मृग, बन्दर, शुक, नेवला, कुक्कुट और

चकोर यह रहस्योद्घाटन विभिन्न क्रिया-कलापों से कर देते थे --

हंस होत गति भंग, मोर कटु सबद उचारै ।
रोवत क्रौंच कुरंग, सुकपि कंठल आहारै ।।
सुवा वमन करंत, जानि आगंम दिनाई ।
चकोर परस्पर हित रहित, कहत चंद पारष्ष लहि ।
तिहि काज आनि रष्षत इनहि,भूपत भोजन सा न महि ।[32]

सामान्यत: दिन-प्रतिदिन के भोजन में चन्दवरदाई ने बच्चों के लिए दूध,चावल,घी,शक्कर और मिष्ठान्न बताये हैं[33]। चन्द-वरदाई द्वारा राजकुमारियों के लिए गुंजरियां और रत्नबड़ा लाने का उल्लेख किया है --

पय सक्करो सुभरौ, एकठौ कनय राय मोयंसा
कर कंसा गुंजरीय, रत्नबरियं नैव जावंता ।[34]

विवाह आदि के अवसर पर विशेष भोजन सामग्री तैयार की जाती थी । पृथ्वीराज रासो में इच्छिनी के विवाह में दूध-घी तथा अन्य पकवान और फल, मांस तथा साग आदि परोसे गये थे[35]। पृथ्वीराज चौहान अपने दैनिक भोजन में दूध-घी,पानी,मांस,अचार, पन्ना-वरि तथा अन्य पकवानों का प्रयोग करते थे --

भोजन साल पधारि, संग प्रथीराज सुभट सब
घृत पक्व जल पक्व,पक्व पावक्क परुसि तब
दूध पक्व पक्वान्न, मंस रस भंति अमेयं ।
साक फलणि संधान, षट रस व्यंजन अनेयं ।
तिन पच्छ पन्नावरि स्वाद रुचि, अन्न जात पचि पियत हो ।[36]

परमालरासो में भी इसी प्रकार की भोजन सामग्री ब्रह्मा का टीका चढ़ते समय प्रस्तुत की गयी थी[37]।

निष्कर्षत: तत्कालीन भोजन सामग्री में विविध पक्वान, मिठाइयाँ, फल, खीर, भात और व्यंजन आदि परोसे जाते थे।[38]

पृथ्वीराज रासो के अनुसार तत्कालीन समाज में उड़द, मुंग, चना, मसूर आदि की दालें, हींग, हल्दी और केसर सहित बनाई जाती थीं --

मसुरी मुंग माष चनाविधियौ, दधि धोय सुधारिय दारि सुवौ ।
रसरा मटहे पुट केसर कौ, कछु आनन हो सनमे रुक कौ ।[39]

तरह-तरह के सागों का वर्णन भी पृथ्वीराज रासो में प्राप्त होता है, जिनमें करेला, मुरेला, सेम, बैगन, सुरन, सरसों, कचनार की कली, सोआ, बथुआ, मेथी, नीम की कोंपलें, ककोड़ा आदि का उल्लेख मिलता है[40]। कई प्रकार के जीव-जन्तुओं का मांस तैयार किया जाता था। रावल समर विक्रम को दिल्ली में बत्तीस प्रकार का मांस खिलाया गया था[41]। चन्दबरदाई ने अपने सामन्तों के साथ पृथ्वीराज चौहान को मांस-भक्षण करते हुए दिखाया है[42]। भोजन करते समय भोजन समाप्ति के लगभग पछावरि परोसी जाती थी --

जेंइ अधाने जठर पर, जलपिय फेरत पानि ।
तुच्छ छुधा पाके रही, तब लई पछावरि बानि ।[43]

पछावरि के अन्तर्गत इस प्रकार की सामग्री रहती थी, जैसे -- कढ़ी, मट्ठा, दही, आम, नींबू, अनार, गाय का दूध आदि जिससे कि भोजन जल्दी पच जाता था --

तिन पच्छ पछावरि स्वाद शुचि, अन्न जात पचि पियत ही[44] ।

++ ++ ++

पनंबहु जंबुअ अंबुअ येलि, निबोरिय दारिय दाब सुटेलि ।
गऊ पय औटिय धार उफांटि, धरे भरि भाजन भिन्निय बांटि ।
मिली यधि जारक बारिक बुक, सवारिय फारि भये भष भुक ।[45]

पान खाने की प्रथा भोजन के उपरान्त प्रचलित थी । कपूर आदि के द्वारा सुगन्धित किया हुआ ताम्बूल भोजन कर चुकने के उपरान्त अनिवार्य रूप में दिया जाता था, इसका उल्लेख पृथ्वीराज रासो और परमाल रासो के अन्तर्गत है --

दइ मुषवास कपूर सुभाइ । मंडे अप अप्प मिलावन जाइ ।[४६]

++ ++ ++

तहां तपतोदक हथ्थ धुवाइ । दये करपान नवारि बुलाइ ।[४७]

हिन्दुओं ही की तरह मुसलमानों में भी पान खाने की प्रथा चन्दवरदाई ने निदर्शित की है ।[४८] पृथ्वीराज रासो के अन्तर्गत मुहम्मद गोरी अपनी माँ के अपमान का समाचार प्राप्त कर पान खाना छोड़ देता है ।[४६]

यद्यपि यह काल युद्ध और प्रेम की अभिव्यक्तियों से परिपूर्ण है । रमणी और वारूणी का साथ सर्वत्र प्रसिद्ध भी है, तथापि पृथ्वीराज चौहान, जयचंद और परमाल आदि राजागण रासो साहित्य में सुरापान करते हुए दिखाई नहीं पड़ते । यहां तक कि महाराज परमाल को जब किसी ने धोखा देकर सुरा का पान करा दिया, तब वह क्रोधित हो गये ।[५०] अन्यत्र भी इस प्रकार के विवरण उपलब्ध होते हैं, जिनसे यह ज्ञात होता है कि तत्कालीन राजपुत काल में राजपूतों में शराब पीने की प्रथा अधिक नहीं थी ।[५१]

पृथ्वीराज रासो में यह उल्लेख मिलता है कि निम्नवर्ग मदिरापान करता था । कुलाल को मदिरा का घड़ा लिए हुए पृथ्वीराज रासो में दिखाया गया है ।[५२] चन्दवरदाई के द्वारा रणक्षेत्र की ओर सैनिक-प्रयाण के पूर्व अफीम खाने का विवरण मिलता है--

जिहि मुख कर कर्पूर सुवर, तंबोल प्रगासिय
जिहि मुख म्रिगमदवद, सिद्ध किश्नागर वासिय[५३]

पृथ्वीराज रासो में तो म्लेच्छ के मर्वभक्षी होने का संकेत मिलता है--

मेछ सत्वं भषणो[५४]। सुगन्धित वस्तुओं में गज-मद और अगर तथा धूप का उल्लेख किया गया है[५५]। आलोच्यकाल में पान का प्रचलन इतना अधिक है कि चाण्डाल के द्वारा पान की पीक और उगाल को फेंकने से कीचड़ हो जाता है[५६]।

सांस्कृतिक प्रगति के विविध सोपान वस्त्र-विन्यास और आभूषण तथा शृंगार-सज्जा के माध्यम से प्रकट होते रहे हैं। पुरुष वर्ग एवं महिलावर्ग के परिधान प्रत्येक काल और समाज में विविधमुखी रहे हैं। विवेच्ययुग में भी रासो काव्यों के अन्तर्गत अनेक प्रकार के वस्त्रों का उल्लेख प्राप्त होता है। पुरुष वर्ग के परिधान पृथ्वीराज रासो के अन्तर्गत अवसरानुकूल पृथक्-पृथक् थे। युद्धकाल में कवच[५७], शिरस्त्राण[५८], बख्तर[५९], आदि का प्रयोग किया जाता था। विवाह के अवसर पर पहने जाने वाले वस्त्रों का उल्लेख चन्द बरदाई ने किया है[६०]। पूजा के समय धोती पहनने का उल्लेख कवि ने किया है[६१]। कछना और पगड़ी का प्रचलन भी रासो-काल में था[६२]। सामान्य जन लंगोट बांधते थे[६३]। चन्द बरदाई के द्वारा पृथ्वीराज चौहान की पगड़ी का का चित्रण किया गया है --

पाघ विराजित सीस पर, जरकस जोति मिहाय
मनो मेर के सिखर पर, रह्यौ अहप्पति आय।[६४]

परमाल रासो में पगड़ी पर दीनार भिलमिलाते चित्रित किये गये हैं[६५]। महिला वर्ग के आभूषणों का ही चित्रण अधिक प्राप्त होता है, किन्तु यत्किंचित उनके वस्त्रों के सम्बन्ध में भी उल्लेख

मिल जाता है । नीले वस्त्रों का प्रयोग महिलायें करती थीं[66] । महिलायें कंचुकी और लंहगा भी पहनती थीं[67] । नारियां सती होने के समय सोलह शृंगार करती थीं और अन्य प्रसाधनों के साथ ही वस्त्रों का प्रयोग करती थीं[68] । परमाल रासो के अन्तर्गत रूमाल का प्रयोग बताया गया है[69] । चन्दवरदाई के द्वारा पलंगपोश और तोशक का प्रयोग उल्लिखित है[70] ।

विविध परिधानों के साथ ही नारियां और पुरुष दोनों ही विविध आभूषण धारण करते थे । चन्दवरदाई के अनुसार महिलायें इतने अधिक आभूषणों से पूर्ण रहती थीं कि उनको कुछ आभूषणों के खो जाने का भी ध्यान नहीं रहता था[71] । पृथ्वीराज रासो में इंछिनी तथा प्रिथा कुंअरि के आभूषणों का चित्रण उल्लेख्य है[72] --

सब षट दुन अभुषन बाल ।
मनो रति माल बिसालति लाल ।।

++ ++ ++

सजेषट दुन अभुषन बाल, मनो करि कांम करो रति माल ।

सामान्यतः शरीर के अंग-प्रत्यंग पर आभूषण धारण करने की प्रथा थी, जिसमें मुख्यतः सिर, मस्तक, नाक, कान, गर्दन, कमर, भुजायें, कलाई और अंगुलियों के आभूषण पृथक्-पृथक् थे[73] । पुत्री-विवाह के अवसर पर आभूषण दिये जाते थे[74] । यह आभूषण मोतियों से मढ़े रहते थे । चन्दवरदाई के अनुसार सिर का प्रमुख आभूषण शीशफूल था --

सिर महि सीस फूलह मिटि सुभासे ।
किय चमन बढ़ बुर गिरि प्रकास[75] ।

महिलायें अपने सिर के बाल दो भागों में विभाजित करती थीं और अपनी मांग को मोतियों से सजाती थीं --

मुकेस मुत्ति संजुरे । ससी सराह दो लरे ।[76]

कवि चन्दबरदाई ने इन्द्रावती और हंसावती के मस्तक पर तिलक लगाने का उल्लेख किया है।[77] कवि ने तिलक देखकर 'पान' का लज्जाभिभूत होना लिखा है।[78] चन्द ने ही बेंदी और टिकुली के प्रयोग का भी चित्रण किया है।[79] कानों में कुण्डल और ताटंक धारण करने की प्रथा का उल्लेख मिलता है।[80] इन्द्रावती, शशिव्रता और संयोगिता कुण्डल पहनती थीं।[81] नाक में नकमोती पहने हुए रुक्मिणी, इन्द्रावती और शशिव्रता को चन्दबरदाई ने दिखाया है।[82] गले में मुक्ताहार और 'गलपोति' तथा विद्रुम-माला पहनने का चन्द ने वर्णन किया है।[83] कमर में संयोगिता मेखला और क्षुद्र-घंटिका नामक आभूषण पहनती थी।[84] भुजाओं पर बाजुबन्द पहने जाते थे।[85] कलाइयों में कंगन, चूड़ी, पहुंची और वलय धारण करने का उल्लेख चन्द द्वारा किया गया है।[86] हाथों की उंगलियों में अंगूठियां पहनी जाती थीं।[87] चन्दबरदाई के द्वारा पैरों में तोरड, बिछिया, घुंघुर, जेहरि, झांझरि और अनौट आदि आभूषणों का प्रयोग बताया गया है।[88]

पृथ्वीराज रासो में ही यह उल्लेख प्राप्त होता है कि निर्धन वर्ग की महिलायें सत-फल के फलों के आभूषण बनाकर धारण करती थीं --

सतसने आवासं महिलाने मह सद नुपरया ।
सतफल बज्जनु पयसा । पव्वरियं नैव बालंति ।[89]

आलोच्यकालीन समाज में पुरुषों के द्वारा भी आभूषण धारण करने की प्रथा का उल्लेख चन्दबरदाई ने किया है --[90]

बिन आभुन नर नारि सब । बिना तेज ग्रह भुष ।

वीरों का आभूषण तूणीर बताया गया है[९१]।
चन्द के द्वारा 'स्वाति-सुत' नामक कर्णाभूषण पुरुषों के लिए बताया गया है --

श्रवन विराजत स्वाति सुत । करत न बनै बखान[९२]।

परमाल रासो के अन्तर्गत कानों में कुण्डल पहनने का चित्रण मिलता है[९३]। परमाल रासो में ही आल्हा और ऊदल के लिए मुक्तामाला तथा कड़ा भेजा जाता है[९४]। मल्हना आल्हा-ऊदल को सोने के कड़े पहनाती थी[९५]। ऊदल के द्वारा सैनिकों के हाथों में कड़े पहनाने का आश्वासन दिया जाता था[९६]। पृथ्वीराज रासो और परमाल रासो में गले में मुक्तामाला पहनने की चर्चा की गई है[९७]। बच्चों के गले में कठुला पहनाने की प्रथा थी[९८]। चन्दबरदाई ने वीरों के एक पैर में स्वर्ण-शृंखला पहनने का उल्लेख किया है और इसे 'पवंग' तथा 'सांकर' की संज्ञा दी है --

फुनि कन्हा प्रथिराज नृप, याव पवंग परट्ठि ।
लेइ नहां मन संक मल, निट्ठ चढाइय छट्टि[९९]।

++ ++ ++

संकरह हेम तोलहत्रिसन्त । निय पाय कट्टि किय पार दंत[१००]।

वस्त्र और आभूषणों की ही तरह शृंगार के प्रसाधन पुरुष और महिला वर्ग के सर्वथा अलग-अलग थे । मानव-मन निसर्गत: शृंगाराभिमुख रहा है । प्राचीन भारत में सोलह शृंगारों का उल्लेख अनेक स्थलों पर हुआ है[१०१]। चन्दबरदाई ने नारियों और पुरुषों दोनों के ही शृंगार-प्रसाधनों की चर्चा करते हुए इन्द्रावती, शशिव्रता, संयोगिता, प्रियाबाई और दासियों को भी सोलहशृंगारयुक्त निरूपित किया है[१०२] --

सुवर्न क्षुद्र घंटिकादि । षोडसं बखानयं ।

\+ + +

सिंगार सोडाषं करे । सुहस्त दर्पनं धरे ।

\+ + +

षट दुन बवग्गुन में बरनं । सिनगार अभुषन एक छनं ।

\+ + +

सुबार बारु सो रसं । सिंगार मंडि षोडसं ।

उल्लेखनीय यह है कि महिलाओं के सोलह शृंगारों में जो कि बाहर से किये जाते थे, के अतिरिक्त चन्दबरदाई ने संयोगिता के प्रकृति-प्रदत्त शारीरिक सोलह शृंगारों का चित्रण भी किया है --

किसल थुल सित असित । थान बव एक-एक प्रति
पानि पाइ कटि कमल । सथल रंजे सुदाम अति
कुच मंडल भुज मूल नितंबजंघा गुरु अन्तं, करज हास
गोक्रान्त मांग उज्जल साउतं, कुच अग्र
कच्छ ब्रिग मद्धितिलं, स्यामा अंग सव्वं गवन ।
षोडस सिंगार सारुव सजि । मांय रंज संजोगित्त ।[१०३]

नारियों के सोलह शृंगारों में -- उबटन, स्नान, सुगन्धि, वेणी, मांग, काजल, भौंह, बिन्दी, तिल, चित्र, मेंहदी, महावर, पुष्पमाल, सुन्दर वस्त्र तथा विविध आभूषण परिगणित किये जाते थे । चन्दबरदाई ने शशि व्रता और इच्छिनी को अपनी दासियों के द्वारा उबटन कराते हुए चित्रित किया है --[१०४]

बिन बस्तर अंग सुरंग रसी । सुहले अनल्नाष मदन कसी
लव लोमह लोह उबट्टन कों । कि बस्यो मनु कांमसुपट्टन को ।

स्नान क्रिया को भी सोलह शृंगारों में स्थान दिया गया है, इसलिए कि इसके द्वारा शरीर के अंग-प्रत्यंग निखरते हैं। हंसावती, इन्द्रावती और संयोगिता अपनी शृंगार-सज्जा के पूर्व स्नान करती थीं।[१०५] इच्छिनी के द्वारा उबटन के उपरान्त स्नान करना लिखा गया है।[१०६]

बीसलदेव रासो में रानियां शृंगार हेतु सुगन्धित द्रव्यों का प्रयोग करते हुए दिखायी गई हैं।[१०७] चन्दवरदाई ने इच्छिनी को अनेक प्रकार की धूपों से सुवासित करना लिखा है।[१०८] संयोगिता अपने शरीर पर अनेक सुगन्धियां लगाती है।[१०९] इन्द्रावती चन्दन का प्रयोग करती है।[११०] केश-प्रसाधन के विविध रूपों का चित्रण चन्दवरदाई द्वारा किया गया है। संयोगिता और शशिव्रता अपने केशों को सुवासित तैल-प्रयोग द्वारा सजाती है।[१११] संयोगिता अपने बालों को धूपों के सुगन्धित धुएँ से सुखाती है।[११२] चन्दवरदाई ने इच्छिनी को चेहरे पर बालों की लट बिखराये हुए दिखाया है।[११३] पृथ्वीराज रासो में ही शशिव्रता को तीन वेणियां बांधे हुए दिखाया गया है--

अनेक पुष्प आति ग्रंथि। भासिता त्रिवेणिडियं।
मनो सनाग पुष्प जाति। तीन पंथि मंडियं।[११४]

मांग निकालने का उल्लेख चन्दवरदाई ने किया है।[११५] नारियां अपनी मांगों में मोतियों और सिन्दूर का प्रयोग करती हुई चन्दवरदाई ने दिखाई हैं।[११६] चन्दवरदाई के द्वारा शृंगार-प्रसाधन में काजल का प्रयोग इन्द्रावती, संयोगिता, शशिव्रता और इच्छिनी के द्वारा प्रदर्शित किया है।[११७] महिलायें अपनी आँखों को काले रंग का तथा तिरछा बनाती थीं। संयोगिता काजल की स्याही से अपनी आँखों का शृंगार करती थी--

रचे जल कज्जल रेष सुमेष। मुखं मय काम जरे जनु रेष।[११८]

स्त्रियां अपने मस्तक पर शीशा हाथ में लेकर काजल और केशर के तिलक तथा बिन्दी लगाती थीं[११९]--

तिलकं द्रप्पनं करी । श्रवन्न मंडनं धरी ।

++ ++ ++

तिलक्क सभाल रच रचि रेष । मनो भय गेह दुवारिन देष ।

घनं भुअ इअ तिलक्कस रानि । जिते घर अद्धर प्रग्ग सुतानि ।

आलोच्यकाल में नारियां अपनी ठोढ़ी पर तिल बनाकर शोभा बढ़ाती थीं । संयोगिता सोलह शृंगारों में एक शृंगार तिल बनाकर करती दिखायी गई है --

चिबुक्कह बिन्द असेत सुवानि, प्रसारित कंज अली सिसु ठानि ।[120]

चन्दवरदाई के दारा संयोगिता को कपोल-चित्र बनाते हुए चित्रित किया गया है । यह चित्र-कर्म कस्तूरी और घनसार के दारा किया जाता था --

कुंडली मंडि बंदन सु बंध, कस्तूर ढिगह घनसार बिन्द ।[121]

चन्दवरदाई के दारा हाथों और नाखूनों को मेंहदी के दारा रचा जाना इच्छिनी-प्रसंग में चित्रित किया है --

दर्पन बल नष जोति । सुरंग मिहदी रुचि रुच्छिय ।[122]

महिलाएं अपनी एड़ियां रंगती थीं और इसके लिए जावक, महावर आदि का प्रयोग किया जाता था ।[123]

चन्दवरदाई ने इच्छिनी की जावक दारा अपनी एड़ियां रंगने का चित्रण किया है --

एड़ी ईंगुर रंग । उपम औपियै सु संचिय ।

सौतिन सकल सुहाग । भाग जावक तल वंचिय ।[124]

प्राचीनकाल से ही फूलों के दारा शृंगार-सज्जा करना प्रचलित रहा है, विवेच्यकाल में संयोगिता और शशिव्रता अपने बालों में फूल गूंथ कर शृंगार करती हैं[125] --

अनेक पुष्प बोधि ग्रन्थि । मालितान्त्रिबंधियं ।

+ + +

वर रचिय केलविधि सुमन पंति । लिब धरे जमन जल गंग कंति ।

संयोगिता के द्वारा पुष्पमाल पहनने का उल्लेख चन्दवरदाई ने किया है --

कबरी कुसुमं बिसरत्तनयं । श्रुति कुंडल लाल कुराजनयं [१२६] ।

पान खाने की प्रथा शृंगार-सज्जा के अन्तर्गत पृथ्वीराजरासो में उल्लिखित है । संयोगिता तथा इच्छिनी को पान खाते हुए चन्दवरदाई ने दिखाया है [१२७] । तत्कालीन शृंगार प्रसाधनों में सुन्दर आभूषण धारण करना और लाल नीले वस्त्र पहनना शृंगारिक कार्य-कलापों में आकलित किये गये हैं [१२८] ।

पुरुष वर्ग में भी स्नान, सुगन्धि-लेपन, दातुन और अंग-प्रत्यंग का मलवाना प्रचलित था । गंगाजल के द्वारा स्नान करते हुए पृथ्वीराज चौहान को चन्दवरदाई ने दिखाया है--

करि सनानगंगोदकह, दिय सु गाइ दस दान [१२९] ।

धीर-पुण्डीर प्रथमतः जल-स्नान करता है और तदुपरान्त गंगाजल का प्रयोग करता है --

सहस कलस भर नीर । इक्क बिय कलस गंगाजल ।

करि सनान पावन्नि । कीय पंच गौ महाबल [१३०] ।।

अंग-प्रत्यंग का मर्दन मर्दों के द्वारा कराने की प्रथा परमाल रासो तथा पृथ्वीराज रासो में अनेक स्थलों पर चित्रित की गई है । चन्दवरदायी के अनुसार सुन्दर और सुगन्धित तेल के द्वारा शरीर को मलवाने से शारीरिक वृद्धि बेल की भांति होती है --

करि पावन पवित्र वर, मोहन सुरभि सु तेल ।
मर्दनीक मर्दन करै, बढ़ै धात तन बेल ।[131]

परमाल रासो में सैनिक तथा आल्हा-ऊदल अपने शरीरों पर मालिश कराते हुए दिखाये गये हैं।[132] पृथ्वीराज चौहान के लिये नव-युवतियों के द्वारा अंग-मर्दन करना चन्दबरदाई द्वारा निदर्शित किया गया है --

सुनि मरदन को हुकम । होत मरदनो बोलिलिय
बय किसोर थन थोर । कछुक अक्खोर समानप्रिय
तिन नेह देह मलि देह सुख । बरषि नेह सिंगार रस[133]

सुगन्धित द्रव्यों में --कपूर, कुमकुम, केसर, कस्तूरी और जवादि का प्रयोग पृथ्वीराज चौहान करता था।[134] पृथ्वीराज रासो में दातुन करना उल्लिखित हुआ है --

करि दांतौन सनान । ध्यान गोरष को ध्यायौ ।[135]

प्राचीन भारत के कलात्मक विनोद और मनोरंजन के साधनों की विवरणिकाएं -- ललित विस्तर, कामसूत्र, शुक्रनीतिसार और प्रबन्धकोशादि में दी गई हैं।[136] रासो-काव्यों में भी विविध मनोरंजन -विधियों का चित्रण हुआ है । मनोरंजन के माध्यम अधिकांशत: शौर्यप्रदर्शनपूर्ण थे, जिनमें अनेक प्रतियोगिताएं आयोजित की जाती थीं । काव्य-चर्चा होती थी । नाटक और संगीत के समारोह होते थे । पशु-पक्षियों को आपस में लड़ाया जाता था और इसके साथ ही अनेकविध क्रीड़ाओं का प्रचलन भी था ।[137]

पृथ्वीराज रासो में क्षत्रियों का सिंहों और हाथियों से वीरतापूर्ण युद्धों का विवरण मिलता है ।

चन्दवरदाई ने जैतकुमार,[१३८] रैनसी[१३९] और कन्ह चौहान[१४०] के द्वारा द्वन्द्व-युद्ध में सिंहों को पछाड़ना और उनको मार डालना चित्रित किया है । लंघरीराय के साथ सिंह-युद्ध का चित्रण कवि चन्द ने दर्पपूर्ण भाव से किया है । शिकार के लिए पृथ्वीराज चौहान द्वारा हांका लगवाते ही एक सिंह ने दहाड़ कर लंघराय पर आक्रमण किया और तब दोनों में तुमुल युद्ध हुआ --

कंपि स्वामि विहुड्डरिय,लोह संजुरि नग मुक्यौ ।
लोहा लंगरराइ,बीर अवसान न चुक्यौ ।
स्वामि सथ्थ पर बथ्थ, संह घरबर उच्चारे ।
रुहिर अंग फंफरिय, सिंघ पारिय अक्कारे ।[१४१]

अन्ततोगत्वा लंघरीराय ने उस सिंह का उदर विदीर्ण कर दिया ।[१४२] पृथ्वीराज चौहान अत्यधिक प्रसन्न हुआ और उसे अनेक पुरस्कार प्रदान करने का वचन दिया --

भौ प्रसन्न प्रथिराज,बोल तुल्लयौ मुलंगरिय ।
इतौ देहुं प्रचण्ड, पंचजो मद्दि मोंहि जिय ।[१४३]

चन्दवरदाई ने ऐसे वीरों के चित्र प्रस्तुत किए हैं, जो सात मन की शिला को एक ही हाथ से उठा लेते थे[१४४] । मुगदर के द्वारा दर्शकों का मनोरंजन करने की प्रथा भी प्रचलित था । शंखध्वनि नामक वीर को जयचन्द के दरबार में मुगदर घुमाते हुए चित्रित किया गया है[१४५] । मनोरंजन के साधनों में शक्ति और सामर्थ्य की परीक्षा भी की जाती थी । लोहे के खम्भे का भेदना प्रमुख क्रिया-कलाप था । पृथ्वीराज चौहान अपने सामन्तों का आह्वान करते हैं कि वह तीन मन लोहे के द्वारा निर्मित खम्भे का भेदन करें --

विहंसि कह्यौ चहुआन सुर सह सेन बुलायौ ।
जैत खंभ रोपयौ लोह मन तोस मिलायौ ।
भयौ राय आयेस कुंवर सब विंकनौ भेलहु ।
सैंथि तीर तरवार । सेना सैरवर कर मेलहु ।[१४६]

महाराज पृथ्वीराज के आह्वान पर अनेक वीर खम्भे का भेदन करने के लिये प्रहार करते हैं । किन्तु उन्हें सफलता नहीं मिलती । पृथ्वीराज चौहान स्वत: अपनी सांग से खम्भे को भेदने का प्रयास करते हैं, किन्तु उनकी भी सांग उसी खम्भे में फंसी रह जाती है । अन्त में धीर-पुण्डीर सांग और स्तम्भ दोनों उखाड़ देता है और पृथ्वीराज के द्वारा पांच हजार गांवों की जागीर प्राप्त करता है ।[१४७] पशु-पक्षियों के माध्यम से मनोरंजन की प्रथा तत्कालीन समाज में अत्यधिक प्रचलित थी, जिसमें हाथी-घोड़ों, मेष-महिष, हिरण और बकरों के तुमुल युद्ध प्रसिद्ध थे । अनेक प्रकार के पक्षी-- तीतर, लवा, आदि लड़ाये जाते थे । पृथ्वीराज-रासो के अन्तर्गत हस्ति-युद्ध पृथ्वीराज चौहान के मनोरंजन हेतु कराये जाने का चित्रण प्राप्त होता है और हाथी लड़ाने की विधि का भी वैविध्यपूर्ण चित्र मिलता है --[१४८]

जंजीर खोलि लंगर वजिय, अंधारी सिर पर डुलिय ।

+ + +

ठोकि कंध माहात, पिट्ठि मोड्य पच्चारिय

+ + +

उसरि उसरि मुंह करहिं, देत फिरवी उड़ि अन्तह ।
परहि कि प्रव्वत घाइ, प्रबल बड्ढे बलमंतह ।

काव्य एवं कला सम्बन्धी मनोरंजक क्रियायें--
'काव्यशास्त्र विनोदेन कालो गच्छति धीमताम्' के अनुसार तत्कालीन रासो काव्यों में उपलब्ध होती हैं।

पृथ्वीराज रासो के अन्तर्गत इसे विद्या-वाद की संज्ञा दी गयी है[१४६]। दुर्गा केदार और चन्दबरदायी का काव्य-कलापूर्ण आमना-सामना पृथ्वीराज रासो में निदर्शित है[१५०]। भोला भीम के मन्त्री अमर--सेवरा और चन्दबरदाई का भी इसी प्रकार का विद्या-वाद दिखाया गया है[१५१]। महाराज जयचन्द और चन्दबरदाई की श्लेषपूर्ण व्यंग्यात्मक काव्योक्तियां भी तत्कालीन मनोविनोद का परिपार्श्व प्रकट करती हैं--

मुष दरिद्र अरु तुच्छ तन, जंगल राव सुहद।
बन उजार पसु-तन-चरन, क्यों दुब्बरो वरद[१५२]।।

आलोच्यकाल में मनोरंजन के लिए रमणीबारुणी का पर्याप्त प्रयोग हुआ है। वेश्या, नृत्य और संगीत ही नहीं-- काम-पिपासा के प्रशमन की केन्द्र बनी थी। वेश्याओं के नगरों में पृथक् मुहल्ले बसे हुए थे। इनको रंगी, गणिका, पातुर, विश्वावेडिनी आदि संज्ञायें दी गयी थीं। यह रमणियां सर्वांग सुन्दरी तथा बत्तीस लक्षण-युक्त रहती थीं[१५३]। चित्र रेखा और करनाटी-- दोनों ही अपने-अपने स्वामियों, मुहम्मद गोरी और पृथ्वीराज चौहान के रनिवासों की शोभा हैं --

महिलासु मुक्कि सब वस्सि मय, महिला महिल सु मरि बसि[१५४]।

करनाटी नामक वेश्या को सर्वकला-प्रवीण बनाने के लिए पृथ्वीराज चौहान ने 'केल्हन' नामक गुरु को नियुक्त किया था[१५५]।

पृथ्वीराज चौहान मुहम्मद गोरी के यहां बन्दी है,किन्तु उसे वहां भी पातुरों की कमी खटकती है--

नहीं पातुरं बातुरं नृत्यकारी । नहीं ताल संगीत आलापकारी[१५६]

विशाल नृत्य-गृहों का उल्लेख पृथ्वीराज रासो में चन्द ने किया है।[१५७] महाराज जयचन्द के द्वारा चन्द को नाटक,नाच-गानादि के लिए निमंत्रण दिया जाता है।[१५८] इस निमंत्रण में राजाओं की गणिका-प्रीति से क्षुब्ध, चन्द का कथन उल्लेख्य है --

जाम एक छिनदान घट सतमि सच निवार ।

कहु कामिनि सुष रति समर, त्रिपनिय मीह निवार ।[१५९]

वीर पुण्डीर चित्रसारी में ही वेश्यानृत्य लीन रहता है।[१६०]

पृथ्वीराज अपने दरबार में ही पातुरों का नृत्य निरखते हैं।[१६१] राज्याभिषेक के समय भी नृत्यगान होता है।[१६२] साधारण जनता भी वेश्याओं के नृत्य द्वारा मनोरंजन करती थी।[१६३] चन्दबरदाई ने वेश्या-प्रेमियों पर क्षोभ व्यक्त करते हुए मार्मिक व्यंग्य किया है --

सुकलं सुकल मृदंग तल्ल जघनं, रागं कला कोकनं ।

कंठी कंठ सुभास ने सम चितं, काम कला पोषनं ।

हरमी रंभकिता गुनं हरि हरो, सुरमीय पवनं पता ।

एवं सुकलह काम कंम गच्छिता, जय राज रात्रं गता ।[१६४]

परमाल रासो और पृथ्वीराज रासो आदि में नटों के द्वारा नाच-गान तथा अन्य अनेक प्रकार के खेलों का उल्लेख कई स्थलों पर प्राप्त होता है। यह नट सामान्य जनवर्ग का मनोरंजन करते थे। पृथ्वीराज के दरबार में देवगिरि के राजा का नट आता है।[१६५] यह

नट बन्दर नचाकर ,उछल-कूद करके तथा विविध नाटकों का आयोजन करते हुए मनोरंजन-कार्य सम्पन्न करते थे[१६६] ।

मनोरंजन के लिए 'मगर का खेल' तत्कालीन समाज में प्रचलित था । पृथ्वीराज रासो के अन्तर्गत कनवज्ज समय में मगर-विद्या का उल्लेख प्राप्त होता है--

कहर मगर जिय खेल । ठेल खेलन सम ठिल्लहि[१६७] ।

राजाओं के दरबारों में विविध कथाएं सुनाकर मनोरंजन करने की प्रथा थी । सोते समय भी अनेक कथाएं मां अपने बच्चों को सुनाती थी । पृथ्वीराज का 'कत्थक' उनके सोने के समय कहानी सुनाता है --

महल निसा दिन मुदित बिधु, उडपति तेज विराज ।
कथक तथ्थ कथ्थहि कथा, सुक्ख सयं न प्रथिराज[१६८] ।

पृथ्वीराज चौहान की राज्य सभा में महाभारत का पाठ किया जाता था --

कहै भर भारत बत्त स बांन । धर्यौ परतापसि मुच्छन पांन[१६९] ।

तत्कालीन भारत में बालकों-बालिकाओं , युवक-युवतियों के विविध मनोविनोदात्मक खेल खेले जाते थे । बालकों और पुरुषों के खेलों में चक-डोरि, पतंग, गिलोल,छछुआ, गबड़ी , हवक , चौगान, मृगया, जलक्रीड़ा, शतरंज और जुआ आदि खेल प्रचलित थे । इसी प्रकार महिला वर्ग के लिए भी पुत्तलिका,पतंग, पशु-पक्षी विनोद, बागवानी , भ्रमण ,शतरंज,मृगया आदि क्रीड़ापरक खेल खेले जाते थे । कुंज-विहार किया जाता था ।

पृथ्वीराज रासो में बालकों के द्वारा चकडोरि घुमाने का उल्लेख प्राप्त होता है[१७०] । चन्द बरदाई ने ही पृथ्वीराज चौहान के

अभिषेक के उल्लास में सम्पूर्ण नगरवासियों के द्वारा पतंग के रूप में गुड्डियां उड़ाते हुए चित्रित किया है।[१७१] पृथ्वीराज चौहान बचपन में गिलोल के द्वारा शिकार खेलते दिखाये गये हैं।[१७२] इसी प्रकार हुडुआ खेल का विवरण अनेक स्थलों पर पृथ्वीराज रासो में किया गया है--[१७३]

दुहं दीन दीनं चहुवान गोरी । हुडुहुत षेलतं बालक्क जोरी ।

\+ \+ \+

नियं धुम्मरब्बे सदाव्रत गेहं । हुडुहुड षेलतं बालक्क जेहं ।

\+ \+ \+

थह उत्तम दह निमल, पुलिन वर पंसु फनीन सम ।
करत राज जलकेलि, सुमन कसमीर अगर जम
अरस-परस आनंद, हाल रस प्रेम बढ़ित जुव ।
सत्थ सूर सामंत, मंत खेलंत हुडुहुडुव ।

\+ \+ \+

बर बीर धावतं औपम्म ऐसो । मनो मल्ल धावै हुडु ताक्क तैसो ।

परमाल रासो और पृथ्वीराज रासो में गवड़ी खेल का नामोल्लेख हुआ है।[१७४] इसी प्रकार पृथ्वीराज रासो में हदफ खेल खेलते हुए सैनिक और मुहम्मद गोरी चित्रित किये गये हैं।[१७५] इसमें धनुष-बाण का प्रयोग किया जाता था। चौगान खेलने की प्रथा का उल्लेख पृथ्वीराज-रासो और परमाल रासो में हुआ है। पृथ्वीराज रासो के अन्तर्गत पृथ्वीराज अपने सामन्तों के साथ चौगान खेलते हुए दिखाये गये हैं।[१७६] परमाल रासो में भी सैनिकों के सिर युद्ध-क्षेत्र में कटकर लुढ़कते हैं, इसकी उपमा चौगान खेल से दी गयी है।[१७७] परमाल रासो के अन्तर्गत मृगया को राजाओं के पतन का कारण बताया गया है[१७८] तथा इसे अमंगलकारी भी कहा गया है।[१७९] पृथ्वीराज रासो के अन्तर्गत मृगया की निन्दा कालरूप कहकर की गयी है।[१८०] महाराज परमाल और पृथ्वीराज दोनों ही शेरों के

आक्रमण से येन-केन-प्रकारेण बच जाते हैं।[१८१] पृथ्वीराज चौहान मृगया के लिये जाते हुए मुहम्मद गोरी के द्वारा घेर लिये जाते हैं और बड़ी कठिनाई के साथ अपने साथियों द्वारा बचाये जाते हैं।[१८२] दिल्ली से बाहर मृगया हेतु गमन पर पृथ्वीराज की अनुपस्थिति में मुहम्मद गोरी तीन बार हमला करता है।[१८३] इसी प्रकार बीसलदेव, धीर-पुण्डीर, जयचन्द, और सारंगदेव को भी मृगयारत चित्रित किया गया है।[१८४] मृगया की अनेक पद्धतियां तत्कालीन भारत में प्रचलित थीं, जिनमें शिकारी पशु-पक्षियों के द्वारा, शब्द-ध्वनि द्वारा, हांका लगाते हुए और विविध वाद्य-यन्त्रों को बजाकर शिकार किया जाता था। पृथ्वीराज चौहान एक विशाल शिकारीदल सजाते हैं, जिसमें तीतर, तुरमती, चुटी, कुही, जुर्रा, बाज, लगर, आदि पक्षी रहते हैं--

बहु कुही बाज सिंचान बच। लंगर लांग लेयन फिरें।
देषन्त जनावर मच्छ हो, जनु अकास तारा गिरे

\+ \+ \+

जुर बाज कुट्टी तुरमतो जुत। को अन्य गनै पंषी अकुत।[१८५]

यह पक्षी अन्य पक्षियों को पकड़ने का काम करते थे तथा अपने सजातीय पक्षियों को जाल में फंसवाने का काम भी करते थे।[१८६] चन्दवरदायी ने बाज तथा कुही नामक पक्षियों को हिरणों और वन वाराह पर आक्रमण करते हुए चित्रित किया है --

आषेटक रमिराज। बाज जुर कुही छंडिकर
ऐन सेन वाराह। हनहि बर हक्कहाकि डर।[१८७]

शिकार खेलने के लिये शिकारी जानवर पाले जाते थे, इनमें कुत्तों और चीतों का परमाल रासो में प्रयोग दिखाया गया है।[१८८] पृथ्वीराज चौहान कुत्ते, चीते, हाथी, हिरन और खरगोश आदि को मृगया हेतु अपने साथ ले जाते थे --

सित पंच वीपोय रण फंदेत पंच सौ ।

सहस स्वान दस डोरि, ग्रहे पंचान पंच सौ ।

कुही बाज उचंग, पंख आघात सु बज्जै ।

खरगोस सिंह पंजर गुहा-- धनुख धनंखिय धार धन ।[१८९]

चन्दबरदायी ने पृथ्वीराज चौहान के हजारों शिकारी कुत्तों का उल्लेख करते हुए बाहर को भी धराशायी कर देने वाले कुत्तों का चित्रण किया है--[१९०]

पंच से मद्दि नाहर पछारि । जीव लै जाव बच्चांति वार ।

इक सहस बधन वा दाह तेज । कुटि पातकि मुक्कि क्ट्ठण केज ।

चन्दबरदायी के द्वारा पृथ्वीराज चौहान के कुत्तों को पवन गति से चलने वाला तथा छल-बल के द्वारा तत्काल शिकार करने वाला निरूपित किया है --

सारद्द सहस बल गने कौन । धावंत मुम्म्यमुल्लाइ पौन ।

छल छेद भेद जीवन लभंति । कुहंति अंत पछुपल भखंति ।[१९१]

चन्दबरदायी के द्वारा लंगरीराय, जैतपंवार और पहाड़राय आदि के कुत्तों का चित्रण किया गया है ।[१९२] परमाल रासो के अन्तर्गत अनेक जातियों के हजारों तीव्र गति वाले कुत्तों का विवरण मिलता है ।[१९३] पृथ्वीराज रासो में चीतों का मृगया के लिये प्रयोग किया गया है --

रथ सथ्थ चीतो थान । बच ढंकि पथ्थ पयान ।[१९४]

चन्दबरदायी ने घण्टे बजाकर पशु-पक्षियों को पकड़ने का उल्लेख किया है --

घंटनि राग किलेक, किते चिन्तय तछि दव्वत[१९५]

हिरणों को भी पकड़ने के लिए 'नाद' का प्रयोग किया जाता था --

ज्यौं बसि नाद तुरंग, बास बसि जेम मधुक्कर ।[१९६]

परमाल रासो में शिकार करने के लिए भाला, बरछा, धनुषबाण और बन्दूक का उपयोग बताया गया है --

बाघ बराह रारि कह जुट्टैय । तेज कुप्पि रजपुतन कुट्टैय[१९७]

पृथ्वीराज चौहान के आखेटक समूह में ऐसे पुरुषों को साथ में लिया जाता था, जो सांप और बिच्छू आदि विषैले जीवों को मन्त्रों के द्वारा वशीभूत कर लेते थे --[१९८]

बीछो सर्प विषंग मंत्र वादिनि मिल लुट्टिय ।

पृथ्वीराज चौहान जिन जानवरों का शिकार करते थे, वह संख्या में अत्यधिक रहते थे और उन्हें लादने के लिये गाड़ियों, हाथियों और ऊंटों का प्रयोग किया जाता था --

गाडिनि घल्लियकिते, किते ऊंटाणीपिठि डारेय

पति राखे घर किते, कितिक हत्थिन पर धारेय

कावरि कंध कहार, कितिक स्वानन मुख लुट्टिय ।[१९९]

परमाल रासो आदि में नौका-विहार तथा अन्य जल-क्रीड़ाओं का उल्लेख मिलता है । महाराज परमाल जल-क्रीड़ा हेतु नौकाओं का प्रयोग करते हुए चित्रित किये गये हैं ।[२००] पृथ्वीराज चौहान एक बृहद् जलाशय में लुकुआ खेलते हुए दिखाये गये हैं ।[२०१]

यद्यपि तत्कालीन समाज में जुआ खेलने की प्रथा प्रचलित थी, किन्तु रासो काव्यों में द्यूत-क्रीड़ा के लिये निन्दा का स्वर मिलता है । परमाल रासो में जुआ को राजाओं के पतन का कारण निरूपित करते हुए निन्दित किया गया है ।[२०२] चन्दबरदाई ने भी

जुआ खेलने का स्थान वेश्यागृहों के निकट बताया है तथा अन्यत्र मुहम्मद गोरी को हारे हुए जुआरी की भाँति चित्रित किया गया है।[२०३] शतरंज का खेल खेलते हुए पृथ्वीराज चौहान को चित्रित किया गया है--[२०४]

सतरंज राज वर षेल मंडि । सत्रोंनि श्रम्य आरम्भ घंडि ।

महिलायें और मुख्यत: बालिकायें `गुड़िया` अथवा `पुतलों` का खेल खेलती थीं । पृथ्वीराज रासो के अन्तर्गत संयोगिता के द्वारा गुड़िया का खेल खेला जाता है । संयोगिता जब अधिक उम्र की होती है तभी अपनी सखेली से कहती है कि गुड़िया का मेल खेलते समय अब लज्जा और संकोच की अनुभूति होने लगी है।[२०५] राजकुमारियों को अटारियों पर पतंग उड़ाते हुए चन्दवरदायी ने चित्रित किया है।[२०६] पृथ्वीराज रासो में पद्मावती एक शुका को राम-नाम पढ़ाती है और उसी के माध्यम से पृथ्वीराज चौहान के पास अपना प्रेमानुराग सम्प्रेषित करती है।[२०७] महारानी इच्छिनी शुका के समक्ष पृथ्वीराज चौहान की उसके प्रति उपेक्षा का निदर्शन करती है।[२०८] इच्छिनी के शुका द्वारा कैमास का करनाटी के पास जाना उद्घाटित कर दिया जाता है।[२०९] पृथ्वीराज रासो में संयोगिता भी यह इच्छा प्रकट करती है कि हाथी और शेरों की मृगया दर्शन हेतु उन्हें भी अवसर प्रदान किया जाय।[२१०]

बीसलदेव रासो में वाहन और यानादि की अव्यवस्था के कारण यात्रायें अत्यधिक कष्टपूर्ण निरूपित की गयी है।[२११] यात्राओं में चीतों और शेरों आदि का डर रहता था।[२१२] तत्कालीन समाज में घर से बाहर जाने वाला व्यक्ति धन-हीन, नारीविहीन, ऋण-ग्रस्त, योगी अथवा कलही स्त्री वाला ही रहता था।[२१३] पृथ्वीराज रासो में चन्दबरदायी जयचन्द की गरिमा की द्योतक वस्तुओं में हय, गज, सेना, सुन्दरी और सुभट निरूपित करता है --

हय गह दह्लु सुंदरि सहल अउ बरनउ बहुबार[२१४]
एह बरिस कह लगि कहउं ------------- ।

पृथ्वीराज रासो तथा परमाल रासो के अन्तर्गत यात्रा में रथों का प्रयोग दिखाया गया है[२१५]। मुहम्मद गोरी को सुखासन पर बैठाकर ले जाने का चित्रण पृथ्वीराज रासो में किया गया है[२१६]। परमाल रासो में भी आल्हा अपने बन्धु-बान्धवों सहित सुखासनों में यात्रा करते हुए दिखाये गये हैं[२१७]। परमाल रासो में यातायात के साधनों क में जहाज का उल्लेख किया गया है[२१८]।

सन्दर्भ- सारणि

-0-

(पंचम अध्याय)

सन्दर्भ- सरणि

-0-

(पंचम अध्याय)

१- ऋग्वेद, १०।१०१।१
२- यजुर्वेद, ४।२८ ।
३- डॉ० राम जी उपाध्याय, प्राचीन भारतीय साहित्य की सांस्कृतिक भूमिका, पृ० ७८२-१०६८, लोकभारती प्रकाशन,प्र०सं०, १९६६ ई० ।
४- पृ०रा०, सं० मोहन सिंह, सा० सं० उ०प्र०, समय १,छन्द ३ ।
५- उपरिवत्, समय २, छन्द ६५ ।
६- उपरिवत्, समय ४, छन्द १ तथा समय ४ छन्द ५ ।
७- उपरिवत्, समय ३, छन्द १२ तथा समय ४ छन्द ५ तथा समय ६, छन्द ६, ६५ तथा समय ११, छन्द ७ ।
८- उपरिवत्, समय ५, छन्द ५३, तथा समय १० छन्द ५८ तथा समय ११, छन्द ४ ।
९- उपरिवत्, समय ३८, छन्द १० तथा समय १८, छन्द ३४ ।
१०- उपरिवत्, समय ५, छन्द ७८, ८० तथा समय ७,छन्द ३६ ।
११- उपरिवत्, समय ६, छन्द ११, ५६ ।
१२- उपरिवत्, समय ५, छन्द ६७ ।
१३- पृ०रा०, सं० डॉ० श्यामसुन्दरदास, ना०प्र० सभा काशी प्रकाशन, पृ० १५५५, छन्द २६ ।

१४- उपरिवत्, पृ० १२६६, छन्द २२ ।

१५- उपरिवत्, पृ० १५५४, छन्द ५ ।

१६- प०रा०, सं० डॉ० श्यामसुन्दरदास, का०प्र०, खण्ड ४, छन्द ६६-७१ ।

१७- पृ०रा०, उ०प्र०, समय ६, छन्द ४४ ।

१८- उपरिवत्, समय ३८, छन्द १० तथा समय ६१, छन्द २०० ।

१९- उपरिवत्, समय ५८, छन्द २६७-२६८ ।

२०- उपरिवत्, समय १७, छन्द ८ तथा समय ५८ छन्द ६० ।

२१- उपरिवत्, सम। ११, छन्द ५ ।

२२- उपरिवत्, समय ५८, छन्द २९९ ।

२३- कामसूत्र, १ : ३ : १६ तथा महाभारत, अनुशासन पर्व ४११७.२.८

२४- श्रीमद्भगवद्गीता, १७.८-१० ।

२५- पृ०रा०, का०प्र०, पृ० १९९९, छन्द ६६ ।

२६- उपरिवत्, पृ० १९९५, छन्द ७० ।

२७- उपरिवत्, पृ० १९८९, छन्द १७ ।

२८- उपरिवत्, पृ० १९८८, छन्द १४ ।

२९- प०रा०, का०प्र०, खण्ड १७, छन्द ३१-३२ ।

३०- पृ०रा०, का०प्र०, पृ० १९९५, छन्द ७० ।

३१- उपरिवत्, पृ० १९९५, छन्द ७० ।

३२- उपरिवत्, पृ० ३१५७, छन्द ३३६ ।

३३- उपरिवत्, पृ० २२०, छन्द ३०८ ।

३४- संक्षिप्त पृ०रा०, सम्पादक डॉ० हजारीप्रसाद द्विवेदी, पृ०१८ छन्द ९, साहित्य भवन, इलाहाबाद, प्र० पं०सं०, १९६८ई० ।

३५- पृ०रा० का०प्र०, पृ० ५५६, छन्द ८६ ।

३६- पृ०रा०, उ०प्र०, भाग ४, पृ० ७१३ ।

३७- प०रा०, का० प्र०, खण्ड ३, छन्द ४८ ।

३८- पृ०रा०, का०प्र०, पृ० १९९६, छन्द ७२ तथा पृ०१९९७, छन्द ८१-८२ तथा पृ० १९९९, छन्द ९७-९८ तथा पृ० १९९७ छन्द ८२ ।

३९- उपरिवत्, पृ० १९९९, छन्द ९७ ।

४०- उपरिवत्, पृ० १९९८, छन्द ८९-९६ ।

४१- उपरिवत्, पृ० १९९९, छन्द १००-१०२।

४२- पृ०रा०, उ०प्र०, भाग३, पृ०५९०, छन्द ८ ।

४३- पृ०रा०, का०प्र०,पृ० १९९९ छन्द १०३ ।

४४- पृ०रा०, उ०प्र०, भाग३, पृ० ५९०, छन्द ८ ।

४५- पृ०रा०, का०प्र०, पृ० २०००,छन्द १०४-१०७ ।

४६- उपरिवत्, पृ० २०००,पृ० छन्द ११० ।

४७- प०रा०, का०प्र०, खण्ड १३, छन्द ८७ ।

४८- पृ०रा०,का०प्र०, पृ० २४०६, छन्द १५५ ।

४९- पृ०रा०, उ०प्र०, भाग३, पृ० ३०७,छन्द २० ।

५०- प०रा०, खण्ड २, छन्द १४२-१४३ ।

५१- चिन्तामणि विनायक वैद्य, हिन्दू भारत का अन्त,पृ०४० ।

५२- पृ०रा०, का०प्र०, पृ० ७३३, छन्द ३५७ तथा पृ० १००५,छन्द ७०।

५३- पृ०रा०, उ०प्र०, भाग ४, पृ० ११११ छन्द ३२५ ।

५४- पृ० रासउ, सं० डॉ० माताप्रसाद गुप्त, साहित्य सदन,झांसी,प्र० ७ : १५ : २ ।

५५- उपरिवत् १ :१ :१, ६ :५ : १, ५ : ३४ : १,।

५६- उपरिवत्, ५ : ३५ : ३ ।

५७- पृ०रा०, उ०प्र०, समय ७ छन्द ३२ ।

५८- उपरिवद्, समय ६, छन्द ६२ तथा समय २३ छन्द २२८ ।

५९- उपरिवत्, समय ७, छन्द ३२ तथा समय ६२, छन्द ३२० ।

६०- उपरिवत्, समय १८, छन्द २६ ।

६१- उपरिवत्, समय ६१, छन्द २०० ।

६२- उपरिवत्, समय ६१, छन्द ६५ ।

६३- उपरिवत्, समय १५, छन्द ८ ।

६४- पृ०रा०, का० प्र०, पृ० १५६, छन्द ७५ ।

६५- प०रा०, का० प्र०, खण्ड ५, छन्द १४३ ।

६६- पृ०रा०, उ०प्र०, समय ५८, छन्द १७६ ।

६७- उपरिवत्, समय १४ छन्द ८३ तथा समय ५८, छन्द २८६ ।

६८- उपरिवत्, समय ६१, छन्द ४०० ।

६९- प०रा०, का०प्र०, खण्ड १५, छन्द ७६ ।

७०- पृ०रा०, का०प्र०, पृ० ५८५, छन्द ५६ ।

७१- पृ०रा०, उ०प्र०,भाग१, पृ० ३८४, छन्द ५० ।

७२- पृ०रा०, का०प्र०, पृ० ५५२, छन्द ६१ ।

७३- पृ० रासउ, सं० डॉ० माताप्रसाद गुप्त, ७ : २ : २ ।

७४- उपरिवद, ४ : २६ : १३ ।

७५- पृ०रा०, का०प्र०, पृ० १६७६, छन्द १०७ ।

७६- उपरिवत्, पृ० १०८५, छन्द १६३ ।

७७- उपरिवत्, पृ० १०८५, छन्द १६४ तथा पृ० १४८२, छन्द १२१ ।

७८- उपरिवत्, पृ० १४८२, छन्द १२१ ।

७९- उपरिवत्, पृ० ८०३, छन्द ३१२ ।

८०- उपरिवत्, पृ० ८०३, छन्द ३१२ ।

८१- उपरिवत् ।

८२- उपरिवत्, पृ० १६५४, छन्द २५२६ तथा पृ० १०२६, छन्द ५६, तथा पृ० ५६३,छन्द १४७ ।

८३- उपरिवत्, पृ० १६७६, छन्द ११६ तथा पृ० ५६४, छन्द १५३ तथा पृ० १६७६, छन्द ७० ।

८४- उपरिवत्, पृ० १६७६, छन्द १२२ ।

८५- उपरिवत्, पृ० १६७६, छन्द १४२ ।

८६- उपरिवत्, पृ० १६५५, छन्द २५१८ ।

८७- उपरिवत्, पृ० १०८७, छन्द १६० ।

८८- प०रा०, खण्ड १५, छन्द १८० ।

८९- उपरिवत्, खण्ड ११, छन्द १७ ।

९०- पृ०रा०, का०प्र०, पृ० २३६८,छन्द ११ ।

९१- पृ०रासउ, सं० डॉ० माताप्रसाद गुप्त, १२:१३:१५ ।

९२- पृ०रा०,का०प्र०,पृ० १५६, छन्द १०३ ।

९३- प०रा०, का०प्र०, खण्ड ५, छन्द ५४ ।

९४- उपरिवत्, खण्ड १६, छन्द १२ ।

९५- उपरिवत् ।

९६- उपरिवत् ।

९७- पृ०रा०, का०प्र०, पृ० १२१६, छन्द १२७ तथा प०रा०, खण्ड ५, छन्द ४३ ।

९८- पृ०रा०, का०प्र०, पृ० १५१, छन्द ७२६ ।

९९- उपरिवत्, पृ० १२१६, छन्द ११६ ।

१००- उपरिवत्, पृ० २०३२, छन्द ८३ ।

१०१- श्री अत्रिदेव विद्यालंकार, प्राचीन भारत के प्रसाधन,पृ०४०-४१ ।

१०२- पृ०रा०, का०प्र०, पृ० ८०४, छन्द ३१६ तथा पृ० १०२५,छन्द६० तथा पृ० ६५३, छन्द ८८ तथा पृ० १६७६, छन्द १०५ तथा पृ० १६७७,छन्द १२६ ।

१०३- उपरिवत्, पृ० १६७५, छन्द १०५ ।

१०४- उपरिवत्, पृ० ८०२, छन्द ३०४ तथा पृ० ५५० छन्द ४६ तथा पृ०५५१, छन्द ५३ तथा पृ०१०२५,छन्द ५७ ।

१०५- उपरिवत्, पृ० ५५१, छन्द ५३ तथा पृ० १०२५, छन्द ५७, पृ० १८६८, छन्द ५१ ।

१०६- उपरिवत्, पृ० १०२५, छन्द ५७ ।

१०७- बीसलदेवरास, सं० डॉ० माताप्रसाद गुप्त, हिन्दी परिषद् प्रयाग विश्वविद्यालय प्रकाशन, छन्द ५६ तथा छन्द ६५ ।

१०८- पृ०रा०,का०प्र०, पृ० ५५१, छन्द ५३ ।

१०९- उपरिवत्, पृ० १६५५, छन्द २५२० ।

११०- उपरिवत्, पृ० १०२६, छन्द ६१ ।

१११- उपरिवत्, पृ० ८०३ छन्द ३१० तथा पृ० १६६८, छन्द ५३ ।

११२- उपरिवत्, पृ० १६६८, छन्द ५५ ।

११३- उपरिवत्, पृ० १६६८, छन्द ५७ ।

११४- उपरिवत्,पृ० ८०३, छन्द ३१० ।

११५- उपरिवत्, पृ० ८०३, छन्द ३११ ।

११६- उपरिवत्, पृ० ८०३, छन्द ३११ ।

११७- उपरिवत्, पृ० ५६५, छन्द १५६ ।

११८- उपरिवत्, पृ० १६६८, छन्द ५८ ।

११९- उपरिवत्, पृ० ११६८, छन्द ५७ तथा पृ० ११५४, छन्द २५१५ तथा

१२०- उपरिवत्, पृ० ११६९, छन्द ६१ ।

१२१- उपरिवत्, पृ० ११७५, छन्द १०७ ।

१२२- पृ०रा०, उ०प्र०, भाग १, पृ० ३२७, छन्द ८१ ।

१२३- पृ०रा०, का०प्र०, पृ० १०८६, छन्द १८२ तथा पृ० १०८७, छन्द १९१ तथा पृ० ३५५ छन्द २५१९ ।

१२४- उपरिवत्, पृ० ५६५, छन्द १६० ।

१२५- उपरिवत्, पृ० ८०३, छन्द ३१० तथा पृ० ११७५ छन्द १०६ ।

१२६- उपरिवत्, पृ० ११६३, छन्द १३ ।

१२७- उपरिवत्, पृ० ११५४, छन्द २५१६ तथा पृ० ११५७, छन्द २५०७ ।

१२८- उपरिवत्, पृ० ८०२, छन्द ३०३ तथा पृ० ८०३, छन्द ३१४ ।

१२९- उपरिवत्, पृ० ३१९, छन्द १३१ ।

१३०- उपरिवत्, पृ० २०६२, छन्द २९७ ।

१३१- उपरिवत्, पृ० ३१९, छन्द ३१० ।

१३२- पृ०रा०, का०प्र०, खण्ड २१ छन्द ९१ ।

१३३- पृ०रा०, का०प्र०, पृ० ११९४ ।

१३४- उपरिवत्, पृ० ३१६, छन्द ११२ ।

१३५- उपरिवत्, पृ० २५५५, छन्द ३३७ ।

१३६- डॉ० हजारी प्रसाद द्विवेदी, प्राचीन भारत के कलात्मक विनोद, पृ० १८१-१९२, प्र०हि०ग्र०र०, बम्बई, तृ०सं० ।

१३७- पृ०रा०, उ०प्र०, ३ : ७ : १३ तथा ३ : ७ : १४ ।

१३८- पृ०रा०, का०प्र०, पृ० ७३२, छन्द ३४७-५० ।

१३९- उपरिवत्, पृ० १५९८, छन्द ५३-५६ ।

१४०- उपरिवत्, पृ० १२०९, छन्द ८२- पृ० १२ १० से छन्द ८७ ।

१४१- पृ०रा०, उ०प्र०, १ : ६६ : ९ ।

१४२- उपरिवत्, १ : १९८ : १२-१७ तथा १ : २०० : १ ।

१४३- उपरिवत्, १ : २०० : १८ ।

१४४- उपरिवत्, भाग ४, पृ० ६५४, छन्द २०९ ।

१४५- उपरिवत्, भाग ४, पृ० ६५४, छन्द २०९ ।

१४६- पृ०रा०, का०पृ०, पृ० २०२३, छन्द ३४ ।

१४७- उपरिवत्, पृ० २०२३, छन्द ३४-४० ।

१४८- पृ०रा०, उ० पृ०, ३ : ७: १३ तथा ३ : ७ : १४ ।

१४९- उपरिवत्, भाग ४, पृ० ६५४, छन्द २०९ तथा भाग३,पृ०४९८, छन्द १४ कवच

१५०- पृ०रा०, का०प्र०,पृ० १५२३, छन्द ८१ ।

१५१- उपरिवत्, पृ० ११७७, छन्द ८१ ।

१५२- पृ०रा०, उ०प्र०, भाग ४, पृ०६७२, छन्द २६१ ।

१५३- पृ०रा०, का०पृ०, पृ० ९६०, छन्द ५ ।

१५४- पृ०रा०, उ०प्र०, भाग १, पृ०२९१, छन्द १३ ।

१५५- पृ०रा०, का०प्र०, पृ०९६०, छन्द ५ से पृ०९६६,छन्द ५६ ।

१५६- उपरिवत्, पृ०२३७५, छन्द १६५२ ।

१५७- उपरिवत्, पृ० १७०० छन्द ८३३ से पृ० १७०४, छन्द ८६० ।

१५८- उपरिवत् ।

१५९- पृ०रा०, उ०प्र०भाग ४, पृ०६६६, छन्द ३२३ ।

१६०- पृ०रा०,का०पृ०, पृ० २०६२,छन्द २१५ ।

१६१- उपरिवत्, पृ० १५६५, छन्द १-२ ।

१६२- उपरिवत्, पृ०५९७, छन्द ६१

१६३- उपरिवत्, पृ० १६४०, छन्द ४२७-३० ।

१६४- पृ०रा०, उ०प्र०, भाग ४, पृ०६६६,छन्द ३२४ ।

१६५- पृ०रा०, का०प्र०, पृ० ७६१, छन्द १६ ।

१६६- उपरिवत्, पृ०२६०, छन्द ५६ ।

१६७- उपरिवत्, पृ० ११३६, छन्द ६८ ।

१६८- पृ०रा०, उ०प्र०,भाग ४, पृ०६६३, छन्द ३१५ ।

१६९- पृ०रा०, का०प्र०, पृ० २८६, छन्द ३९ ।

१७०- उपरिवत्, पृ० ६५०, छन्द ५३ ।

१७१- उपरिवत्, पृ०५९७, छन्द ६१ ।

१७२- उपरिवत्, पृ०१५३, छन्द ७२७ ।

१७३- उपरिवत्, पृ० १३९३, छन्द १६२ तथा पृ० १४१३, छन्द ४६ तथा पृ०रा० उ०प्र०,भाग ३, पृ० ५३२ छन्द ८२ तथा पृ०रा०, का०प्र०, पृ०५३४, छन्द ११६ ।

१७४- प०रा०, का०प्र०, खण्ड २७, छन्द १३५ ।

१७५- पृ०रा०, का०प्र०, पृ० १४६७, छन्द १३ ।

१७६- पृ०रा०,उ०प्र०, भाग ३, पृ० ४९३ ♦ छन्द २ तथा प०रा०,खण्ड १० छन्द ७१७ ।

१७७- उपरिवत्, खण्ड १०, छन्द ७१७ ।

१७८- प०रा०, का०प्र०, खण्ड१, छन्द १४९ ।

१७९- उपरिवत्, खण्ड २, छन्द ९ ।

१८०- पृ०रा०, उ०प्र०, भाग १, पृ० १९३, छन्द ४ ।

१८१- प०रा०, का०प्र०, खण्ड ३०, छन्द ९८-१०० ♦ तथा पृ०रा०,का०प्र०, पृ० ९४५,छन्द २ ।

१८२- पृ०रा०,का०प्र०, पृ०११८०, छन्द १५ ।

१८३- उपरिवत्, पृ० ४३१, छन्द १८ से,पृ० ४३५ छन्द ३६ ।

१८४- उपरिवत्, पृ०७३, छन्द ३६३ तथा पृ०२०६१ छन्द २११ तथा पृ० छन्द ८८३ तथा पृ०६१,छन्द ३१५ ।

१८५- उपरिवत्, पृ०३१२,छन्द ६६ तथा पृ० २००२, छन्द १२० ।

१८६- उपरिवत्, पृ० ३१२, छन्द ६६ ।

१८७- उपरिवत्, पृ० २००२ छन्द १२७ ।

१८८- प०रा०, का०प्र०, खण्ड ३०,छन्द ८६ ।

१८९- पृ०रा०, उ०प्र०,भाग १, पृ०२७५, छन्द ११ ।

१९०- पृ०रा०,का०प्र०,पृ०१५१२,छन्द ९ ।

१९१- उपरिवत्, पृ०१५१३, छन्द १० ।

१९२- उपरिवत्, पृ० १५१३, छन्द १६-१९ ।

१९३- प०रा०, का०प्र०, खण्ड ३०, छन्द ४८-५० ।

१९४- पृ०रा०, का०प्र०, पृ० १९६४, छन्द ६२ ।

१९५- पृ०रा०, उ०प्र०,भाग १, पृ० १२५, छन्द ५५ ।

१९६- उपरिवत्, भाग १, पृ०२९१, छन्द १३ ।

१९७- प०रा०, का०प्र०,खण्ड ३०,छन्द ८७ ।

१९८- पृ०रा०, उ०प्र०,भाग १, पृ० १२५, छन्द ५६ ।

१९९- उपरिवत् ।

२००- प०रा०,का०प्र०,खण्ड १७, छन्द १०९ ।

२०१- पृ०रा०, उ०प्र०, भाग३, पृ०४९३, छन्द २ ।

२०२- प०रा०, का०प्र०,खण्ड १ छन्द १३२ ।

२०३- पृ०रा०,का०प्र०,पृ०१४५०, छन्द ४२ ।

२०४- उपरिवत्, पृ० १४६६, छन्द ५-९ ।

२०५- पृ०रा०,उ०प्र०,भाग३, पृ० २५३, छन्द ५ ।

२०६- पृ०रा०,का०प्र०,पृ० ३५२, छन्द ११२ ।

२०७ पृ०रा०,उ०प्र०,भाग १, पृ० ३५७, छन्द ६ -१० तथा भाग १ पृ० १६२, छन्द २५ ।

२०८- पृ०रा०,का०प्र०,पृ० १६६३, छन्द १४ ।

२०९- उपरिवत्, पृ० १४७४, छन्द ६० ।

२१०- उपरिवत्, पृ० १६८७, छन्द ४ ।

२११- वीसलदेव रास, सं० डॉ० माताप्रसाद गुप्त,छन्द ५७,हिन्दी परिषद्, प्रयाग वि०वि०प्रकाशन, द्वि०सं०,१९६०ई० ।

२१२- उपरिवत्, छन्द १०० ।

२१३- उपरिवत्, छन्द ३९ तथा छन्द १४ ।

२१४- पृ०रासउ, सं० डॉ० माताप्रसाद गुप्त ४ :२१ : १ ५ -२ ।

२१५- पृ०रा०, का०प्र०, पृ० १९६१, छन्द ३२ तथा प०रा०, खण्ड ६, छन्द ६६ ।

२१६- पृ०रा०, का०प्र०, पृ० ११९८, छन्द १३४ ।

२१७- प०रा०,का०प्र०, खण्ड ५, छन्द ६ ।

२१८- प०रा०, का०प्र०, खण्ड २, छन्द ८७ ।

-०-

षष्ठ अध्याय

-0-

आदिकालीन हिन्दी रासो काव्य परम्परा में प्रतिबिम्बित आर्थिक जीवन : अर्थ तंत्र, कृषि-उद्योग, मुद्रा-मूल्य आयात-निर्यात, आर्थिक वर्ग और राजकोष

षष्ठ अध्याय

-0-

आदिकालीन हिन्दी रासो काव्य परम्परा में प्रतिबिम्बित आर्थिक जीवन : अर्थ तंत्र, कृषि-उद्योग, मुद्रा-मूल्य आयात-निर्यात, आर्थिक वर्ग और राजकोष

(विषय- विवरणिका)

भारतीय अर्थ तंत्र ; वाणिज्य एवं व्यवसायमूलक प्रवृत्तियां ; आलोच्य-कालीन आर्थिक स्थिति, वाणिज्य, व्यवसाय, कृषि, उद्योग, खनिज पदार्थ, मुद्राएं, मूल्य, क्रय-विक्रय, आयात-निर्यात, यातायात, जन-धन, आय-व्यय, आर्थिक वर्ग, विविध जीविका स्रोत, सामान्य आर्थिक जीवन, भिक्षावृत्ति, ग्रामीण अर्थतंत्र का आधार कृषि, कृषि-यंत्र; कुटीरउद्योग, वस्त्र-उद्योग, स्वर्ण उद्योग, वेश्यावृत्ति भी आय का स्रोत ; नगरसेठ और उनके निवास-स्थल ; हाट-वर्णन ; व्यापारिक केन्द्र नगर ; सेवावृत्ति ; मुद्राएं- दीनार (हेम), मोहर, हून, रुपया (रूप), दाम, कौड़ी, वस्तु-विनिमय ; व्यवसायिक जातियां, कृषि उत्पादन ; विशेष वर्ग -- बुद्धिजीवी वर्ग, श्रमजीवी वर्ग, मनोरंजक वर्ग, प्रशस्ति-गायक वर्ग, याचक वर्ग, तथा तिरस्कृत वर्ग, राजकोष तथा विभिन्न कर ; राजकोष धन का आय-व्यय ; सन्दर्भ- सरणि ।

-0-

षष्ठ अध्याय

-0-

आदिकालीन हिन्दी रासो काव्य-परम्परा में प्रतिबिम्बित आर्थिक जीवन

प्राचीन भारत में सिन्धु घाटी सभ्यता-काल से ही राष्ट्रीय एवं अन्तर्राष्ट्रीय व्यवसाय का उल्लेख प्राप्त होता है[१]। ऋग्वेद में दस गायों के द्वारा इन्द्र की मूर्ति का पारस्परिक आदान-प्रदान निर्दिष्ट है[२]। वैदिककाल में आर्येतर जातियों के अन्तर्गत पणि एवं आर्यों में वणिक् व्यापार-कार्य करते थे[३]। भारतवर्ष की वाणिज्य एवं व्यवसायमूलक प्रवृत्तियों का उल्लेख ऋग्वेद[४], यजुर्वेद[५], अथर्ववेद[६], ऐतरेय ब्राह्मण[७], शतपथ ब्राह्मण[८], छान्दोग्य उपनिषद्[९], आरण्यक[१०], अर्थशास्त्र[११], रामायण[१२], महाभारत[१३], बौद्ध ग्रन्थ[१४] तथा जैन ग्रन्थों[१५] में भूयस: उपलब्ध होता है।

आलोच्यकालीन रासो काव्यों में तत्कालीन आर्थिक स्थिति, वाणिज्य, व्यवसाय, कृषि, व्यवसायिक मुद्रायें, आयात-निर्यात मूल्यों, खनिज पदार्थों, विभिन्न उद्योगों क्रय-विक्रय, जीविका-स्रोत, भिक्षा-

कृषि, राज्य-कोष आदि पर पर्याप्त प्रकाश डाला गया है। चन्दबरदाई ने तत्कालीन भारत को धन-धान्य से समृद्ध बताया है और समस्त प्रजाजनों को सुखी निरूपित किया है[१६]।

बीसलदेव रासो में ग्रामीण अर्थ-तंत्र का आधार कृषि उल्लिखित है। रानी राजमती ईश्वर से प्रार्थना करती है कि मुझे जाटनी बनाया जाता जिससे कि वह अपने पति के साथ खेती करती और स्वतन्त्र तथा सुखी रहती[१७]। भूमिज-उत्पाद का उल्लेख बीसलदेव रासो तथा पृथ्वीराज रासो में काम-केलि की पृष्ठभूमि के रूप में भी किया गया है[१८]। कृषि-उपज के लिये जल-वर्षण अनिवार्य था। बरसात न होने पर सिंचाई के लिये पृथ्वीराज रासो में पुर तथा रहँट अथवा पैर चलाकर पानी का प्रबन्ध किया जाना व उल्लिखित है[१६]।

परमाल रासो में चरसा, ढंकलो, और रहट का प्रयोग बताया गया है[२०]। कृषि-उपज में चन्दबरदायी ने ईख के द्वारा शकर तथा खांड बनाने का घोतन किया है[२१]। दुर्भिक्ष के कारणों में एक कारण टिड्डीदल भी बताया गया है[२१(क)]।

व्यापार, व्यवसाय तथा उद्योग-धन्धों के क्षेत्र में यह उल्लेखनीय है कि आलोच्यकाल में घरेलू तथा कुटीर उद्योग-धन्धे ही अधिक प्रचलित थे, इसलिए कि तब तक बड़े कारखानों के लिये यन्त्रों का आविष्कार नहीं हो पाया था। इसकाल में वस्त्र-उद्योग सबसे अधिक उन्नतिशील था। चन्दबरदायी ने कन्नौज की हाट में वस्त्र-विक्रय का उल्लेख किया है--

बिबेक बजाज सु बेचहि सार। कुबंत नवासर सुम्भहि तार[२२]।

रानी इच्छिनी उच्चकोटि के वस्त्र धारण करती थी --

पाटवर अंमर बसन । दिवस न सुझफहि तार ।[२३]

बजाजी के अतिरिक्त सोनारों का कार्य भी उच्चकोटि का था, जिसमें स्वर्णकार घर-घर जाकर स्वर्णाभूषण तैयार करते थे --

काट्टहि त हेम ग्रहि ग्रहि सोनार ।[२४]

मालायें बनाने का कार्य किया जाता था--

बेलु रू सेवंतीय गुटिहि जाय । जु दे दव दासीय लेहि छाय ।[२५]

वेश्यावृत्ति भी जनसामान्य की आय की स्रोत थी--

जिते इडल संघट्ट बेसानि रते । तिते दव्व षी अन्त हीनेति गन्ते ।[२६]

चन्दवरदायी ने दिल्ली नगर के बाजारों में अत्यधिक भीड़ और उसमें मणि, रत्न तथा लालों का व्यवसाय बताया है।[२७] चन्दवरदायी के द्वारा दिल्ली के नगर सेठों का और उनकी करोड़ों की धन-सम्पत्ति का उल्लेख दिल्ली नगर में वर्णित किया है।[२८] दिल्ली में ही जहां पर राज प्रासाद सात खण्ड वाला निरूपित किया गया है, वहीं पर नगर के व्यापारियों के निवास-स्थल भी ऊंचे, श्वेत, ध्वजापूर्ण बताये गये हैं।[२९] पृथ्वीराज रासो के अनुसार नगर ही प्रमुख व्यापारिक केन्द्र थे और चन्दवरदायी ने सतयुग में काशी, त्रेतायुग में अयोध्या, द्वापर में हस्तिनापुर और कलियुग में कन्नौज को भारतवर्ष का सर्वश्रेष्ठ नगर घोषित किया है।[३०] चन्दवरदायी के द्वारा कन्नौज नगर की घनी जनसंख्या का उल्लेख किया है --

अगम ति छट पट्टन ।[३१]

कन्नौज नगर वर्णन के आधार पर तत्कालीन व्यापारिक प्रवृत्ति पर प्रकाश पड़ता है। चन्दवरदायी ने कन्नौज के अधिकतर निवासस्थलों को सातमंजिल का और फहराती पताकाओं वाला कहा है[32]। कन्नौज नगर में दक्षिण की ओर जुआ खेलने के स्थान थे और उन्हीं के पास वेश्याओं के घर थे[33]। बाजारों में सबसे आगे पान की दुकानें थीं। उनके आगे फूल-मालायें बिकती थीं। कहीं-कहीं पर कत्थक कथा-वार्तायें सुनाते थे[34]। आगे चलने पर उत्कृष्ट रेशमी वस्त्रों के व्यवसायी मिलते थे[35], उनके साथ ही स्वर्णकारों का व्यापार चलता था[36]। कहीं-कहीं पर मोती, मणि और हीरों आदि का व्यवसाय परिलक्षित होता था[37]। इसी प्रकार चन्दवरदायी ने भीमदेव चालुक्य की राजधानी पट्टनपुर का वैभवपूर्ण वर्णन किया है। पट्टनपुर बिजली के समान चमकता था। भीड़ अधिक रहती थी, व्यापार का केन्द्र था, रत्नों तथा मोतियों की ढेरियां थीं- और नव निधियां नगर में विराजमान थीं[38]। मुहम्मद गोरी की गजनी में भी मनोहर हाट का उल्लेख चन्दवरदायी ने किया है[39]।

परमाल रासो के अन्तर्गत स्वर्ण-व्यवसाय अति समुन्नत दिखाया गया है, जिसमें महोबा में 'पारसमणि' का उल्लेख मिलता है, जिसके द्वारा लोहे के ढेर सोना बन जाते थे[40]। परमाल रासो में हा मणियों को आकाश में उड़ते दिखाया गया है[41]। पृथ्वीराज चौहान के पास अतुलनीय सोना था, क्योंकि वह करनाटी को प्रशिक्षण देने वाले गुरु को बीस सेर स्वर्ण प्रदान करते हैं[42]। सलखराज अपनी बेटी के विवाह में पच्चीस मन सोने के बर्तन दहेज में देते हैं[43]। महराज सोमेश्वर को सोने से तौला जाता है[44]। चन्दवरदायी ने सोने के आभूषणों के साथ ही सोने के तारों से वस्त्रों आदि को सुशोभित करना भी लिखा है[45]।

कसिक्कसि हेम सु काढ़त तार । अंत कि हंसह कन्न प्रकार ।

चन्दवरदायी ने कन्नौज तथा दिल्ली में मणियों, नगों, हीरों, लालों, मुक्ताओं आदि के अम्बार प्रदर्शित किये हैं, जिनसे इनको खाने होने का संकेत मिलता है।[४६]

तत्कालीन भारत में आय के साधनों में सेवा कार्य भी प्रमुख था, जिनमें दास-दासियां, कुमारियां और थवायत आदि गण्यमान हैं।[४७]

सिक्को के रूप में दीनार (हेम), मोहर, हुन, रूपया (रूप), दाम, और कौड़ी आदि का उल्लेख मिलता है। व्यापार में वस्तु-विनिमय के माध्यम से भी क्रय-विक्रय होता था, जिसका उल्लेख पृथ्वीराज रासो में मिलता है--

सहस अट्ठ हय सत्थ, सहस पंचस सौदागर ।
आइ सप्ते तत्थ, धीर धन्नौ आदर वर ।
मंप एक हय सचिख, सहस दुनह हय लावे ।
द्रव्व समोप्पय धरि, अमित आदर तिन दिवसे ।
संभरिय वत साहावलो, हुत सपते साहि दिसि [४८]
पुणि पत्र धरि सौदागरह, आइ सपते ठाय असि ।।

परमाल रासो में `मोहर` संज्ञक सिक्के का उल्लेख किया गया है।[४६] पृथ्वीराज रासो और परमाल रासो में `हेम` नामक मुद्रा का विवरण प्राप्त होता है, जो `दीनार` के ही समकक्ष था।[५०] मुहम्मद गोरी की बेगमों के द्वारा मक्का जाते समय आठ लाख `हुन` पृथ्वीराज चौहान के सामन्त लूटते हुए दिखाये गये हैं।[५१] `रूपया` या

`रूप` का प्रयोग पृथ्वीराज रासो में दिखाया गया है-- जिते रूपके रूप रुप्पै रुआरी[५२]। पृथ्वीराज रासो में हो `दाम`[५३] और कौड़ी[५४] सिक्कों का प्रयोग भो दिखाया गया है।

व्यापारिक वस्तुओं के यातायात के लिए हाथी, ऊंट और कांवर आदि का प्रयोग किया जाता था। चन्दवरदायी ने शिकार के द्वारा मृत जानवरों को हाथियों और ऊंटों पर लाद कर लाते हुए दिखाया है[५५]। इसी प्रकार सामान ढोने के लिए `कांवर` का प्रयोग भो पृथ्वीराज रासो में वर्णित है --

कांवरि कंध कहार, किलिक स्वाननि मुख छुट्टिय[५६]

अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार का उल्लेख भी परमाल रासो, पृथ्वीराज रासो आदि के द्वारा दृष्टिगोचर होता है। पृथ्वीराज रासो में अरब-सौदागरों से अजमेर के स्वामी द्वारा घोड़े खरीदे जाते हैं और उनका मुल्य सवा लाख `दाम` दिया जाता है[५७]। इसी प्रकार धीर पुण्डीर भी ऐराकी घोड़े पन्द्रह लाख `दाम` में खरीदता है[५८]। परमाल रासो में काबुली घोड़ों के लिए ऊदल को भेजा जाता है और महाराज परमाल घोड़ों के लिए चांदह खच्चरों पर मोहरें लदवाकर भेजते हैं[५९]। तत्कालीन भारत में वस्तुओं के मुल्य की भी जानकारी क्रय-विक्रय के माध्यम से होती है --

ऐराक तुरिय से पंच ले, सौदागर ईसप कहै।
दिए दाम दस लक्ख। पंच लक्खह रहि बाकिय[६०]।

व्याज पर रुपया देने की प्रथा का परिचय पृथ्वीराज रासो में मिलता है --

प्रथम मुक्ख दिज्जियै। व्याज आवै के नावै[६१]।

डॉ० प्रसन्नकुमार आचार्य ने यजुर्वेद[६२] के आधार पर तत्कालीन समाज में किसान, मछुआ, सुनार, धोबी, कुम्हार, जौहरी, नाई, ढोलची बनाने वाले, रंगसाज, रस्सी बनाने वाला, रथ-निर्माता और बाग लगाने वाला आदि व्यवसायियों का उल्लेख किया है[६३]। निश्चय ही यह सभी व्यवसायी आलोच्यकालीन भारत में भी रहे होंगे, किन्तु इनका सुस्पष्ट उल्लेख नहीं मिलता। यत्किंचित् विवरणों के आधार पर तत्कालीन व्यवसायी जातियों का उल्लेख मिल जाता है यथा--गूजर जातियों के लिए, भीलों के लिए और कुम्भकारों के लिए निम्न उद्धरण द्रष्टव्य हैं[६४]--

पै सक्कॅरि घुमती रक्ती कणय राइ भोंहसी
कर कस्सी गुज्जरियं, रब्बरियं नैष जीवंता।

\+ + +

सांट सैरविस भिल्ल, तार तारक्क चित्र क्न।

\+ + +

इस सोत असमानं, सुरसरि सलिल तिष्ठ नित्थाने।
पुन गलती पुजारा, गाडुवा नैव ढालंती।

इसी प्रकार जौहरी[६५], गोपालक[६६], नाविक[६७], जुलाहा[६८], लोहार[६९], बढ़ई[७०], रंगरेज[७१], छत्र-निर्माता[७२], रथ बनाने वाला[७३], कोइरी[७४], तमोली[७५] आदि व्यवसायिक वर्गों अथवा वर्णों का उल्लेख रासो काव्यों में उपलब्ध होता है।

उत्पादन की वस्तुओं में केसर[७६], चावल[७७], ताम्बूल[७८], पुष्प[७९], गन्ना[८०], साग-सब्जी[८१], मक्का[८२] तथा कुछ अन्य अन्नों[८३] का संकेत प्राप्त होता है। विवेच्यकालीन समाज में अनेक प्रकार की सुवासित वस्तुओं--

अगर, कपुर, धुप एवं रसायन का प्रयोग होता था साथ ही आक्र-
फल के बंधे हुए गुच्छ आदि का उपयोग पृथ्वीराज रासो में अनेक
स्थलों पर उपलब्ध होता है--

मोजन साल पधारि, संग प्रथिराज सुभट सब ।

घृत पक्व जल पक्व, पक्व पावक्क परसि तव ।

दुध पकवान, मंस रस मंति अमेयं ।

ति पच्य पक्कवारि, स्वाद रुचि, अन्न जात पथि पियत ही

अवमन्न अचहकार, विधियमुख,कपुर पुर बंदह कहो ।[८४]

तत्कालीन भारत में मांस[८५], मदिरा[८६] और अफीम[८७]
का सेवन करने का उल्लेख मिलता है, इससे यह निष्कर्ष निकलता है कि
इन वस्तुओं का व्यापार - व्यवसाय प्रचलित था । जीविकोपार्जन के
उपर्युक्त व्यवसायों के साथ ही कतिपय विशेष व्यवसायी वर्ग बन चुके
थे,जिन्हें हम बुद्धिजीवी वर्ग,श्रमजीवी वर्ग,मनोरंजक वर्ग, प्रशस्ति गायक-
वर्ग, याचक वर्ग तथा तिरस्कृत वर्ग आदि में वर्गीकृत कर सकते हैं । प्रथम
वर्ग के अन्तर्गत चित्रकार[८८], लौहकार[८९] और रंगरेज[९०] आदि परिगणित किये
वर्ग के अन्तर्गत चित्रकार[८८], मूर्तिकार[८९], शिल्पकार[९०], स्वर्णकार[९१],काष्ठ्य-कलाकार[९२],
लौहकार[९३] और रंगरेज[९४] आदि परिगणित किये जाते हैं ।

श्रमजीवी वर्ग में भी सैनिक[९५], महावत[९६], रक्षक[९७], धाय[९८],
माली[९९],केवट[१००],पनिहारिन[१०१], कावरि[१०२] और शिविका ढोने वालों[१०३] को रक्खा
जा सकता है ।

मनोरंजक वर्ग में नर्तकियां[१०४], गणिकायें[१०५], नट[१०६],नर्तक[१०७] और
बाजीगर[१०८] रक्खे जा सकते हैं । प्रशस्ति-गायकों में सरस्वती-साधक,कवि चन्द्रवर-
दायी[१०९] ,डुगकिंदार[११०], प्रशस्ति-गायकों[१११] और बन्दीजनों[११२] का स्थान है । भिक्षुकवर्ग[११३]

भी पृथ्वीराज रासो में उल्लिखित हैं । इनके साथ ही एक वर्ग चोरों और ठगों का भी आलोच्यकाल में परिलक्षित होता है, जिसमें तत्कालीन समाज में आतंक उत्पन्न कर दिया था और प्रजाजन इनके भय से अपने आवासों के किवाड़ बन्द करके सोते थे[११४] । चोरों और ठगों का उल्लेख पृथ्वीराज रासो में प्राप्त होता है --

कम रथरीय कपाट, चौर भंजत रोर ततु[११५] ।

\+ \+ \+

रैन परै सिर उप्परै, भय नय नगर उझार[११६] ।
मनहु ठग्गा ठग मुरिलै, रक्खि सबै भुंडार ।

तत्कालीन राज्य-शक्ति का मेरुदण्ड भी राज्य-कोष ही था । राज्यकोष में विविधकरों से शत्रुओं के नगर और उनके धनागारों को लूटने से युद्धोपरान्त की गयी सम्धियों से और अधीनस्थ राजाओं के द्वारा दी गयी भेंटों से सम्पत्ति-संचय होता था । पृथ्वीराज-रासो में भूमिकर तथा चुंगी वसूल करने का परिमाण नहीं दिया गया है, किन्तु यह उल्लेख प्राप्त होता है कि राजा को प्रजाजनों से भूराजस्व उसी प्रकार वसूल करना चाहिए, जिस प्रकार एक माली फूल और फलों को पेड़-पौधों से चुनता है[११७] । भूमिकर के अतिरिक्त पृथ्वीराज रासो में जल-कर जो कि 'सांभरि फील' से वसूल होता था, का उल्लेख किया गया है,जिसमें पृथ्वीराज चौहान के द्वारा यह अधिकार रावल समर विक्रम को दहेज स्वरूप दे दिया जाता है --

त्रितय फिरत भांवरी । दयौ संभरि उदक्ककर[११८] ।

इसी प्रकार भोला भीम भी बन्दरगाह से उपलब्ध होने वाले धन को कैमास को देने का प्रलोभन देता है--

मध्य प्रहर जंमद्दि, द्रव्य आवै बहु बंदर ।
सो अफ़र्फ चालुक्क, करै क्यमास इन्द्र धर ।[119]

महाराज पृथ्वीराज के द्वारा एक राजा को सम्पत्ति को ग्यारह हाथियों पर लदवाकर लूटकर से लाकर राजकोष में जमा किया जाता है ।[120]

पृथ्वीराज रासो के अन्तर्गत विजयपाल अपने अधीनस्थ अनेक राजाओं से कर वसूलने का कार्य सम्पन्न करते हैं[121] और इसी प्रकार पृथ्वीराज चौहान के द्वारा मुहम्मदगोरी को बन्दीगृह से मुक्त करने के पूर्व सन्धि के रूप में अपरिमित धन-सम्पत्ति ग्रहण की जाती है ।[122] परमाल रासो में भी यह विवरण उपलब्ध होता है कि पृथ्वीराज महोबा पर आक्रमण करते हुए महाराज परमार्दि देव से पचास करोड़ की आकांक्षा व्यक्त करते हैं ।[123] तत्कालीन भारत पराजित शत्रुओं के नगरों, खजानों, आदि की लूटपाट के द्वारा राजकोय कोष में अभिवृद्धि ज्ञापित करता है । मुहम्मद गोरी की बेगमों को लूटपाट करके चामुण्डराय को सम्पत्ति संग्रह करते हुए चित्रित किया गया है -- गहि बेगम सब सत्थ, लुट्टि लिय ॥ खास खजीना ।[124] अन्यत्र भी मुहम्मद गोरी की सम्पत्ति लूटने के विवरण उपलब्ध होते हैं ।[125] सामान्यत: आर्थिक दृष्टि से समृद्ध व्यक्ति रिध्धि पूर्ण[126] और सामाजिक दृष्टि से लब्धप्रतिष्ठ माने जाते थे । मंगन,[127] कृपण,[128] निर्धनी[129] और दरिद्र[130] समाज में उच्च स्थान के अधिकारी नहीं थे ।

तत्कालीन अर्थ तन्त्र का सम्यक् विश्लेषण यह इंगित करता है कि प्रजाजन और राजन्य वर्ग अर्थ संकट से मुक्त थे । उत्सवों,[131] आभूषणों,[132] भेंटों[133] और दानादि में[134] असीम सम्पत्ति का उपभोग किया जाता था । वेश्यावृत्ति[135] एवं द्यूतक्रीड़ा[136] के द्वारा सम्पत्ति के अपव्यय

का परिचय मिलता है । प्रासादों[१३७], आवासों, रनिवासों[१३८] और पूजागृहों[१३९] की निर्मिति में राजकीय धन लगाया जाता था, किन्तु सर्वाधिक व्यय ह सेना और सेवकों के लिये ही किया जाता था --

तहं तहं अथ्रिथ सुबीन, प्रबीन तिदासि दस[१४०] ।

निष्कर्षत: आलोच्य कालीन भारत, आर्थिक जीवन में कृषि, समृद्धि, भरणपोषण और कल्याणकारी आधारिका का संयोजन करता है --

कृष्येत्वा, पोमय त्वा, रय्येत्वा, पोषय त्वा[१४१] ।

सन्दर्भ-सारणि

-0-

(षष्ठ अध्याय)

सन्दर्भ-सारणि

-0-

(षष्ठ अध्याय)

१- डॉ० रामजी उपाध्याय, प्राचीन भारतीय साहित्य की सांस्कृतिक भूमिका, पृ०७४७, लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद ।

२- ऋग्वेद, ४:२.१०

३- उपरिवत्, १.११२.११ तथा ५.४५.६ तथा १.३३.३ तथा १०.६०.६ ।

४- ऋग्वेद ५.३३.११ ।

४० 'न ऋते श्रान्तस्य सख्याय देवा:' ।

५- यजुर्वेद, ३०.१७ तथा ४२.२ ।

मृत्यै जागरणम् । अमृत्यै स्वप्नम् ।

++ ++

कुर्वन्नेवेह कर्माणि जिजीविषेच्छतं समा: ।

६- अथर्ववेद, ३.२४.५

'शतहस्त समाहार'

७- ऐतरेय ब्राह्मण, ७.१५

'नानाश्रान्ताय श्रीरस्ति ।'

८- शतपथ ब्राह्मण २.१.३.६

'को मनुष्यस्य एवो वेद ।'

९- छान्दोग्य उपनिषद्, २.८.३ ।

१०- शांख्यायन आरण्यक १२.८ ।

११- कौटिल्य,अर्थशास्त्र, दण्ड-पारुष्य-प्रकरण तथा दुर्ग निवेश प्रकरण ।

१२- वाल्मीकिकृत रामायण, अयोध्याकाण्ड १००.४० तथा युद्धकाण्ड १६.६ ।

१३- महाभारत,अनुशासनपर्व, ५१.२६-३३ ।

१४- गौतम-धर्मसूत्र, ११.२१ ।

१५- डॉ० जे०सी० जैन, लाइफ इन ऐंशियण्ट इण्डिया, पृ० ६-११० ।

१६- पृ०रा०, सम्पादक, डा० श्यामसुन्दरदास, काशी प्रकाशन,पृ०५६१, छन्द १४ ।

१७- सम्पादक, डॉ० माताप्रसाद गुप्त, बीसलदेव रास, हिन्दी परिषद्, विश्वविद्यालय,प्रयाग प्रकाशन,पृ०१६३, छन्द ८२

आंवणी काइं नि सिरजीय करतार
खेत्र कमावती स्यउं भरतार
पहिरिण आछी लोवडी
तुंग तुरीय जिम मोकली गात
साइंय हैतो सामुहो ।
हंसि हंसि बुझती तो तणी बात ।

१८- पृथ्वीराज रासउ, सम्पादक, डॉ० माताप्रसाद गुप्त २ :५ :३२-४२ तथा बीसलदेव रास सम्पादक डॉ० माताप्रसाद गुप्त, छन्द ७३,पृ० १५५ निम्नवत्--

छ ववसायइ धुर छणिजइ पान ।
सीला पाणी अरु पाका जी पांन ।
कनक काया घट सींचियइ ।
महाकइ मूरष राउ न जाणइ सार ।
हाथ छनामी तावण
ऊमउ सेवइ राज दुआरि ।।

१९- पृ०रा०, सम्पादक, डॉ० श्यामसुन्दरदास,काशी प्रकाशन, पृ० १६६५, छन्द ५८३ ।

२०- परमाल रासो, सम्पादक डॉ० श्यामसुन्दरदास, काशी प्रकाशन, खण्ड १९ छन्द १०२ ।

२१- पृ०रा०, काशी प्रकाशन,पृ० १६४९, छन्द २६ ।

२२- उपरिवत्, छन्द ४३८, पृ० १६४१ ।

२३- उपरिवत्, पृ० ५५०, छन्द ४६ ।

२४- पृथ्वीराज रासउ, सम्पादक, डॉ० माताप्रसाद गुप्त २ :३: ५८ ।

२५- उपरिवत्, ४ ? २५ : ७-८ ।

२६- उपरिवत्, ४ : २३ : ७-८ ।

२७- पृ०रा०, काशी प्रकाशन, पृ० १२३५, छन्द ५२ तथा पृ० २१२९, छन्द १५९ ।

२८- उपरिवत्,पृ० १५५६, छन्द ३० ।

२९- उपरिवत्, पृ० २१२९, छन्द १६१ ।

३०- उपरिवत्, पृ० १२३५, छन्द ५२ तथा पृ० १६३०, छन्द ३५४ तथा पृ० १६४०, छन्द ४२४ तथा पृ० १६४०, छन्द ४३२ ।

३१- पृथ्वीराज रासउ, सम्पादक डॉ० माताप्रसाद गुप्त ४ : २५ : १ ।

३२- पृथ्वीराज रासो, काशी प्रकाशन,पृ० १६३०, छन्द ३५४ ।

३३- उपरिवत्, पृ० १६४०, छन्द ४२४ ।

३४- उपरिवत्, पृ० १६४१, छन्द ४३५ ।

३५- उपरिवत्, पृ० १६४१, छन्द ४३८

विवेक बजाज सु बेचहि ब सार ।
छुवत बबाबर झुकहि तार ॥

३६- उपरिवत्, पृ० १६४१, छन्द ४४१ ।

३७- उपरिवद्, पृ० १६४२, छन्द ४४४ ।

३८- उपरिवत्, समय ४२, छन्द ५०-५१-५५ ।

३६- उपरिवत, समय ६७, छन्द १४३-१४४-१४५-१४६-१४७-१४८ ।

  भियास वीर बाहुरो छुटारव हद्दु सोहयं ।

  विमास मम्म सामि को सुभिद्धि मोह मोहमं ।

४०- परमाल रासो, सम्पादक, डॉ० श्यामसुन्दरदास,काशी प्रकाशन, खण्ड २, छन्द १६४ ।

४१- उपरिवत, खण्ड २, छन्द १७० ।

४२- पृ०रा०, काशी प्रकाशन, पृ० ६६६, छन्द ५६ ।

४३- उपरिवद्, पृ० ५६०, छन्द १२३-१२४ ।

४४- उपरिवत्,पृ० ३२६, छन्द ५ ।

४५- उपरिवत्, पृ० १६४१, छन्द ४४१ ।

४६- उपरिवत्, पृ० १६४१, छन्द ४४१ ।

४७- पृथ्वीराज रासउ, सम्पादक, डॉ० माताप्रसाद गुप्त

  ५ : २१, ६ : १५ : ६, ६, ५ : २८: १, ३ : ४ :२

  ४ ५ : २० : १ ।

४८- पृ०रा०, सम्पादक, मोहनसिंह, उदयपुर प्रकाशन,समय ६०,छन्द १०४ ।

४६- परमाल रासो, सम्पादक, डॉ० श्यामसुन्दरदास, काशी प्रकाशन खण्ड १८,छन्द २६ ।

५०- उपरिवत्, खण्ड २४, छन्द ८७ तथा पृथ्वीराज रासो काशी प्रकाशन, पृ०५०७, छन्द १२५ ।

५१- उपरिवत्, पृ० १३५१, छन्द २८ ।

५२- पृ० रासउ, सम्पादक, डॉ० माताप्रसाद गुप्त ४ : २३ : ३ ।

५३- पृ०रा०, काशी प्रकाशन, पृ० २०६१, छन्द २१२ ।

५४- उपरिवद, पृ०५८, छन्द २६४ ।

५५- उपरिवत्, पृ० ३१४, छन्द १०५ ।

५६- उपरिवद, पृ० ३१४, छन्द १०५ ।

५७- उपरिवत्, पृ० २०५३, छन्द १७५

मुंह मंगि दामं करै जौठ बोलं । तिहे पंत्र से स्वरं हेरि मोलं ।

जमा जोरि मंडै सवा लष्ष दामं । लिये कागदं कायथं अंक तामं ।।

५८- उपरिवत, पृ० २०६१, छन्द २१२ ।

५९- परमाल रासो, पृ० २३५, छन्द १५-१६ ।

६०- पृ०रा०, काशी प्रकाशन, २०६१, छन्द २१२ ।

६१- उपरिवद्, पृ० १३३६, छन्द ६ ।

६२- यजुर्वेद ३०।७

६३- डॉ० प्रसन्नकुमार आचार्य, भारतीय संस्कृति और सभ्यता,पृ०१२० ।

६४- पृ०रा०, सम्पादक मोहन सिंह, उदयपुर प्रकाशन समय १ छन्द ४ ।

६५- उपरिवत्, समय ४८, छन्द २०१ ।

६६- उपरिवत्, समय २१, छन्द २३-२५ ।

६७- उपरिवद्, समय ५८, छन्द ८६ ।

६८- उपरिवत्, समय १४, छन्द ८३ ।

६९- उपरिवद, समय १२, छन्द २०-२३ ।

७०- उपरिवत्, समय १, छन्द ७४ ।

७१- उपरिवत्, समय १४, छन्द ८३ ।

७२- उपरिवत्, समय १२, छन्द ३० ।

७३- उपरिवत्, समय १२, छन्द २१ ।

७४- उपरिवत्, समय ६१, छन्द ७१ ।

७५- उपरिवत्, समय ३४, छन्द ८ ।

७६- उपरिवत्, समय ५८, छन्द ३०६ ।

७७- उपरिवत्, समय १, छन्द ४ ।

७८- उपरिवत्, समय ५८, छन्द ३०० ।

७९- उपरिवत्, समय ५८, छन्द ३०० ।

८०- उपरिवत्, समय ६१, छन्द ७१ ।

८१- उपरिवत्, समय ६१, छन्द ७१ ।

८२- उपरिवत्, समय १, छन्द ४ ।

८३- उपरिवत्, समय ६१, छन्द ७१ ।

८४- उपरिवत्, समय ३४, छन्द ८ ।

८५- उपरिवत्, समय ६१, छन्द ७१ ।

८६- उपरिवत्, समय ५, छन्द ८८ ।

८७- उपरिवत्, समय ६१, छन्द २५ ।

८८- उपरिवत्, समय ४, छन्द १ ।

८९- उपरिवत्, समय १, छन्द ७४ तथा समय ३४ छन्द ३१ ।

९०- उपरिवत्, समय ३८, छन्द ११ ।

९१- उपरिवत्, समय ३४, छन्द ३१ तथा समय ५८, छन्द २०१ ।

९२- उपरिवत्, समय १, छन्द ७४ तथा समय ६१, छन्द ३४ ।

९३- उपरिवत्, समय १२, छन्द २२-२३ ।

९४- उपरिवत्, समय १४, छन्द ८३ ।

९५- उपरिवत्, समय १० छन्द ३२ तथा ५६ ।

९६- उपरिवत्, समय ३४, छन्द १९ ।

९७- उपरिवत्, समय ५०, छन्द ५६ ।

९८- उपरिवत्, समय ८, छन्द २३ ।

९९- उपरिवत्, समय १७, छन्द ८ ।

१००- उपरिवत्, समय ५८, छन्द ९८ ।

१०१- उपरिवत्, समय ५८, छन्द २६८ ।

१०२- उपरिवत्, समय ५, छन्द ५६ तथा समय ६१, छन्द २० ।

१०३- उपरिवत्, समय १४ छन्द ७६ तथा समय १८ छन्द ५६ ।

१०४- उपरिवत्, समय २८, छन्द ४-८-६ तथा समय ५८, छन्द ३१८, ३२१-३२२ ।

१०५- उपरिवत्, समय १३, छन्द ८ ।

१०६- उपरिवत्, समय १ छन्द ७५ ।

१०७- उपरिवत्, समय २८, छन्द ४-८-६ ।

१०८- उपरिवत्, समय ५८, छन्द २६२ ।

१०९- उपरिवत्, समय १, छन्द ४७ तथा समय ५६, छन्द ४१ ।

११०- उपरिवत्, समय ५६, छन्द २६-३८ ।

१११- उपरिवत्, समय ५८, छन्द २६८ ।

११२- उपरिवत्, समय ५८, छन्द ३२७ ।

११३- उपरिवत्, समय १, छन्द ४५ तथा समय ६, छन्द ४-५ ।

११४- उपरिवत्, समय ५०, छन्द ७४ ।

११५- उपरिवत्, समय ५०, छन्द ७४ ।

११६- उपरिवत्, समय ५८, छन्द ३८५ ।

११७- पृ०रा०, सम्पादक डॉ० श्यामसुन्दरदास, काशी प्रकाशन, पृ०२२६६, छन्द ६६५ ।

११८- उपरिवत्, पृ०६६२, छन्द १५६ ।

११९- पृ०रा०, सम्पादक, मोहन सिंह, उदयपुर प्रकाशन, भाग२, पृ०४६३, छन्द ८

१२०- पृ०रा०, सम्पादक, डॉ० श्यामसुन्दरदास, काशी प्रकाशन, पृ०७५६, छन्द ४८३ ।

१२१- उपरिवत्, पृ० १२५७, छन्द २११ ।

१२२- उपरिवत्, पृ० ११२८,छन्द १३४ ।

१२३- परमाल रासो, सम्पादक, डॉ० श्यामसुन्दरदास,खण्ड२३,छन्द ४६।

१२४- पृथ्वीराज रासो, सम्पादक, मोहन सिंह, उदयपुर प्रकाशन,भाग ३, पृ० ३०४, छन्द १३ ।

१२५- पृ०रा०, सम्पादक डॉ० श्यामसुन्दरदास,काशी प्रकाशन,पृ०१३७४ छन्द ६४५ ।

१२६- पृथ्वीराज रासउ, सम्पादक, डॉ० माताप्रसाद गुप्त,साहित्य सदन, फांसीप्रकाशन, ६ : १५ : १६ ।

१२७- उपरिवत्, ८ : ५ : ३ ।

१२८- उपरिवत्, ८ : ५ : २ ।

१२९- उपरिवत्, २ : ५ : १६ ।

१३०- उपरिवत्, ६ : १५ : १६ तथा ५ : १४ : २ ।

१३१- उपरिवत्, २ : ३ : ५६-६३ ।

१३२- उपरिवत्, २ : ३ : ५८ ।

१३३- उपरिवत्, ५ : ४४ ।

१३४- उपरिवत्, ४ : १० : १३-१४ तथा २ : १ : १४ ।

१३५- उपरिवत्, ४ : २३ : ७-८ ।

१३६- उपरिवत्, ४ : २३ : ३ ।

१३७- उपरिवत्, २ : २७ : १ ।

१३८- उपरिवत्, ६ : ४ : १ ।

१३९- उपरिवत्, २ : १ : १३ ।

१४०- उपरिवत्, ९ : ६ : ४ ।

१४१- शतपथ ब्राह्मण ५ ।२।१।२५ ।

सप्तम अध्याय

-0-

आदिकालीन हिन्दी रासो काव्यों में अंकित राजनीतिक पर्यावरण और राजनय

सप्तम अध्याय

-0-

आदिकालीन हिन्दी रासो काव्यों में अंकित राजनीतिक पर्यावरण और राजनय

(विषय- विवरणिका)

भारतवर्ष में राजशास्त्र और राजधर्म की विराट् परम्परा ;भारतीय राजतंत्र-- जनतंत्र और नृपतंत्र का समन्वय ; पुरुषार्थ प्रधान हिन्दू राजतंत्र तथा असवियत प्रधान मुस्लिम राजतंत्र का मिलन-बिन्दु ; राजा का रूप, राजा-प्रजा-संबंध ; प्रजा वर्ग का राजा पर अंकुश ; प्राचीन राजनीतिक चेतना सम्पन्न ;तत्कालीन प्रमुख राज्य ; राजा और सुलतानों के लिए प्रयुक्त संज्ञाएं ; राजा के कर्तव्य और अधिकार ; रानियों का प्रशासन में हस्तक्षेप ; राजपुरोहित, राजगुरु, प्रधान, राजसभा, सामन्त, सूर, भूप, गुणीजन, दूत, दूती, भृत्य,शहजादे, वजीर, दीवान, भण्डारी, सेनापति, प्रतिहार, नकीब, बसीठी, खवास, राज-कवि, बन्दीजन, युद्धों के परिणाम ; रणभेरी और रसकेलि ; सैन्य शक्ति, सामन्त शक्ति; `खान` और `मीरों` की लघु सेनाएं ;चतुरंगिणी सेना, सेना के छ: अंग ; सैन्य पताकाएं ; रणवाद्य, रसाल- साज ; सेनाओं की व्यूह-रचना; अस्त्र-शस्त्र; राजाओं की रणक्षेत्र में उपस्थिति ;शत्रुओं एवं अपराधियों को कठोर दण्ड ; सामन्तों को जागीरें और उपाधियां; सामन्त-विद्रोह ;सामंतों एवं राजाओं का पारस्परिक विद्वेष ; बीड़ा रखना, वीरों का सम्मान ; धर्म शपथ और धर्मद्वार; युद्धक्षेत्र में रनिवास ;जौहर अथवा मरण का खेल ; विविध वेशधारी गुप्तचर ; सन्दर्भ-सरणि ।

-0-

सप्तम अध्याय

-0-

आदिकालीन हिन्दी रासो काव्यों में राजनीतिक पर्यावरण और राजनय

भारतवर्ष में प्राचीनकाल से ही राजशास्त्र और राजधर्म की विराट् परम्परा अनुस्यूत है[1]। यद्यपि वेदों में राजधर्म शब्द का प्रयोग नहीं किया गया, किन्तु वैदिककालीन सम्प्रभुता सम्पन्न सभायें और समितियां संघर्ष काल में सुरक्षात्मक दृष्टि से एक अंग विशेष को संघर्ष-संचालन का कार्य सौंपती थीं। यही संचालक-संघ प्रधान एवं प्रजा-संरक्षक राजा बन गया[2]। आपस्तम्ब धर्म-सूत्र आदि धर्मशास्त्रों से राज-धर्म का आरम्भ हुआ जिसमें राजा के कार्य निर्दिष्ट किये गये हैं[3]। मनुस्मृति और अनुशासनपर्व में राजधर्म की वैधानिक मान्यता के साथ ही बृहस्पति तथा उशना के राजशास्त्र की आस्था प्रस्तुत की गयी है[4]। महाभारत के शान्ति पर्व में राजधर्म की विस्तृत विवेचना प्रस्तुत की गयी है, जिसमें सभी धर्म राजधर्म में समाहित हो जाते हैं। समस्त विद्यायें और लोक राजधर्म में समाविष्ट हैं, सभी धर्मों में राजधर्म सर्वप्रधान है --

एवं धर्मान् राजधर्मेषु सर्वान् सर्वावस्थं सं प्रलीनान्निबोध सर्वाविधा राजधर्मेषु युक्ता सर्वेलोका राजधर्मे प्रविष्टा: सर्वेधर्मा राजधर्म प्रधाना:[५] ।

महाभारत के अन्तर्गत 'सर्वस्य जीव लोकस्य राजधर्म-परायणम्'[६] का उद्घोष करते हुए यह प्रकट किया गया है कि योग,क्षेम और सुवृष्टि राजमूलक होती है । प्रजाजनों की व्याधियां मृत्यु और भय भी राजमूलक होते हैं तथा कृतयुग, द्वापरयुग, त्रेतायुग और कलियुग आदि का मूल,निश्चय ही राजा ही होता है--

राजामूला महाभाग योग क्षेम सुवृष्टय: ।
प्रजासु व्याधयश्चैव मरणं च भयानि च ।
कृतं त्रेता द्वापरं च कलिश्च भरतर्षभ: ।
राजमूला इति मतिर्मम नास्त्यत्र संशय:[७] ।।

शुक्रनीति सार के अन्तर्गत भी राजा को ही धर्म और अधर्म की कसौटी मानते हुए युगप्रवर्तक कहा गया है --

युग प्रवर्तको राजा धर्मा धर्म प्रशिक्षणात्
युगानां न प्रजानां न दोष: किन्तु नृपस्य तु[८] ।

कामसूत्र[९], नीतिप्रकाशिका[१०], बुद्ध-चरित[११],पंचतन्त्र[१२] और महाभारत[१३] आदि में ब्रह्मा,महेश्वर,इन्द्र, स्कन्द, बृहस्पति, शुक्र,भारद्वाज, और वेदव्यास आदि को राजशास्त्र-प्रणेता मानते हुए राजधर्म और धर्म-शास्त्र को पृथक्-पृथक् रूप में उद्भूत एवं विकसित माना गया है[१४] । राजशास्त्र के साथ ही साथ नृप शास्त्र और दण्ड-नीति के द्वारा सामाजिक विकास की मान्यता को प्रश्रय मिला --

दंडनीति: स्वधर्मेभ्यश्चातुर्वर्ण्यं नियच्छति
प्रयुक्ता स्वामिना सम्यगधर्मेभ्यो नियच्छति[१५] ।

वस्तुत: भारतीय राजतन्त्र, जन तन्त्र और नृपतन्त्र का उत्थान-पतन का इतिहास है । वैदिक[१६] बौद्ध[१७] और जैन[१८] राजशास्त्र संबंधी

परम्पराओं में यत्किंचित् प्रकारान्तर के साथ एक ही चिन्तनधारा समाविष्ट है । आलोच्यकाल के अन्तर्गत एक हज़ार ईसवी से बारह सौ छै ईसवी तक राजदर्शन का केन्द्रबिन्दु भारतीय परम्पराओं का अभिनिवेश करता है और बारह सौ छै ईसवी से चौदह सौ बारह ईसवी तक मुस्लिम राज दर्शन का संन्निदर्शन करता है । मुस्लिम राज दर्शन, समसामयिक इतिहासकार इब्ने खलदुन (१३३२ई०-१४०६ई०तक) के ग्रन्थ `इब्ने खलदुन का मुकदमा`[१९] द्वारा सम्यक्रूपेण प्रकाश में आता है । जिसके अन्तर्गत `असबियत`[२०] का प्राधान्य निर्दिष्ट किया गया है ।

असबियत के अन्तर्गत तत्कालीन सुल्तानों की शक्ति-संवर्धन, पक्षपातपूर्ण नीति, आतंकवाद, सर्वप्रभुत्व सम्पन्नता, ऐश्वर्यविलास, विशेषाधिकार, केन्द्रीय शक्ति-संचय, जीवनपर्यन्त सर्व-तन्त्र स्वतन्त्रता आदि भावनाओं का आधार ग्रहण किया जाता था । कोई भी शाहंशाह बिना रक्तपात और संघर्ष के न तो सल्तनत हासिल कर पाता था और न ही उसका मृत्यु-पूर्व परित्याग करता था[२१] ।

इस प्रकार आलोच्यकालीन राजतन्त्र की दो दिशायें स्पष्टत: दृष्टिगोचर होती हैं-- एक ओर पुरुषार्थ प्रधान हिन्दू राजतंत्र ह्रासोन्मुख था, वहीं दूसरी ओर असबियत प्रधान मुस्लिम राजतंत्र विकासोन्मुख हो रहा था ।

विवेच्यकाल में `धर्मेन प्रजारंजनम्`[२२] का आदर्श और `प्रशाधि पृथ्वी राजन् प्रजा धर्मेण पालयन्`[२३] का आधार ग्रहण कर `सर्वे मनुष्या: मम प्रजा भव`[२४] की आकांक्षा राजाओं द्वारा प्रकट की गयी है । सत्ता-संघर्ष के अतिरिक्त `सर्वभूत हिते रता:`[२५] का व्रत लेकर `माता भूमि: पुत्रो हं पृथिव्या:`[२६] का लक्ष्य बनाया गया है ।

रासो काव्यों में तत्कालीन राजाओं को अहर्निश प्रजाजनों के हित-चिन्तन में निमग्न दर्शाया गया है । राजाओं का स्वरूप पितातुल्य था और राजा भी अपनी प्रजा का संरक्षण कर्तव्य ही नहीं धर्म समझते थे । राजाओं में प्रजा को भी सर्वशक्तिमान् परम-पिता परमेश्वर स्वरूप मानकर अनन्य अनुरक्ति रहती थी । पृथ्वीराज रासो के अन्तर्गत अनेक स्थलों पर केवल प्रजाजनों की रक्षा हेतु रणभेरियां बजती हैं । पृथ्वीराज चौहान और महाराज परमाल के बीच युद्ध का कारण एक मालिन का करूण क्रन्दन ही है । पृथ्वीराज चौहान के कुछ सैनिक महोबा के एक माली को मौत के घाट उतार देते हैं । मालिन परमार्दिदेव के समक्ष परित्राण हेतु विलाप करती है । महाराज परमाल भी पृथ्वीराज चौहान के सैनिकों को धराशायी करने का आदेश देते हैं,[27] जिनमें पृथ्वीराज चौहान की 'गुनमंजरी' दासी भी दिवंगत होती है । यह समाचार पाकर पृथ्वीराज प्रतिकार की भावना से चन्देल राजा पर आक्रमण करते हैं[28] । और जब पृथ्वीराज के सामन्त चामुण्डराय के द्वारा चन्देल राज्य की प्रजा पर अत्याचार प्रारम्भ होता है, तब युद्ध के लिए अनिच्छुक परमार्दिदेव भी आल्हा - ऊदल के नेतृत्व में युद्ध-घोष कर देते हैं[29] । जैतराव अपने पिता को प्रजाजन की रक्षा हेतु तत्पर करता है और भोला भीम के द्वारा सतायी गयी प्रजा की भयत्रस्तता दूर करने के का आह्वान करता है[30] । चालुकाराव, बीसलदेव की उनके नगर और ग्राम लूटने की निन्दा करते हैं तथा इसप्रकार की कार्यवाही को हिन्दू राजतन्त्र के विरुद्ध बताते हैं[31] । चन्दबरदाई के द्वारा राजाओं को ईश्वर का अवतार बताया गया है[32] तथा वेद विहित मान्यता के अनुसार कवि चन्द ने उनमें ईश्वर का अंश माना है[33] । वस्तुत: किसी व्यक्ति - विशेष को ईश्वरीय शक्ति न मानकर राजा के पद को ही ईश्वरी शक्ति मानने का डॉ० अल्तेकर का अभिमत सत्य प्रतीत होता है[34] ।

यदि कोई राजा अत्याचार करते हुए सम्पत्ति संग्रह करता था तो प्रजाजन उस राजा को वंश-हानि का अभिशाप देते थे --

संसार सकल तिन दुष्ष पाइ । सब आपदीन इह अगति आइ

बिन बंसहंस इह तजै देह । इय प्रजा सकल कलि आप ग्रेह[35] ।

प्रजावर्ग का प्रभुत्व राजाओं पर था । इस तथ्य का उल्लेख पृथ्वीराज रासो में इस प्रकार मिलता है कि यदि कोई राजा चरित्रहीन हो जाता था तो जनता उसके राज्य का परित्याग करके बाहर जाने का निर्णय करती थी --

दीरघ जन मिलि नयर के गये द्वार परधान ।

बढ़ि अबैन नर नारि सब, नहीं रहै रज थान[36] ।

तथ्य यह है कि राजाओं में देवत्व का आरोप होने के साथ ही उनके दुर्व्यसनों की उपेक्षा नहीं की जाती थी । डा० राधा कुमुद मुकर्जी और डा० ब्रजनारायण शर्मा ने मन्त्रशक्ति के द्वारा राजाओं में ईश्वरत्व का प्रतिष्ठापन बताया है[37] ।

तत्कालीन भारत में प्रजावर्ग राजनीतिक चेतना सम्पन्न था । महापण्डित राहुल सांकृत्यायन की यह धारणा असंगत प्रतीत होती है कि ७० प्रतिशत किसान --कम्मी-- कारीगर की अवस्था आत्मसम्मान की दृष्टि से उच्चवर्ग के समक्ष शून्य थी[38], क्योंकि विवेच्यकालीन राजनीति से जनता पराङ्मुख नहीं थी । राजाओं के उत्थान-पतन के साथ अपनी मनोभावना प्रकट करती थी । मुहम्मद गोरी के पराजित होने पर प्रजाजन प्रसन्नता व्यक्त करते हैं[39] । महाराज पृथ्वीराज के पराभव के कारण जनवर्ग आंसू बहाता है , उसके गले रूंध जाते हैं, चेहरों पर उदासी छा जाती है।

सभी लोग अर्द्ध-विक्षिप्त-से प्रतीत होते हैं और आपस में एक-दूसरे की बात का जवाब नहीं देते । प्रतीत होता है कि सामान्यजन पृथ्वीराज चौहान के पराभूत होने पर अत्यधिक कष्ट में हैं।[४०] न केवल इतना ही, ये प्रजा जन अपने राजाओं को शत्रुओं के आक्रमण के समय युद्ध के लिए तैयार भी करते थे । जब मुहम्मद गोरी दिल्ली पर अन्तिम आक्रमण करता है और पृथ्वीराज चौहान संयोगिता के प्रेम में अनुरक्त होकर सब भूल जाता है । राजकार्य से विमुख होता है, तब प्रजावर्ग उन्हें कर्तव्य-पथ पर आरूढ़ करने के लिए राजगुरु के माध्यम से पृथ्वीराज चौहान के पास स्वरक्षार्थ सन्देश देता है।[४१] प्रजा के द्वारा ही अनंगपाल को पृथ्वीराज के अनाचारों से त्रस्त होकर पुन: दिल्ली राज्य वापस लेने के लिए तत्पर कर दिया जाता है।[४२] बीसलदेव की चरित्रहीनता से उद्विग्न होकर प्रजावर्ग राज-पौत्र से वर्हिगमन की धमकी देता है।[४३]

निष्कर्षत: तत्कालीन राजनीतिक घातों-प्रतिघातों के प्रति प्रजा वर्ग अन्यमनस्क नहीं था, वरन् समयानुसार वह राजाओं की निष्क्रियता ,चरित्रहीनता अथवा अत्याचार का विरोध भी करता था ।

प्रस्तुत शोध-प्रबन्ध के द्वितीय अध्याय के अन्तर्गत साहित्येतर स्रोतों के आधार पर तत्कालीन भारत के चित्रण में शोधित्सु ने यह इंगित किया है कि राजनीतिक पर्यावरण की दृष्टि से निरंकुश एकतन्त्र का उन्मेष दृष्टिपथ पर आता है । पाणिनिकाल (५००ई०पूर्व) तक जनपदीय व्यवस्था का चरमोत्कर्ष रहा, तदुपरान्त केन्द्रीय शक्तिसम्पन्न साम्राज्यवाद का प्रादुर्भाव हुआ और हर्षोत्तरकाल में विविध राज्यशक्तियां विघटित शक्ति समूह में राजपूत काल तक परिणत हो गयीं । रासो काव्यों में दिल्लीपति,[४४] कन्नौजपति,[४५] अजमेर पति,[४६] आबूपति,[४७] काशीपुर नरेश,[४८] गज्जनेश,[४९]

पहुपंग,[५०] मेच्छपति,[५१] साहि[५२] आदि शब्दों का प्रयोग तत्कालीन राज्यों का द्योतन करता है । इसी प्रकार मरहट्ठ, घट्ट, निम्मंचि, बहरागर,[५३] करणाटी, करबीर, गुंडी, गुर्जर,[५४] मालव, मेवाड़, मंडोवर,[५५] मरुदेश,[५६] रणथम्भौर,[५७] कालिंजर,[५८] सोरंवर,[५९] मरुदेश,[६०] आदि के भी उल्लेख प्राप्त होते हैं ।

यद्यपि रासो काव्यों में तत्कालीन अनेक राज्यों का नामोल्लेख किया गया है, सामन्त राज्यों की भी चर्चा की गया है, किन्तु प्रमुखत: दिल्ली, कन्नौज, गज़नी, पट्टनपुर, महाराष्ट्र, आबू आदि कुछ राज्यों का राजनीतिक घटना-चक्र सहित विवरण उपलब्ध होता है, जिनके सम्बन्ध में इतिवृत्तात्मक विन्यास भी प्रामाणिकता प्रस्तुत करता है ।

सोमेश्वर-पुत्र[६१] पृथ्वीराज चौहान ने अन्तिम हिन्दू सम्राट् के रूप में दिल्ली में सुदृढ़ केन्द्रीय राज्य की स्थापना की । उसने जयचन्द के राजसूय यज्ञ को नष्ट कर दिया था --

स ज रिपु ढिल्लिय नाथ सो ध्वंसतं जग्गियं आये
परणे वं तव पुत्री युध्यं मंगीत भुषनं सोइ ।[६२]

संयोगिता और पृथ्वीराज चौहान का विवाह तथा विलास दिल्ली से ही सम्बन्धित है । चन्दवरदाई ने संयोगिता और पृथ्वीराज चौहान का मिलन, हरण-वरण प्रभावपूर्ण ढंग से चित्रित किया है ।[६३] पृथ्वीराज चौहान ने चन्दवरदाई के अनुसार मरु (मुर), मंडोवर, मरु मंड, रणथम्भौर , कालिंजर , आदि के राजाओं को परास्त किया था ।[६४] इसने मुहम्मद गोरी को परास्त किया था और उसे तीन बार बांधा था ।[६५] पृथ्वीराज और मुहम्मद गोरी के बीच बीस युद्धों का उल्लेख प्राप्त होता है ।[६६]

तत्कालीन राज्यों में कन्नौज प्रमुख था । जयचन्द राठौर इसका शासक था ।[६७] जयचन्द के पिता का नाम विजयपाल था ।[६८] पृथ्वीराज चौहान भी दिल्ली देखने का इच्छुक था ।[६९] जयचन्द ने म्लेच्छों को हिमालय के राज्यों को, आठ सुल्तानों को और डाहल के कर्ण को परास्त किया था --

------- करण डाहल्ल हु बार बांध्यउ ।[७०]

जयचन्द के सात हजार दरबारी, राजाओं जैसे ही थे -- `सयल करइ दरबार जिहि सत सहस अस भुप` ।[७१]

~~पृथ्वीराज रासो में~~ गुर्जर के राजा भीमसेन को पृथ्वीराज चौहान ने परास्त किया था ।[७२] पृथ्वीराज ने कैमास (कवास) को भीम को कैद करने के लिये भेजा था ।[७३] पृथ्वीराज चौहान के सामंतों के द्वारा भी भीमसेन को जो कि गुर्जर का राजा है, परास्त किया गया था ।[७४] आबू राज्य के सलष को पृथ्वीराज और जयचन्द के संघर्ष में पृथ्वीराज चौहान की ओर से युद्धक्षेत्र में वीरगति प्राप्त करते हुए चित्रित किया गया है ।[७५] इसी प्रकार सलष के पुत्र जैत को भी मुहम्मद गोरी और पृथ्वीराज चौहान के मध्य युद्ध में दिवंगत होते हुए दिखाया गया है ।[७६]

आलोच्यकालीन भारत में राजा और उनके राज्य का उल्लेख अनेक स्थलों पर प्राप्त होता है --

सुनियइ न पुन्य सम मफुफ्फ राज ।`[७७]

राजा के लिए रासो काव्यों में राजा,[७८] राव,[७९] नरेन्द्र,[८०] नरनाह,[८१] नरेसु,[८२] नृप,[८३] त्रिप,[८४] भुप,[८५] भुआल,[८६] भुअपति,[८७] पाति साहि,[८८] भुप्पत,[८९] राइ[९०] राउ,[९१] राइस,[९२] सुल्तान,[९३] त्रिपति[९४] आदि संज्ञाओं का प्रयोग किया गया है ।

तत्कालीन सम्राटों को ईश्वर, ईश, भूपति, महाराज, पृथ्वीपति, हिन्दुराज, आदि ईश्वरीय शक्ति सम्पन्न उपाधियों से विभूषित करने की प्रथा को इतिहासकारों ने ईरानी और हैलेनिस्टिक प्रवृत्ति का द्योतक माना है।[९५]

आलोच्यकालीन भारत में राजा और सुल्तान स्वेच्छाचारी थे।[९६] उनका आदेश[९७] अथवा फरमान[९८] सर्वोपरि था। सामान्यत: राजा के कर्तव्यों में प्रजा पालन,[९९] धर्मरक्षा,[१००] देश की सीमा-रक्षा और विस्तार[१०१] -- प्रमुख थे। राजा न्यायपालक और[१०२] धार्मिक प्रवृत्ति के[१०३] होते थे। यह आभास मिलता है कि तत्कालीन समाज में यज्ञ प्रथा समाप्त हो रही थी[१०४] और तीर्थयात्राओं[१०५] एवं दानादि कार्यों[१०६] के द्वारा धर्मरक्षा का कार्य हो रहा था। विवेच्यकाल में शासन-सूत्र संभालने के लिये राजा के अतिरिक्त, शासन कार्य में साहाय्य हेतु रानियां[१०७] भी सहयोग करती थीं। राज पुरोहित अथवा राजगुरु[१०८] रहते थे। एक प्रधान,[१०९] राजा की अनुपस्थिति में राज्य-संचालन करता था। राजा की सहायतार्थ एक राज सभा या दरबार[११०] रहता था जिसमें गुणीजन,[१११] सामन्त,[११२] सूर,[११३] भूप[११४] दरबारी के रूप में उपस्थित रहते थे। दूत-दूती[११५] और भृत्यादि[११६] का सहयोग लिया जाता था।[११७] मुस्लिम दरबारों में शहजादे,[११८] वजीर,[११९] दीवान,[१२०] भण्डारी[१२१] आदि का उल्लेख मिलता है। सेनापति[१२२] आदि सैन्य अधिकारी भी प्राप्त होते हैं। प्रतिहार,[१२३] नकीब,[१२४] दसौंधी,[१२५] खवास[१२६] आदि राज्य-कर्मचारियों का उल्लेख भी रासो काव्यों में मिलता है। इनके साथ ही राज कवि,[१२७] और बन्दीजनों[१२८] का भी स्थान तत्कालीन राज्य-व्यवस्था में परिगण्य है।

परमाल रासो और पृथ्वीराज रासो के अन्तर्गत राज महिषी का योगदान राज्य कार्य संचालन में कई स्थलों पर निदर्शित

हुआ है । ऐसा प्रतीत होता है कि वैदिक कालीन परम्परा के अनुसार रानी का स्थान मन्त्रिपरिषद् के एक सदस्य के रूप में परिगणित किया जाता था[१२९] । परमाल रासो के अन्तर्गत यह विवरण प्राप्त होता है कि पृथ्वीराज चौहान के द्वारा चन्देल राजा के आक्रमण के समय रानी मल्हना परमार्दिदेव को दो महीने के लिए युद्ध-स्थगन प्रस्ताव प्रेषित करने का परामर्श देती है[१३०] । रानी मल्हना का यह प्रस्ताव स्वीकार किया जाता है[१३१] । तदुपरान्त मल्हना आल्हा और ऊदल को कन्नौज से वापस लाने का उपक्रम करती है[१३२] । पृथ्वीराज रासो के अन्तर्गत यह इंगित होता है कि संयोगिता के हरण और वरण के उपरान्त संयोगिता ही दिल्ली राज्य का शासन-सूत्र संचालित करती है और पृथ्वीराज चौहान निरन्तर ६ महीने तक राज्यकार्य से विमुख हो जाते हैं[१३३] । न केवल इतना वरन् पृथ्वीराज चौहान दास-दासियों के पर्यावरण में इतने आबद्ध हो जाते हैं कि उन्हें अपने राज्य क्षेत्र का यत्किंचित् भी ज्ञान नहीं हो पाता[१३४] । उनको रावल समर विक्रम के आगमन की सूचना बीस दिन तक प्राप्त नहीं हो पाती[१३५] । संयोगिता के द्वारा निगम बोध पर रावल समर विक्रम को प्रधान के द्वारा ठहराये जाने का कार्य भी किया जाता है[१३६] और जब मुहम्मद गोरी के आक्रमण से त्रस्त प्रजाजन, रक्षाहेतु पृथ्वीराज चौहान के महल तक जाते हैं, तब पृथ्वीराज चौहान की दासियां उन्हें मार कर वापस कर देती हैं[१३७] । यहां तक कि राजकवि और राजपुरोहित चन्दवरदाई तथा गुरु राम भी पृथ्वीराज चौहान से संयोगिता के कारण मिल नहीं पाते, तब रानी इच्छिनी येन-केन -प्रकारेण चन्द-बरदायी का एक पत्र किसी चतुर दासी के द्वारा पृथ्वीराज चौहान के पास भेजती है --

कग्गर अप्पह राज कर । मुष जंपह इह बर ।
गौरी रतो तुअ धरनि । तं गोरी रस रत ।[१३८]

उक्त विवरण में अतिरंजना सम्भव है, किन्तु इतना अवश्य आभासित होता है कि तत्कालीन भारत में रानियां राज्य कार्य में योग दान करती थीं, जिसकी पुष्टि ऐतिहासिक तथ्यों से भी होती है ।[१३९]

राजा की अनुपस्थिति में राज्य संचालन एक प्रधान मन्त्री के द्वारा किया जाता था । इसे मंत्रीस तथा मंत्रिय-प्रधान की संज्ञा से पृथ्वीराज रासो में अभिहित किया गया है --

राजकाज दाहिम्म । रहै दरबार अप्प बर । आषेटक दिल्लिय- नरेसं षेलै कमंध डर । देस भार मंत्रीस राव उद्धरसुधारै । न को सोम चंपवै । इह तप्पै सु करारै ।[१४०]

\+ \+ \+

पंग वचन मन्त्रीस डर मन मिट्टयौ न प्रमान ।[१४१]

\+ \+ \+

तब सुमन्त्र मन्त्रिय प्रधान । उच्चरिय राजबर ।[१४२]

यह उल्लेख भी प्राप्त होता है कि प्रधान मंत्री को राजा के प्रतिनिधि के रूप में राजा की ही प्रतिमा समझा जाता था --

राजं जा प्रति मां स बान धर्मा रामा रमै सा यतीन[१४३]

पृथ्वीराज रासो में यह निर्दिष्ट है कि पृथ्वीराज चौहान के मृगया-हेतु गमन पर उनका प्रधान मन्त्री योगिनीपुर का रक्षा-भार वहन करता है--

तिहि तप आषेटक भयउ थिर न रहइ चहुआन
वर प्रधान गुग्गिन पुरइ घर रष्षइ परवान[१४४] ।

बीसलदेव भी अपने प्रधानमंत्री को बुलाकर मंत्रणा करता है --

बुल्लाय लये मन्त्रीप्रधान । सर रची बुद्धां पुहकर समान[१४५]

इसी प्रकार भोला भीम[१४६], भीमदेव[१४७], जयचन्द[१४८], कांगड़ा नरेश[१४९] भी अपने प्रधान मन्त्रियों के द्वारा राज्य-संचालन में सहयोग प्राप्त करते हैं । चन्दबरदायी के द्वारा प्रधान मन्त्री के मनोनयन हेतु ब्राह्मणों को प्राथमिकता प्रदान करने का उल्लेख प्राप्त होता है। कवि ने क्षत्रिय, वैश्य और कायस्थ को प्रधान मन्त्री पद पर आसीन करने के लिए राजाओं को वर्जित किया है --

क्षत्रि होय परधान साय षंडों दिल्लावै ।
साह होय परधान भरै घर राज षंमावै ।
कायथ होय परधान अहोनिस रहै पियंतौ
बंमन होय प्रधान सदा रष्षवै अचिंत्यौ[१५०] ।

किन्तु रासो काव्यों में चन्दबरदायी की उक्त मान्यता को पूर्णरूपेण प्रश्रय नहीं मिला है,क्योंकि पृथ्वीराज चौहान का प्रधान मन्त्री क्षत्रिय था और सारंगदेव का प्रधान मन्त्री कृपाल नाम का कायस्थ एवं बीसलदेव का तोमर प्रधान मंत्री उल्लिखित है[१५१] । प्रधानमंत्रियों के कार्य कलाप में न केवल राजा की अनुपस्थिति में राज्य-संचालन का कार्य था, वरन् उनके द्वारा अन्य अनेक कार्य भी सम्पादित कराये जाते थे । प्रधानमन्त्री कृपाल राज्यकोष के के साथ बीसल-संज्ञक सरोवर के किनारे राजाज्ञा पाकर पड़ाव डालने जाता है[१५२] । इसीप्रकार

बीसलदेव तथा बालुकाराय के बीच सन्धि कराने का कार्य प्रधानमंत्रियों के द्वारा सम्पन्न कराया जाता है[१५३]। अनंगपाल के द्वारा दिल्ली राज्यार्पण का प्रपत्र कैमास को हस्तान्तरित किया गया था[१५४]। प्रधानमन्त्री सुमंत के द्वारा राजा जयचन्द को राजसूय यज्ञ के पूर्व यह मन्त्रणा दी जाती है कि रावल समर विक्रम को अपने पक्ष में मिलाया जाय[१५५] तथा जयचन्द भी इस कार्य के लिए अपने प्रधान मंत्री को ही भार सौंपते हैं[१५६]। बीसलदेव की चरित्रहीनता से त्राण पाने के लिए उनके राज्य के व्यक्ति प्रधानमंत्री से मिलते हैं[१५७]। प्रधानमंत्री राजा को जन-रोष की जानकारी कराते हुए उन्हें विद्रोहियों के प्रशमन हेतु अजमेर से बहिर्गमन की सलाह देता है[१५८]। इसी प्रकार पृथ्वीराज चौहान के प्रधान मंत्री मधुशाह (कैमास वध के उपरान्त) की भर्त्सना प्रजा वर्ग करता है, क्योंकि वह राज्य कार्य के प्रति अन्यमनस्क रहता था[१५९]। प्रधानमंत्री के कार्यों में दुश्मन राजाओं के राज्य में गुप्तचर भेजने का कार्य भी था[१६०]। राजाओं की अनुपस्थिति में वह आक्रान्ताओं के विरूद्ध संघर्ष-संचालन भी करता था[१६१]। तत्कालीन प्रधान या प्रधानमंत्री का कार्य अभ्यागतों का आतिथ्य-सत्कार भी था। रावल समर विक्रम का स्वागत पृथ्वीराज चौहान का प्रधान मंत्री करता है[१६२]। प्रधानमंत्री के द्वारा दूसरे राज्यों में विविध सन्देश भी भेजने का कार्य किया जाता था[१६३]। राजा के द्वारा किसी प्रकार की भी कार्य-निष्पत्ति-पूर्व प्रधानमंत्री से मन्त्रणा ली जाती थी। पृथ्वीराज चौहान अपने प्रधानमंत्री कैमास से परामर्श करते हैं[१६४]। और कैमास की ही मन्त्रणा के अनुसार कार्य सम्पादन भी करते हैं[१६५]। जयचन्द के द्वारा राजसूय यज्ञ सम्बन्धी प्रधानमन्त्री के परामर्श की अवज्ञा की जाती है[१६६] और उसकी वह निन्दा भी करते हैं[१६७]। पृथ्वीराज चौहान के आक्रमण करने पर कांगड़ा

का राजा अपने प्रधान मंत्री से परामर्श करता है[१६८]। प्रधानमन्त्री पद के उपर्युक्त अधिकारों और कर्तव्यों की पुष्टि ऐतिहासिक आधारों पर डॉ० अल्तेकर,[१६९] डॉ० राजबली पाण्डेय[१७०] तथा डॉ० दशरथ शर्मा[१७१] के द्वारा भी की गयी है। यहां यह उल्लेखनीय है कि कहीं-कहीं रासो काव्यों में 'प्रधान' संज्ञा का प्रयोग प्रधान-मन्त्री के लिए नहीं किया गया है यथा संयोगिता का प्रधान, अतिथियों के भोजन करते वक्त यह कहता है कि यदि भोजन में कहीं कोई कमी रह गयी हो तो वह उसके लिए क्षमा प्रार्थी है। और वह प्रधान भोजन करने वालों के ऊपर पंखा भी झलता है[१७२]। प्रधानमन्त्री के उपरान्त सर्वाधिक महत्वपूर्ण पद राजपुरोहित का दृष्टिगोचर होता है। शस्त्र और शास्त्र दोनों के क्षेत्र में राजगुरु या पुरोहित प्रतिभापूर्ण रहता था[१७३]। पृथ्वीराज रासो में चालुका राय द्वारा आक्रान्त होने पर पृथ्वीराज चौहान अपने गुरु राम से युद्ध-मंत्रणा करते हैं[१७४]। इसी प्रकार परमार्दिदेव भी अपने राजगुरु से परामर्श करते हैं[१७५]। चन्दवरदायी ने गुरु राम को अपनी मंत्र शक्ति के द्वारा मुहम्मद गोरी के सैनिकों को संज्ञा रहित करते हुए चित्रित किया है[१७६]। पृथ्वीराज रासो में यह विवरण भी प्राप्त होता है कि सभी सामन्त और चन्दवरदायी केवल धनलोलुप हैं और दिल्ली राज्य के शुभचिन्तक केवल गुरु राम पुरोहित ही हैं[१७७]। मुहम्मद गोरी से युद्ध होने से पूर्व गुरुराम पुरोहित, जालपा मंत्र के द्वारा शारीरिक रक्षा-कवच प्रदान करते हैं[१७८]। राजगुरु का स्थान भारतवर्ष में प्राचीनकाल से ही अति उच्च था। डॉ० अल्तेकर के अनुसार वह राजा का गुरु था[१७९]। कौटिल्य ने भी प्रधानमंत्री के उपरान्त राजगुरु का स्थान निश्चित किया था[१८०]।

तत्कालीन भारत में राजा के कार्य में सहयोग देने के लिए एवं विविध राज्य-समस्याओं के सम्बन्ध में एक प्रभावहीन सभा भी रहती थी --

भट्ट वयन सुनि सुनि सोइ कानहु ।
अप्पु अप्पु गये ग्रेह परानहु ।[181]

राजा की सभा अथवा दरबार का उल्लेख पृथ्वीराज रासो में कई स्थलों पर पृथ्वीराज चौहान ,जयचन्द और मुहम्मद गोरी के सन्दर्भ में प्राप्त होता है[182] । महाराज जयचन्द के दरबार का उल्लेख पृथ्वीराज चौहान के आक्रमण के समय इस प्रकार किया गया है --

दरबार मई इतौ जउ पुकार ।
थकि बेद विप्रप माननो स गान[183] ।

पृथ्वीराज चौहान के दरबार में महाराज जयचन्द के दूतादि का आना पृथ्वीराज रासो में उल्लिखित है --

उतरे आनि दरबार तथ्थ[184] ।

सभा या दरबार में सम्राट् तख्त अथवा सिंहासन पर विराजमान होता था --

तउ ढिल्लिय्र तषत देहुं प्रथिराज[185] ।

+

प्रथीराज सिंहासन ठयउ[186] ।

राजसभा अथवा दरबार के अन्तर्गत सामन्त,शूर,भूप और निष्णात विद्वान् अथवा गुणीजन रहते थे । चन्दवरदायी के द्वारा कन्नौज के दरबार में सामन्तों और शूरों के बीच कविता की गयी --

सकल सुर सामंत घन मधि कविता कियं कं[187] ।

दिल्ली के दरबार में दूत के साथ कन्नौज से सामन्त वीर आते हैं --

बंधु समेत सामंत सथ्थ[188] ।

पृथ्वीराज रासो में संयोगिता गर्व के साथ कहती है

कि पृथ्वीराज चौहान के सोलह सामंत हैं--

षटदह जिहि सामंत सोह प्रथीराज कोह[१८९] ।

तत्कालीन राजदरबारों के शूर धन-धान्य से पूर्ण थे[१९०] । चन्दवरदायी के द्वारा भी जयचन्द-दरबार के शूरों को मंगल, बृहस्पति, बुध, शुक्र और शनि आदि के समान उदित होते हुए उनके बीच महाराज जयचन्द को चन्द्रमा के समान निरूपित किया है-- मंगल गुरु बुध, शुक्र,शनि सकल सूर उदै दिट्ठ ।

आत पत्र ध्रुव तिम तपइ सुम जयचंद बयिट्ठेठ[१९१] ।।

इसी प्रकार कैमास बध के बाद पृथ्वीराज चौहान ने केवल शूरों को ही सभा का आह्वान किया था --

सकल सूर बोलिक सम मंडिप[१९२] ।

चन्दवरदायी ने जयचन्द के दरबार में मुकुटबन्ध और सर्वलक्षण सम्पन्न भूपों का उल्लेख किया है --

मुकुट बंध सवि भूप इहं लच्छन सर्वं संयुक्त ।

बरनहि किनि उनहारि रहि कहि चहुआन स उत्त[१९३] ।

विविध विद्वान राजदरबारों में उपस्थित रहते थे । चन्दवरदायी के द्वारा इन गुणीजनों का उल्लेख किया गया है --

आयस मद्दु गुनि जन बाहउ[१९४] ।

मुस्लिम राज दरबारों में शाहजादों जो कि अनेक वर्णों के के होते थे, की उपस्थिति का विवरण पृथ्वीराज रासो में प्राप्त होता है --

तब सहाब सम उबरयउ मियां मलिक्क जु खान

षाड बंद संयुहि चले वै बोलह सुरतान[१९५] ।

रासो काव्यों में राजकीय संदेश प्रेषित करने के लिये दूत भेजे जाते थे, इन्हें वकील भी कहा जाता था[196]। दूत कार्य के लिए पृथ्वीराज चौहान ने रावल समर विक्रम के पास अपने काका कन्ह चौहान को भेजा था[197]। चन्द पुण्डीर को भी दूत कार्य सौंपा था[198]। महाराज भोला भीम के पास एक 'भाट' को पृथ्वीराज चौहान द्वारा आधीनता स्वीकार करने का संदेश लेकर भेजा जाता है[199]। यह भाट आडम्बर पूर्ण, विचित्रवेष धारण करते थे,[200] दूतों के अतिरिक्त दूतो का प्रयोग भी रासो काव्यों में है। राज्य कार्य-निष्पत्ति हेतु पृथ्वीराज रासो में जयचन्द के द्वारा संयोगिता को समझाने के लिए दूतियों की सहायता की जाती है --

परठ्ठिठ पंगराइ दूति सुतीय बालि मुक्कमे
साम दान दंड भेद सारसं वियष्छाने।
जे ग्रीव ग्रीव तार तार नैन सेन मंडिही।
जे बचन्न विध्धि निध्धि धीर हो सुजानंष हिंडी
अनेक बुध्धि सुध्धि सब्ब मुच्छि काम जग्गवइ
ते प्रचारि काम च्यारि जाम अंगन समुझम्म वइ।[201]

मुहम्मद गोरी के द्वारा अपने सेना नायकों से यह आकांक्षा व्यक्त की जाती है कि वह अपने अभियान में जहां कहीं भृत्य मिले उन्हें अपने साथ ले आयें --

मग्गहु अाम्म भृत संग।[202]

पृथ्वीराज चौहान के सामन्त कन्नौज गमन पर अपने को 'भृत्य' संज्ञा से अभिहित करते हैं --

जु सउ भृत मझिझ एक भृत होइ।
सो नृप युवति न मुंकइ कोई।[203]

रासो काव्यों से यह प्रतीत होता है कि द्वारपाल, दरबान, और हेजुम प्रतिहारों के मुखिया के रूप में कार्य करते थे --[२०४]

राज मज्झिम संभयउ पट्ट दरबान परट्ठिय ।

++ ++ ++

थापउ नु पोलि जिम दरव्वान ।

इनका कार्य राजा को अभ्यागतों का संदेश देना[२०५] तथा उन्हें राजाओं के पास तक पहुंचाना था[२०६] । मुहम्मद गोरी और जयचन्द के हेजुम का उल्लेख पृथ्वीराज रासो में उपलब्ध होता है[२०७] । हेजुम के साथ ही रासो काव्यों में प्रतिहार संज्ञक कर्मचारी का उल्लेख मिलता है जो कि सोने से मढ़ी हुई छड़ी रखते थे और जिनका शारीरिक गठन बलिष्ठ था साथ ही वह लम्बे-चौड़े शरीर वाले भी थे[२०८] । पृथ्वीराज रासो में `नकीब` का उल्लेख विभिन्न सैन्य-सन्देशों को सैनिकों तक प्रेषित करने के लिए हुआ है[२०९] । परमाल रासो में भी नकीब का उल्लेख किया गया है[२१०] । रासो काव्यों में विभिन्न काव्य-गुणों से युक्त `दसौंधी` का उल्लेख प्राप्त होता है जो कि किसी को भी काव्य-प्रतिभा का परीक्षण करने के लिये नियुक्त किये जाते थे[२११] । चन्दबरदायी को भी जयचन्द से मिलने का अवसर तभी प्राप्त होता है, जब कि जयचन्द का दसौंधी चन्दरबरदायी को काव्य-प्रतिभा युक्त घोषित कर देता है[२१२] । `खवास` संज्ञक वैयक्तिक सहायक सम्राटों और सुल्तानों के साथ रहता था । चन्दबरदायी ने पृथ्वीराज चौहान को जयचन्द की राजसभा में पान लेकर साथ चलने वाले खवास के रूप में चित्रित किया है[२१३] । मुहम्मद गोरी का खवास मुहम्मद गोरी के बन्द हो जाने पर अन्न और जल ग्रहण नहीं करता[२१४]

मुस्लिम दरबारों में प्रधान मन्त्री के स्थान पर `वज़ीर` संज्ञक अधिकारी का उल्लेख हुआ है । मुहम्मद गोरी युद्धकाल में अपने वज़ीर ततार खां से विचार-विमर्श करते हैं[२१५] । ततारखां के द्वारा मुहम्मद गोरी को पृथ्वीराज के कुल का वध न करने की मन्त्रणा दी जाती है[२१६] । मुहम्मद गोरी की मुक्ति हेतु पृथ्वीराज चौहान के पास प्रार्थनापत्र वज़ीर के द्वारा ही प्रेषित किया जाता है[२१७] । वज़ीर, आलोच्यकाल में युद्ध क्षेत्र में भी सुल्तानों के साथ ही जाते थे । मुहम्मद गोरी और पृथ्वीराज चौहान के बीच हुए युद्धों में ततारखां सदैव भाग लेता हुआ दिखाया गया है[२१८] ।

परमाल रासो के अन्तर्गत कायस्थ को `दीवान` का कार्यभार सौंपा गया है[२१९]। परमाल रासो में ही `भण्डारी` को स्वर्ण-भण्डार का अध्यक्ष निरूपित किया गया है[२२०] । आलोच्यकालीन भारत युद्ध-प्रियता का भारत है[२२१] । युद्ध हेतु पृथ्वीराज चौहान सदैव सन्नद्ध रहता है[२२२] । युद्ध के लिए रासो काव्यों में जंग[२२३], जुध्ध[२२४], दंग[२२५], रण[२२६], रन[२२७], विग्रह[२२८], सग्गामि[२२९], रणं[२३०], राधरा[२३१], रणक्षेत्र[२३२], कान्कल[२३३], अखारे[२३४] आदि संज्ञाओं का प्रयोग किया गया है । रणक्षेत्र के लिए तीर्थ स्थान के समान पवित्रता का द्योतन किया गया है --

धार तित्थ उरि जांनि फिरउ पंमार न्हान तह[२३५] ।

रणवीरों का प्रशस्ति-गान देवता करते हैं[२३६] और उनका अभिनन्दन अप्सरायें करती हैं[२३७]--

जय जय कहि सहु देव ।

\+ + +

अमिय कलस आयास लिवउ अच्छरी उछंग ।

रासो काव्यों में अनेकश: वीरों के शौर्य का गान हुआ है । वीरों के युद्ध से आकाश-पाताल और धरती कांप उठती है[२३८] ।

शेषनाग भयान्वित हो जाते हैं[239]। इन्द्र दैन्य प्रदर्शन करते हैं[240]। शंकर को डमरू डिम-डिम नाद करने लगता है[241]। शेष नाग प्राण रक्षा का मोल मांगते हैं[242]। धरती अश्वटापों से फटने लगती है[243]। आसमान धूम्राच्छन्न हो जाता है[244]। इस प्रकार शूरवीर भयंकर युद्ध करते हुए चित्रित किये गये हैं। यह वीर धरती और पर्वत को अपनी शक्ति से हटा सकते हैं --

जि भर भुमिह ठिल्लन कहइं स मेरु भरहिं मनु वदाथ
इहि सथ्थहि सामंत सुभट ज वह ठिल्लहिं गय दंत।[245]

बीसलदेव रासो तथा कबूलो रास के[246] अन्तर्गत राजाओं का युद्धक्षेत्र में वीरगति को प्राप्त करना तृण से भी कम महत्व का माना गया है। पृथ्वीराज रासो में भी मरण श्रेयस्कर समझा गया है। पृथ्वीराज चौहान रणभूमि में प्राणोत्सर्ग की आकांक्षा व्यक्त करता है --

दक्खिन करि कनवज्जकउ फुनि संमुह मरण जज।[248]

रणक्षेत्र में अपने स्वामियों के लिए प्राणोत्सर्ग हंस-हंस कर किया जाता था[249]। महाराज जयचन्द के म्लेच्छ सैनिक भी स्वामिभक्ति पूर्वक रणक्षेत्र में धराशायी होते हैं[250]। रासो काव्यों में राजाओं, सामन्तों और वीरों के अनेक शौर्य चित्र एवं युद्धस्थलों के विवरण प्राप्त होते हैं। युद्धों के कारणों में कन्या-अपहरण[251], शौर्यप्रदर्शन[252], धन-प्राप्ति[253] तथा महत्वाकांक्षा[254], सीमा रक्षा तथा दुष्ट-दमन[255] प्रमुख हैं। जिनके परिणाम भयंकर होते थे। शक्ति का ह्रास होता था[256]। अंततोगत्वा पराभव मिलता था[257]। मृत्यु का वरण करना पड़ता था[258]। यदि प्राण रक्षा हो भी

जाती थी तो विविध यातनायें दण्ड के रूप में सहनी पड़ती थीं।[२५९] जनजीवन आशंकाग्रस्त रहता था[२६०] तथा असुरक्षा की भावना व्याप्त रहती थी।[२६१]

विवेच्यकालीन भारतवर्ष रणभेरियों और रण-केलियों की लीलाभूमि है, जिसका मेरुदण्ड सैन्य-बल अभिहित किया जा सकता है। किसी भी राज्य की सैन्य-शक्ति में अधिकांश सामंतों और अधीनस्थ राजाओं की सेना का योगदान रहता था। रासो काव्यों के अन्तर्गत युद्धक्षेत्रों में सामन्त सेनाओं का बाहुल्य प्रदर्शित है।[२६२] पृथ्वीराज चौहान सामन्त शक्ति पर ही अपने को शासनारूढ़ प्रदर्शित करते हैं।[२६३] पृथ्वीराज चौहान का प्रत्येक सामन्त एक हजार योद्धाओं के समकक्ष निर्दिष्ट किया गया है और इस प्रकार के सौ सामन्त उनके साथ थे।[२६४] पृथ्वीराज चौहान अपनी लज्जा-रक्षा सामन्तों द्वारा ही मानते हैं।[२६५] सामन्तों के परामर्श से ही राज्यकार्य सम्पादित करने का उल्लेख पृथ्वीराज रासो में है।[२६६] मुहम्मद गोरी की सैन्य-शक्ति भी 'खान' और 'मीरों' की लघु सेनाओं के सहयोग पर आधारित है।[२६७] पृथ्वीराज रासो में यह विचार व्यक्त किया गया है कि पृथ्वीराज चौहान शौर्य के कारण तथा जयचन्द सैन्यबल के कारण राजाओं के भी राजा हैं--

जोग्गिनपुर पति सूरो पारस भिसि पंगु रायेस।[२६८]

महाराज जयचन्द को अपनी विशाल सेना पर अभिमान है[२६९] और उसके द्वारा प्रयाण करने पर धरती कांपती है।[२७०] तत्कालीन सेना के अन्तर्गत प्रमुख अंगों में जलसेना का स्पष्ट उल्लेख नहीं मिलता, केवल इतना ही संकेत है कि पृथ्वीराज चौहान[२७१] और मुहम्मद गोरी[२७२] नाव के

द्वारा नदी पार करते हैं ।

रासो काव्यमें स्थल सेना के लिए चतुरंगिणी विशेषण का प्रयोग किया गया है--

चमके चवरंग सनाह घन ।[273]

चन्दबरदायी ने महाराज जयचन्द के हाथियों, घोड़ों और दल को अप्रतिम बताया है।[274] पृथ्वीराज चौहान के साथ युद्ध में जयचन्द के हाथी, घोड़े, पुरुष और 'सार' का विखंडित होना चित्रित किया गया है --

विषहर पट्ट परिव हय गय नर भार सार षडेन
रहरोस पंग भरिव उध्धरियं वीर विवेन[275]

यह भी उल्लेख चन्दबरदायी ने किया है कि युद्धक्षेत्र से वापस होते ही महाराज जयचन्द चिन्ता निमग्न हुए, क्योंकि उनके हाथी, घोड़े, वाहन और रथ नष्ट-भ्रष्ट हुए थे।[276] रासो काव्यों के द्वारा यह आभास मिलता है कि तत्कालीन सेना के प्रमुख अंगों में तोपखाना भी प्रयुक्त होने लगा था --

सु आगे अधनारि अपार सजुं ।
तिन देषत काइर दूरि भजुं ।[277]

निष्कर्षत: तत्कालीन सेना के इतिहास-सम्मत ६ प्रमुख अंग परिगणित किये जा सकते हैं,[278] जिसमें तत्कालीन भारत में पैदल सेना, हस्ति सेना, अश्वारोही, तोपची, परिगण्य हैं । रथ सेना का भी नामोल्लेख मात्र ही प्राप्त होता है । यह भी प्रतीति है कि इस काल में रथों के स्थान पर तोपखाने का प्रयोग होने लगा था । पृथ्वीराज-रासो में केवल परम्परा विहित ही रथ शब्द का प्रयोग निवेशित है ।[279]

मुहम्मद गोरी और पृथ्वीराज चौहान अपनी हस्तिसेना को युद्धक्षेत्र में सेना के आगे रखते थे[280]। तत्कालीन राजा गण अपनी सेनाओं के लिए हाथियों की संख्या बढ़ाने के लिए प्रयत्नशील रहते थे। पृथ्वीराज चौहान मुहम्मद गोरी से दण्ड के रूपमें हाथी भी लेते हुए दिखाये गये हैं[281]। पृथ्वीराज चौहान जंगलों से हाथी पकड़वाने का आदेश देते हैं[282]। निश्चय ही तत्कालीन भारत में हाथियों की उपयोगिता अत्यधिक आंकी गयी है।

हस्ति-सेना की ही तरह घोड़ों का भी महत्व सैन्य-शक्ति के लिये अत्यधिक था। पृथ्वीराज रासो के अन्तर्गत यह विचार व्यक्त कियागया है कि किसी भी राजा का राज्य अश्वारोहियों की सेना और घोड़ों की टापों पर ही आधारित होता है[283]। तत्कालीन भारत में देश-विदेश के विभिन्न जातियों के घोड़े विदेशी व्यापारियों द्वारा बिक्री के लिए आते हुए पृथ्वीराज रासो में दिखाये गये हैं[284]। पृथ्वीराज चौहान[285], मुहम्मद गोरी[286] और महाराज जयचन्द[287] सर्वत्र घोड़ों पर सवार होकर ही युद्ध करते हुए चित्रित किये गये हैं। रासो काव्यों में हाथियों[288], और घोड़ों[289] के अनेक प्रकार का उल्लेख प्राप्त होता है।

पदाति सेना के रूप में सम्राटों और सुल्तानों के पास सैनिकों का विशाल समूह रहता था। रासो काव्यों के अनुसार पृथ्वीराज चौहान[290] की पैदल सेना में ७० हजार सैनिक थे। जयचन्द की पदाति सेना ८० लाख[291] बतायी गयी है तथा मुहम्मद गोरी की फौज में १० लाख अश्वारोही, १० हजार हस्ति सैनिक और असंख्य वीर सैनिक थे[292]। इतिवृत्तात्मक साक्ष्यों के आधार पर भी उक्त विवरण की पुष्टि होती है[293]।

पृथ्वीराज रासो और परमाल रासो[294] के अन्तर्गत सैन्य पताकाओं के लिए 'ध्वजा' शब्द का प्रयोग मिलता है। पृथ्वीराजरासो

के अन्तर्गत नाहरराय तथा पृथ्वीराज चौहान की सेना में नी रंग की ध्वजायें फहराती हैं।[295] साथ ही मुहम्मद गौरी की फौज में भी पताका का रंग सफेद वर्णित किया गया है।[296] परमाल रासो में भी मलिखान की सेना में पृथक्-पृथक् पताकाओं से युक्त सैन्यदल दिखाये गये हैं जिनके लाल, पीले, सफेद, हरे, और श्याम रंग के निशान हैं।[297]

रासो काव्यों के द्वारा यह ज्ञात होता है कि जब सेनायें प्रस्थान करती थीं तब युद्ध के लिए साज-सज्जा के समय युद्ध का आरम्भ करते समय विजय का उद्घोष करने के लिए अथवा शूरवीरों को रण-उन्मत्तता हेतु विविध वाद्य बजाये जाते थे। इसके अतिरिक्त राजकीय यात्राओं, अनेक मंगलमय अवसरों पर `निशान` बजते थे। परमाल रासो, पृथ्वीराज रासो आदि में विभिन्न वाद्य-यन्त्रों का उल्लेख प्राप्त होता है। परमाल रासो में `बम्ब` बजाये जाने का उल्लेख प्राप्त होता है।[298] परमाल रासो में ही `मृदंग`, बांसुरी, शंख, शहनाई, करनाल, तारतूमा, चौतार, ताब, बीन, झांझ, मंजीर, रणतूर्य, जंगी ढोल, तथा मुह-चंग आदि रणवाद्यों का बजाया जाना प्रदर्शित किया गया है।[299] पृथ्वीराज रासो के अन्तर्गत इसी प्रकार के अनेक वाद्यों का उल्लेख चन्दवरदायी ने किया है, जिनमें डमरू, नफेरी, तबल, भेरी, शारंग, सावझ, उपंग, काहल बाक सिंग, तहूर, घनघंट और आवझ, आदि प्रमुख हैं।[300]

रासो काव्यों में सैनिकों को शरीर-रक्षा हेतु अनेक प्रकार के रक्षा-साज धारण कराये जाते थे। पृथ्वीराज रासो में सैनिकों के सिर पर टोप पहनने का उल्लेख प्राप्त होता है--

हुरै टोप टूंक सुज्झुलंत दासैं । मनो बंद तारा नबै हुत्थरो सैं ।[301]

पृथ्वीराज रासो में ही लोहे की झालरयुक्त झिलम-टोप का उल्लेख प्राप्त होता है, जिसे रणक्षेत्र में जाने के पूर्व सैनिकों का पगड़ा के ऊपर पहना दिया जाता था --

हते सूरमा पाग पै झिलम डारैं । उतं फंडरं रंग संवारै ।[302]

परमाल रासो और पृथ्वीराज रासो के अन्तर्गत सैनिक शरीर-रक्षा हेतु युद्ध क्षेत्र में 'बख्तर' का प्रयोग करते हुए दिखाये गये हैं ।[303] पृथ्वीराज रासो में ही जब योद्धागण रणक्षेत्र में जाते थे, तब अपनी गर्दनों की रक्षा के लिए 'कण्ठ शोभा' धारण करते थे --

सुयं कंठ सोभा सरं टोप सोभा ।
ससी अष्टमी अद्धये मांन लोभा ।[304]

अपनी भुजाओं की रक्षा के लिए शूरवीर दस्तानों का प्रयोग करते थे जिन्हें पृथ्वीराज रासो में 'हाम' संज्ञा से अभिहित किया गया है --

तिनं हाथ ले हाम सज्जे उपाईं ।
तिनं की मयूखं रवि होड लाईं ।[305]

रणक्षेत्र में टांगों की रक्षा के लिए 'राग' बांधा जाता था । परमाल रासो में सैनिकगण राग बांधते हुए चित्रित किये गये हैं --

इते सूर रागं बधे ताउ संगं ।
उतै अपसरा बरनियं पहिरंगं ।[306]

इसी प्रकार पृथ्वीराज रासो के अन्तर्गत मुहम्मदगोरी के द्वारा धीर पुण्डीर को प्रदत्त अश्व, पाखर, राग और बाघ के द्वारा सजाये जाते हैं --

जो सुरता नह पाट । तुरिय सोई पल मायौ ।
राग बाग पष्षर समेत । तहाँ तुरत निवा ज्यौं । [307]

युद्धभूमि में प्रस्थान करने के पूर्व सैनिक, श्रृंखला निर्मित राग बांधते हैं --

मौजह झलहं धरि, राग तवं परि, सज्जि अंग लरि कर ढारं । [308]

रासो काव्यों के द्वारा यह स्पष्ट होता है कि युद्धक्षेत्र में सेनाओं की व्यूह रचना की जाती था । परमाल रासो के अन्तर्गत आल्हा-ऊदल और लाखन व्यूह रचना के सम्बन्ध में पारस्परिक विवाद करते हैं । इसी प्रकार पृथ्वीराज रासो में भी वीसलदेव और बालुकाराय के बीच युद्धक्षेत्र में चक्रव्यूह और सर्पव्यूह का प्रयोग किया जाता है । [309] इसी प्रकार रावल समर विक्रम भी चक्र-व्यूह का गठन करते हुए चित्रित किये गये हैं । [310] अन्यत्र मयूर-व्यूह, [311] पान-व्यूह [312] और गरुड-व्यूह [313] के भी उल्लेख प्राप्त होते हैं ।

परमाल रासो के अन्तर्गत प्रयुक्त होने वाले अस्त्र-शस्त्रों में गुर्ज, गदा, केहरिनख, खंजर, असि, जंजाल, तोमर, परिघ, धनुष-बाण, फरसा, बगुदा, बांक, सिंघिन और सेल आदि का उल्लेख किया गया है --

चलिय बान जंजाल तोप तोमर असि चल्लहि ।
जाय परस्पर लरहि मार कट्टारिन षिल्लहिं ।
सिंघिन अरु गुरजान परिघ विधुबानि पहिचलि ।
भिण्डपाल असिपुत्र बांक बगुदानहि आमल ।
गहिपेस कवच फरसा सुलिय षंजर मारन आरव
अग्न्यसस्त्र रंजक घलिय जोगी या वन चाल्लियव [314]

पृथ्वीराज रासो में युद्धक्षेत्र में प्रयुक्त होने वाले हथियारों का विवरण प्राप्त होता है, जिसमें गुर्ज, गुप्ती, जम्बुरा, तलवार, तुपक, नागमुखी, सांग, शक्ति, सेल आदि का प्रयोग मिलता है । [315] पृथ्वीराज-

रासो के अन्तर्गत सैनिकों के लिए अनेक अस्त्र-शस्त्रों सहित रणभूमि में प्रयाण का चित्रण किया गया है और इनकी सूची भी प्रस्तुत की गई है।[३१६] पृथ्वीराज चौहान को लक्ष्य-भेदी बाण-विद्या में प्रवीण चन्दवरदायी ने चित्रित किया है।[३१७]

तत्कालीन युद्धों में राजागण स्वतः रणक्षेत्र में उपस्थित रहते थे और सैनिकगण भी आपत्तिकाल में अपने नरेशों का पूर्णरूपेण साथ निर्वाह करते थे। रणभूमि से अपने स्वामी को छोड़कर पलायन करना नरकगामी होना माना जाता था --

लरहि स्वामि जो सुभट पराइय ।
वर्ष सहस तन नर्क पराइय ।[३१८]

परमाल रासो[३१९] तथा पृथ्वीराज रासो[३२०] के अन्तर्गत कई स्थलों पर यह परिलक्षित होता है कि सम्राट् अथवा सेनानायक के पतन के साथ ही सैनिक-गण पलायन कर जाते थे।

तत्कालीन राज्य व्यवस्था के अन्तर्गत हारे हुए दुश्मनों तथा अन्य अपराधियों को कठोर दण्ड दिया जाता था। पृथ्वीराज रासो के अन्तर्गत चन्दवरदायी ने अपराधी को कोल्हू में पिलवाने अथवा कोल्हू चलवाने का उल्लेख किया है --

डंड भरइ चक्कवै पिसुन परै कोल्हू बर ।[३२१]

कानपर्यन्त गाल फाड़ने की दण्ड व्यवस्था का भी उल्लेख पृथ्वीराज रासो में मिलता है।[३२२] मृत्युदण्ड का भी संकेत प्राप्त होता है[३२३]। मोहम्मदगोरी ने पृथ्वीराज चौहान की आँखें निकलवायी थीं[३२४]। कभी-कभी

शत्रुपक्ष से पुत्र को सेवकरूप में मांगा जाता था और सन्धि हेतु राज्य के कुछ भाग को भी मांगा जाता था । मुहम्मद गोरी पृथ्वीराज चौहान से आधा पंजाब और राजकुमार रैनसी को मांग करता है[325] । विवेच्यकाल में सैन्य-शक्ति विकेन्द्रित थी । केन्द्रीय और निजी सेना के अतिरिक्त अधानस्थ राजागण माण्डलिक और सामन्तों की भी सैन्य टुकड़ियां रहती थीं, सेना की व्यवस्था के लिये सामन्तों को जागीरें दी जाती थीं । पृथ्वीराज रासो में लोहाना को आजानु बाहु की उपाधि दी जाती है । पांच हजार गांव प्रदान किये जाते हैं, ५०० घोड़े , ५०० ऊंट, १८ हाथी और ५०० दासियां देते हुए पृथ्वीराज चौहान उन्हें अपना सामन्त नियुक्त करते हैं[326] । इसी प्रकार चन्द पुण्डीर को भी ५ हजार गांवों की जागीर प्रदान करते हुए उन्हें अपना सामन्त बनाते हैं[327] । कनक परमार को १० हजार ग्राम और भोला भीम के भ्राताओं को कुछ गांव प्रदान करते हुए पृथ्वीराज चौहान ने अपना सामन्त बनाया था[328] ।

पृथ्वीराज रासो के अन्तर्गत वंश परम्परा के अनुसार भी जागीरें प्रदान की गईं । कन्नौज-युद्ध में वीरगति प्राप्त सामन्तों के वंशजों को जागीरें दी जाती हैं[329] । जागीरें छीनने की भी प्रथा धीर पुण्डीर और कैमास के सम्बन्ध में निदर्शित है[330] । हाहुलि हम्मीर पृथ्वीराज चौहान के द्वारा तिरस्कृत होकर मुहम्मद गोरी की ओर से युद्ध करता है --

> दरबार मेटी अदब्बं बढाई ।
> करी करी सीस हम्मीर राई ।[331]

पृथ्वीराज रासो के अन्तर्गत मुहम्मद गोरी के द्वारा भी अनेक उमराव और मीर एकत्र किये जाते हैं --

उम्मरामीर सब मिले आय । दिष्षनह धार पैजहपराय[332]

\+ \+ \+

सब उमराव बुलाई ढिग । मतौ मंडि सुविहान ।[333]

कभी-भी ऐसा भी होता था कि सामन्त विद्रोह की भूमिका का निर्वाह करने लगते थे । पृथ्वीराज एवं चौहान को लोहाना को दी गयी जागीर के लिए पुन: प्राप्ति हेतु संघर्ष करना पड़ता है ।[334] आपस में सामन्तगण विद्वेष-भावना से परिपूर्ण भी रहते थे । लोहाना की प्रतिष्ठा-वृद्धि से ईर्ष्यालु होकर पृथ्वीराज के अन्य सामन्त चामुण्डराय और जामराय आदि व्यंग्य करते हुए पृथ्वीराज रासो में चित्रित किये गये हैं ।[335] इसी प्रकार धीर पुण्डीर के द्वारा जैत-स्तम्भ-बेधन के उपरान्त पृथ्वीराज चौहान से जागीर प्राप्त होने पर चामुण्डराय आदि सामन्त ईर्ष्याग्रस्त हो जाते हैं ।[336] सामन्तों का ईर्ष्या भाव इस सीमा तक बढ़ गया था कि जैत राव के द्वारा धीर-पुण्डीर को मुहम्मद गोरी को पूर्व सूचना देकर बन्दी बनवा दिया गया था ।[337] ईर्ष्या के कारण ही चामुण्डराय को बेड़ी पहननी पड़ी थी ।[338] तात्कालिक विद्वेष और ईर्ष्या राजाओं और सामन्तों में सीमातिक्रमण कर गयी थी । इसके परिणामस्वरूप ही भोला भीम मुहम्मद गोरी के पास सन्देश भेजकर पृथ्वीराज चौहान को पराभूत करने की योजना बनाता है ।[339] मुहम्मद गोरी की ही सहायता से अनंगपाल दिल्ली राज्य के प्रत्यावर्तनहेतु पृथ्वीराज चौहान पर हमला करते हैं ।[340] जयचन्द की राज्यसभा में मुहम्मद गोरी का भाई उपस्थित रहता है ।[341] बालुका राव मुहम्मद गोरी का पक्षधर बनकर पृथ्वीराज चौहान से युद्ध करता है ।[342] निष्कर्ष यह है कि सामन्तों और राजाओं के पारस्परिक विद्वेष के कारण ही तत्कालीन भारत की राज्यशक्ति छिन्न-विच्छिन्न हुई ।

परमाल रासो में मुहम्मद गोरी के विरुद्ध सैन्य-संचालन हेतु पचास पान का बोड़ा परमार्दिदेव के द्वारा रखा जाता है[343]। और जिसे आल्हा उठाते हुए चित्रित किये गये हैं। परमाल रासो में ही हरिदास को राजा के द्वारा पृथ्वीराज चौहान के सैनिकों को खदेड़ने के लिए पान का बोड़ा दिया जाता है[344]। पृथ्वीराज रासो में भी पज्जुनराव को पान का बोड़ा भेजकर चालुकाराइ को कैद करने के लिए सन्देश दिया जाता है[345]। मुहम्मद गोरी के द्वारा और-पुण्डोर को परास्त करने के लिए बोड़ा दिये जाने का उल्लेख है।

तत्कालीन भारत में वीरों का सम्मान करने के लिए जागीरें दी जाती थीं। 'शिरोपाव' प्रदान किया जाता था, मार्ग में ही आगे बढ़कर अभिनन्दन करना आदि विधियां प्रयुक्त होती थीं। कूरंभराय के चालुक्यों के विरुद्ध विजयी होने पर पृथ्वीराज चौहान उसका स्वागत मार्ग में आगे बढ़कर करते हैं[347]। इसी प्रकार का सम्मान संजय राय के पुत्र को भी पृथ्वीराज चौहान देते हैं[348]। लंगराराय को भी आधा राज्य और अर्द्ध सिंहासन प्रदान करने का आश्वासन दिया जाता है[349]। चामुण्डराय को पृथ्वीराज चौहान अपनी तलवार भेंट करते हैं[350]। इसी प्रकार भोलाभीम के भ्राताओं को पृथ्वीराज चौहान जागीर और शिरोपाव प्रदान करते हैं[351]। परमाल रासो में भी आल्हा के द्वारा मनजूमनि के शौर्य-प्रदर्शन पर शिरोपाव प्रदान किया जाता है[352]।

आलोच्यकालीन भारत में कभी-कभी जब किसी किले में शत्रुपक्ष घेर लिया जाता था, तब आत्मसमर्पण करके धर्म की शपथ लेते हुए धर्म-द्वार की प्राथना की जाती थी। उक्त प्रथा के अनुसार किले में

ही एक लघु द्वार निर्मित किया जाता था।[353] मुहम्मद गोरी के द्वारा हांसी का किला घेर कर रणभूमि में प्राणोत्सर्ग या कि धर्मद्वार से बहिर्गमन दो में किसी एक का चयन करने का सन्देश प्रेषित किया जाता है।[354] किन्तु इस प्रकार के कार्य को क्षत्रियत्व के विरुद्ध माना जाता है।[355] परमाल रासो के अन्तर्गत धनपाल को युद्धक्षेत्र में प्रयाण के साथ ही अपनी रानियों को साथ ले जाने का उल्लेख है।[356] तत्कालीन योद्धाओं में जौहर-प्रथा अथवा मरण का खेल प्रचलित था। परमाल - रासो के अन्तर्गत ब्रह्मा तथा अन्य योद्धागण युद्ध-भूमि में अन्तिम युद्ध करने के लिए तत्पर दिखाये गये हैं[357] और वह रुद्राक्ष पहनते हैं तथा अपने शरीरों पर केशर लगाते हैं।[358] पृथ्वीराज रासो में ही रैनसी के द्वारा जौहर करने का संकल्प[359], अपने राजगुरु की मन्त्रणा पर किया जाता है और वह युद्धभूमि में ही वीरगति को प्राप्त होता है।[360]

परमाल रासो तथा पृथ्वीराज रासो आदि के अन्तर्गत विविध वेशधारी गुप्तचरों के क्रियाकलाप का ज्ञान होता है। मलिखान की सैन्य-शक्ति के सम्बन्ध में पृथ्वीराज चौहान के गुप्तचर सन्यासियों के परिवेश में जाते हैं।[361] मुहम्मद गोरी के गुप्तचर पहरेदार की वेशभूषा धारण करके पृथ्वीराज चौहान की स्थिति की जानकारी करते हैं।[362] इसी प्रकार मुहम्मद गोरी के गुप्तचर सूफ़ियों के वेश में भ्रमण करते हुए सूचनायें संकलित करते हैं।[363] और पृथ्वीराज चौहान के गुप्तचर मृगछाला तथा जटाजूट-युक्त चित्रित किये गये हैं।[364]

सन्दर्भ-सरणि

--

(सप्तम अध्याय)

सन्दर्भ-सारिणी

-७-

(सप्तम अध्याय)

१- श्री हरिहरनाथ त्रिपाठी, भारतीय विचारधारा,पृ०२, प्र० नन्द-किशोर एण्ड संस, वाराणसी,प्र०सं० ।

२- ऋग्वेद ३।४३।५ तथा ४।५।८ ।

३- आपस्तम्ब धर्म सूत्र २।६।२५ ।१ तथा २।६।२५।१ ।

४- मनुस्मृति, ७।१ तथा अनुशासन पर्व ३६।८ ।

५- महाभारत, शान्ति पर्व, ६३।२५, २८,२६ ।

६- महाभारत, शान्ति पर्व, ५६।३ ।

७- महाभारत,शान्तिपर्व १४१।६-१० ।

८- शुक्रनीतिसार ४।१।६० ।

९- कामसूत्र ३।५-८ ।

१०- नीति प्रकाशिका १।२१-२२ ।

११- बुद्ध चरित १।४६ ।

१२- पंचतंत्र, प्रो० हर्टल संस्करण, प्रथम श्लोक ।

१३- महाभारत शान्तिपर्व,३०।८०-८३ ।

१४- श्री हरिहरनाथ त्रिपाठी, भारतीय विचारधारा,पृ०४ ।

१५- महाभारत शान्तिपर्व ६६।७६ ।

१६- ऋग्वेद ४।४२।३।४ तथा ३।४३।५ तथा १।६७।५ तथा ४।५।८ तथा ७।६६ । १३।, तथा १०।१७३।२। तथा ४।४।३। तथा अथर्ववेद ६।८७।१-२ ।

१७- राजवग्ग, अंगुत्तर ३, पृ०१४७ । तथा अग्गञ्ञ सुत्तन्त, दाघ, ४, पृ०९५ तथा सम्पसादनीय सुत्तन्तदाघ, ३, पृ०९८ ।

१८- डॉ० गुलाबचन्द्र चौधरी, पौलिटिकल हिस्ट्री आफ नार्दर्न इण्डिया फ्राम जैन सोर्सेज़ गोहनलाल जैन धर्म प्रचारक समिति, अमृतसर पब्लिकेशन, १९५४ ।

१९- इब्ने खलदून का मुकदमा, अनु० डॉ० सैयद अतहर अब्बास रिज़वी, हिन्दी समिति ग्रन्थ माला ७८, प्रकाशन शाखा, सूचना विभाग, उ०प्र० ७८ ।

२०- उपरिवत्, पृ०१०४-१२० ।

२१- उपरिवत्, पृ०१०४-१२१ ।

२२- महाभारत १३।१४२।३० ।

२३- दाघनिकाय, ३, पृ०९३ ।

२४- अशोक कलिंग शिला लेख २ ।

२५- महाभारत १२।३६।२६, १२।६७।५, १२।६३।५ ।

२६- अथर्ववेद १२।१।१२।

२७- पृ०रा०, का०प्र०, पृ० २५०६, छन्द १४ ।

२८- उपरिवत्, पृ० २४६५, छन्द २६५ तथा पृ०२५५३ छन्द १६० ।

२९- उपरिवत् ।

३०- पृ०रा०, उ०प्र०, भाग २, पृ० ४२७, छन्द १५ ।

३१- पृ०रा० का०प्र०, पृ०६०, छन्द ४४४ ।

३२- उपरिवत्, पृ० २०६४, छन्द ४०७ ।

३३- उपरिवत्, पृ० १३३, छन्द ६७ ।

३४- डा० अल्तेकर, प्राचीन भारतीय शासन पद्धति, पृ०५९, भारती-भण्डार, इलाहाबाद, प्रकाशन चतुर्थ सं० ।

३५- पृ०रा०, का०प्र०,पृ० ६८३,छन्द १० तथा ११ ।

३६- उपरिवत्, पृ०८४, छन्द ४१४ ।

३७- डॉ० ब्रजनारायण शर्मा, हिन्दू संस्कृति,पृ०१०३ ।

३८- महापंडित राहुल सांकृत्यायन, हिन्दी काव्यधारा,पृ०१८,किताब महल,इलाहाबाद ,प्र०सं०,१९४५ई० ।

३९- पृ०रा०,का०प्र०,पृ०६३०, छन्द १६० ।

४०- उपरिवत्,पृ० २३८६,छन्द १५ ।

४१- उपरिवत्, पृ० ३१३१, छन्द १७४ तथा पृ० २१३३,छन्द १८३ ।

४२- पृ०रा०, उ०प्र०, भाग २, पृ० ८०१ छन्द २७ ।

४३- पृ०रा०,का०प्र०,पृ०८४ छन्द ४१४ ।

४४- पृ०रा०,उ०प्र०, समय २३, छन्द १ तथा २९ ।

४५- उपरिवत्, समय १, छन्द ४३ तथा समय ५८, छन्द २७६ ।

४६- उपरिवत्, समय ११, छन्द १, समय १२ छन्द १४ समय ५८ छन्द२७६ ।

४७- उपरिवत्, समय १४ छन्द १६ ।

४८- उपरिवत्, समय ५८, छन्द १५१ तथा ५५२ ।

४९- उपरिवत्, समय १, छन्द ४३ ।

५०- उपरिवत्, समय ५८, छन्द २ तथा छन्द १४ ।

५१- उपरिवत्, समय ११, छन्द १ तथा ७२ ।

५२- उपरिवत्, समय १०, छन्द ११ तथा समय १२, छन्द १ तथा समय १०, छन्द ३८ ।

५३- पृ०रासउ, मा०प्र०मु०, २ :१८ : १ ।

५४- उपरिवत्, २ : १८ : २ ।

५५- उपरिवत्, २ : १८ : ३ ।

५६- उपरिवत् २ : १७ : २ ।

५७- उपरिवद्, २ : १७ : ३ ।

५८- उपरिवत्, २ :१७ : ३ ।

५९- उपरिवत, २ : ७ : २ ।

६०- उपरिवत्, २ : ८ : १ ।

६१- उपरिवत् १ : ६ : ३ ।

६२- उपरिवत् ७ : २ ।

६३- डा० विपिन विहारी त्रिवेदी, पृथ्वीराज रासो एक समीक्षा, पृ० २२५ तथा २२६ ।

६४- पृ०रासउ, मा०प्र० गु०, २ : ६ :१ तथा २ : १७ : १ तथा २ : १७ : २ ।

६५- उपरिवत् २ : ३ : ३१ ।

६६- डा० विपिन विहारी त्रिवेदी, पृथ्वीराज रासो एक समीक्षा,पृ० १७२ तथा १८१ ।

६७- पृ०रासउ, मा०प्र० गु०, ५ : १३ : २४ ।

६८- उपरिवत्, ५ : १३ : २४ ।

६९- उपरिवद, ३ : ३७ : १ तथा २ ।

७०- उपरिवद, ५ : १३ : १३ ।

७१- उपरिवत्, ५ : ४२ : २ ।

७२- उपरिवद, २ : ३ तथा १२ : ३३ ।

७३- उपरिवत्, ३ : ६ ।

७४- उपरिवत, ८ : २ ।

७५- उपरिवत् ८: ३० ।

७६- उपरिवत् ११ : १२ : २३ ।

७७- उपरिवद, २ : १० : ६ ।

७८- पृ०रा०,उ०प्र०, समय ३, छन्द १ तथा समय १० छन्द १० ।

७९-

७९- उपरिवत्, समय ३, छन्द १६ ।

८०- उपरिवत्, समय १, छन्द ३६ तथा समय ३, छन्द १९-२० तथा समय ६, छन्द ९ तथा समय ५८, छन्द २ ।

८१- पृ०रासउ, मा०प्र०सु०, ६।३३।३ ।

८२- उपरिवत्, ३ : ३ : ३० ।

८३- उपरिवत् ३ : २५ : ९ ।

८४- उपरिवत्, ५ : २ : २ तथा २ : १ : १५ ।

८५- उपरिवत् २ : ३ : ३२ ।

८६- उपरिवत् ३ ।३२ । २ ।

८७- उपरिवत्, ४ : १ : ५ ।

८८- उपरिवत्, १२ : २९ : १ ।

८९- उपरिवत्, ३ । ५ : १ ।

९०- उपरिवत् २ : १२ : १ ।

९१- उपरिवत्, २ : ३ : ५३ ।

९२- उपरिवत्, २ : १६ : २ ।

९३- उपरिवत् ५ : १३ : ८ ।

९४- उपरिवत् ६ : १ : १ ।

९५- उपरिवत्, ५ : १४ ।

९६- उपरिवत १२ : ५ : २ ।

९७- उपरिवत्, ११ : १८ : २ ।

९८- उपरिवत्, १२ : १४ : १ ।

९९- पृ०रा०, उ०प्र०, समय ५, छन्द ६७ ।

१००- उपरिवत, समय २० छन्द १२ तथा समय २० छन्द १५ ।

१०१- उपरिवत्, समय २० छन्द ३६-३७ ।

१०२- उपरिवत्, समय ५, छन्द ६७ ।

१०३- उपरिवत्, समय ६, छन्द १ ।

१०४- उपरिवत्, समय ३४, छन्द २६ ।

१०५- उपरिवत्, समय ३४, छन्द ३५ तथा समय ३८,छन्द १ ।

१०६- उपरिवत्, समय ६, छन्द ३ तथा ५ तथा ५ तथा समय ३५, छन्द ३१-३२ ।

१०७- उपरिवत्, समय १, छन्द ४० ।

१०८- पृ०रासउ, मा०प्र०गु० १० : १४ :२ ।

१०९- पृ०रा०,का०प्र०, पृ० ७३, छन्द ३६४ तथा पृ०१०१६,छन्द ८८ ।

११०- पृ०रासउ, मा०प्र०गु० २ : ३ : १०, १० : १५ :४, ३ : १६ : ३, ५ : २३ : २ ।

१११- उपरिवत् ५ : ४ : १-३-४ ।

११२- पृ०रा०,उ०प्र०,समय १,छन्द ७० ।

११३- पृ०रासउ मा०प्र० गु० ३ : १६ : ३ ।

११४- उपरिवत्, ५ : १८ : १-२ ।

११५- उपरिवत्, १२ : १४: १, २ : ३ : ७, २ : ३ : ४३ ।

११६- उपरिवत्, २ : १३ ।

११७- उपरिवत्, ११ : १७ : ६ ।

११८- उपरिवत्, १२ : १२: १-२ ।

११९- पृ०रा०, का०प्र०, पृ० ४६६, छन्द १३४ ।

१२०- प०रा०, का०प्र०, खण्ड २, छन्द १६ ।

१२१- उपरिवत्, खण्ड २,छन्द २० ।

१२२- पृ०रा०, उ०प्र०, समय ६१, छन्द २६८ तथा ३७५ ।

१२३- पृ०रा०,का०प्र०,पृ०१६४६, छन्द ४६५ ।

१२४- प०रा०, का०प्र०,खण्ड २३, छन्द ८ ।

१२५- पृ०रा०,का०प्र०,पृ० १६५०,छन्द ४८८-४८६ ।

१२६- उपरिवत्, पृ० १६४२, छन्द ४४८ ।

१२७- पृ०रा०, उ०प्र०, समय ६१, छन्द १६ ।

१२८- उपरिवत,समय ५८, छन्द २३५-२३६ ।

१२६- डॉ० अल्तेकर, प्राचीन भारतीय शासन पद्धति,पृ० ११० ।

१३०- प०रा०, का०प्र०, खण्ड ७, छन्द ५६ ।

१३१- उपरिवत्, खण्ड ७, छन्द ८४ ।

१३२- उपरिवत् ।

१३३- पृ०रा०,का०प्र०, पृ० ३१३१, छन्द १७०-१७१ ।

१३४- उपरिवत्, पृ० २१३५, छन्द १५२ ।

१३५- उपरिवत्, पृ० २११२, छन्द ४५-४६ ।

१३६- उपरिवत्, पृ० २१४८,छन्द २७४ ।

१३७- उपरिवत्, पृ० २१४४, छन्द २२५-२२६ ।

१३८- उपरिवत्, पृ० २१४२, छन्द २३७ ।

१३६- डॉ० दशरथ शर्मा, अर्ली चौहान डाइनेस्टीज,पृ० १६६ ।

१४०- पृ०रा०, का०प्र०, पृ० १४७१, छन्द ३८ ।

१४१- उपरिवत्, पृ० १२६७, छन्द ३२ ।

१४२- उपरिवत्, पृ० १४२१, छन्द २४ ।

१४३- पृ०रासउ, मा०प्र०गु० ३ : २ : १ ।

१४४- उपरिवत्, ३ : २ : १-२ ।

१४५- पृ०रा०, का०प्र०, पृ०७३,छन्द ३६४ ।

१४६- उपरिवत्, पृ० ४५०, छन्द १७ ।

१४७- उपरिवत्, पृ० १०१६, छन्द १८ ।

१४८- उपरिवत्, पृ० १२६७, छन्द ३० ।

१४९- उपरिवत्, पृ० १०४८, छन्द १३ ।

१५०- उपरिवत्, पृ० २४६०, छन्द ५२० ।

१५१- उपरिवत्, पृ० ७१, छन्द ३५३, तथा पृ० ९२ ,छन्द ४६४ ।

१५२- उपरिवत्, पृ०८६, छन्द ४१९ ।

१५३- उपरिवत्, पृ०९२, छन्द ४६२-४६३ -४६४ ।

१५४- उपरिवत्, पृ० ५८८, छन्द १।

१५५- उपरिवत्, पृ० १४२१, छन्द २४ ।

१५६- उपरिवत्, पृ० १४२२, छन्द २६ ।

१५७- उपरिवत्, पृ० ८४, छन्द ४१४ ।

१५८- उपरिवत्, पृ०८५, छन्द ४१५ ।

१५९- उपरिवत्, पृ० १४३६,छन्द १२३ ।

१६०- उपरिवत्, पृ० ११८५, छन्द ४९-५० ।

१६१- उपरिवत्, पृ० १४३७, छन्द १२५ ।

१६२- उपरिवत्, पृ० २२४८, छन्द २७४ ।

१६३- उपरिवत्,पृ० १४२१, छन्द ८७ ।

१६४- उपरिवत्, पृ० ७१९, छन्द २७३ ।

१६५- उपरिवत्, पृ० १३७९, छन्द ६२-६० ६४ ।

१६६- उपरिवत्, पृ० २९७, छन्द ३२-३३ ।

१६७- उपरिवत्, पृ० १०४८, छन्द १३ ।

१६८- उपरिवत्, पृ० १०२९, छन्द १८ ।

१६९- डा० अल्तेकर, प्राचीन भारतीय शासन व्यवस्था,पृ० १२८ ।

१७०- डा० राजबली पाण्डेय, हिन्दी साहित्य का बृहद् इतिहास,भाग१, पृ० ५६ ।

१७१- डा० दशरथ शर्मा, अर्ली चौहान डायनेस्टी ,पृ० १९९ ।

१७२- पु०रा०, का०प्र०,पृ० २०००, छन्द १०८ ।

१७३- कौटिल्य अर्थशास्त्र, ५ : ३ ।

१७४- पु०रा०, उ०प्र०, भाग ३, पृ० ६७०, छन्द २ ।

१७५- पु०रा०, का०प्र०, पृ० २५३५, छन्द १३७ ।

१७६- पु०रा०, उ०प्र०, भाग २,पृ० ५६५, छन्द २२५ तथा भाग४,पृ० ११२३, छन्द २४३ ।

१७७- उपरिवत्, भाग ४, पृ० ६५१, छन्द १६-१८ ।

१७८- उपरिवत्, भाग ४, पृ० ११२३, छन्द २४३ ।

१७९- डॉ० अल्तेकर, प्राचीन भारतीय शासन व्यवस्था,पृ०१२६-१२७ ।

१८०- कौटिल्य,अर्थशास्त्र, ५ : ३ ।

१८१- पु०रासउ,मा०प्र० गु०, ३ : २८ : १-२ ।

१८२- उपरिवत्, ३ : २५, ३ : २६ ।

१८३- उपरिवत्, २ : १० : ४-५ ।

१८४- उपरिवत्, ३ २ : ३ : १० ।

१८५- उपरिवत्, ६ : २३ : १२ ।

१८६- उपरिवत्, ५ : ३१ : १ ।

१८७- उपरिवत्, ५ : ३१ : १ ।

१८८- उपरिवत्, २ : ३ : ६ ।

१८९- उपरिवत्, २ : १५ : ३ ।

१९०- उपरिवत्, ५ : १३ : १ ।

१९१- उपरिवत्, ५ : १२ : १-२ ।

१९२- उपरिवत् ३ : १६ : ३ ।

१९३- उपरिवत्, ५ : १८ :१-२ ।

१९४- उपरिवत् ५ : ४: १-३-४ ।

१९५- उपरिवत्, १२ : २२ : १-२ ।

१९६- पृ०रा०,का०प्र०,पृ० ७२३, छन्द ३०३ ।

१९७- उपरिवत्, पृ० १०५६, छन्द २१ ।

१९८- उपरिवत्, पृ० ६८४, छन्द १६ ।

१९९- उपरिवत्, पृ० १६४८, छन्द ४७३ ।

२००- उपरिवत्, पृ० १५२०, छन्द ६३ ।

२०१- पृ०रासउ,मा०प्र० गु०, २ : १३ ।

२०२- उपरिवत् , [illegible] ११ : ७ : ६ ।

२०३- उपरिवत्, ६ : २३ : ७-८ ।

२०४- उपरिवत् १२ : ८ : १-६ तथा १२ : ६: १-२ तथा ३ : २६ : १ तथा २ : ३ : ५२ ।

२०५- पृ०रा०,का०प्र०, पृ० १६४८,छन्द ४७६ ।

२०६- उपरिवत्, पृ० १६६०, पृ० ५६० ।

२०७- उपरिवत्, पृ० २४०८, छन्द १७५ ।

२०८- उपरिवत्, पृ० १६४६, छन्द ४६५ ।

२०९- उपरिवत्, पृ० १२०६, छन्द ५२ ।

२१०- प०रा०,का०प्र०, खण्ड २३, छन्द ८ ।

२११- पृ०रा०,का०प्र०, पृ० १६५०, छन्द ४८८-४८९ ।

२१२- उपरिवत्, पृ० १६५६, छन्द ५५७ ।

२१३- उपरिवत्, पृ० १६४२, छन्द ४०८ ।

२१४- उपरिवत्, पृ० २०३२, छन्द ८८ ।

२१५- उपरिवत्,पृ० ४६८, छन्द १३४ ।

२१६- उपरिवत्, पृ० ३९८, छन्द ६३ ।

२१७- उपरिवत्, पृ० ७२२, छन्द २९२ ।

२१८- उपरिवत्, पृ० १२०२,छन्द १८-१९ ।

२१९- प०रा०, का०प्र०, खण्ड २, छन्द १६ ।

२२०- उपरिवत्, खण्ड २, छन्द २० ।

२२१- पृ० रासउ, मा०प्र०गु०, १ : ६ : ३, ६ : २३: ३ ।

२२२- उपरिवत्, ६ : २३ : ३ ।

२२३- उपरिवत्, ७ : १७ : ५६ ।

२२४- उपरिवत्, ६ : ७ : १, ११ : १४ : १७ ।

२२५- उपरिवत्, १ : ६ : ३ ।

२२६- उपरिवत्, २ : ५ : ४६ ।

२२७- उपरिवत्, ५ : १६ : २ ।

२२८- उपरिवत्, ७ : ७ : २ ।

२२९- उपरिवत्, ६ : ५ : ३ ।

२३०- उपरिवत्, १ : ३ : ६ ।

२३१- उपरिवत्, ६ : ५ : २३ ।

२३२- उपरिवत्, ६ : १ : २ ।

२३३- उपरिवत्, ७ : ४ : १६ ।

२३४- उपरिवत्, ६ : ५ : १ ।

२३५- उपरिवत्, ८ : ३० : २ ।

२३६- उपरिवत्, ८ : २० : १ ।

२३७- उपरिवत्, ८ : २० : १ तथा ८ : २४ : ३ ।

२३८- उपरिवत, ७ : ६ : २, ७ : १२ : १२ ।

२३९- उपरिवत्, ७ : ६ : ५ ।

२४०- उपरिवत्, ७ : ६ : २० ।

२४१- उपरिवत्, ७ : ६ :३ ।

२४२- उपरिवत्, ७ : १२ : २१ ।

२४३- उपरिवत्, ८ : १६ : १ ।

२४४- उपरिवत् ७ : ६ : २२ ।

२४५- उपरिवत्, ६ ५ : ३० : २ तथा ६ : ३१ : २ ।

२४६- बीसलदेव रास, सं०मा०प्र०गु०, छन्द ६२ ।

२४७- कछूलीरास, प्रज्ञातिलक, रास और रासान्वयी काव्य में संकलित, पृ० १३४-१३७ ।

२४८- पृ०रासउ, मा०प्र०, गु०, ६ : ३ : २ ।

२४९- उपरिवत्, ८ : १ : ५ तथा ७ : १५ : १५ ।

२५०- उपरिवत्, ७ : १५ : १५ ।

२५१- उपरिवत्, भूमिका, पृ० १८९-१९१ ।

२५२- उपरिवत्, २ : ६ : ३, ११ : ७ : ४, २ : १ :१०आदि ।

२५३- उपरिवत्, ५ : ११ : १८ ।

२५४- उपरिवत्, २ : १ : १० ।

२५५- उपरिवत्, ८ : ४ : १, ८ : ४ : ३ ।

२५६- पृ०रा०, उ०प्र०, समय ५८, छन्द ६६२ ।

२५७- उपरिवत्, समय ६१, छन्द ३१० ।

२५८- उपरिवत्, समय ६१, छन्द ३९० ।

२५९- उपरिवत्, समय ६०, छन्द ९५ ।

२६०- उपरिवत्, समय ६१, छन्द १६ ।

२६१- पृ०रा०, [illegible] समय ६१, छन्द १६ ।

२६२- पृ०रा०,का०प्र०,पृ०१५९४,छन्द १०७ ।

२६३- उपरिवत्, पृ० १०९२, छन्द १२० ।

२६४- उपरिवत्, पृ० १५९४,छन्द १०७ ।

२६५- उपरिवत्,पृ० ९५४, छन्द ४२ ।

२६६- उपरिवत्, पृ० ३०७, छन्द ११३ ।

२६७- उपरिवत्, पृ० ५२४, छन्द ३८ ।

२६८- पृ०रासउ, मा०प्र० गु०, ८: ८: २ ।

२६९- उपरिवत्, २ : ३ : २३ ।

२७०- उपरिवत्, ३ : ६ : १ ।

२७१- पृ०रा०,उ०प्र०, समय ३७, छन्द ३६ तथा समय ५८, छन्द ८६ ।

२७२- उपरिवत, समय १०, छन्द २५-७ ।

२७३- पृ०रासउ, मा०प्र०गु०, ७ : ४ : १७ ।

२७४- उपरिवत्, ४ : २१ ।

२७५- उपरिवत्, ७ : २६ ।

२७६- उपरिवत्, ८ : ७ : २ ।

२७७- पृ०रा०, का०प्र०, पृ० ६४८,छन्द १६ ।

२७८- पृ० रासउ, ७ : ४ : २१ तथा ८ : ७ : २ ।

२७९- उपरिवत्, ८ : ७ : २ ।

२८०- उपरिवत् पृ०रा०, का०प्र०, पृ० १३७०,छन्द १३ ।

२८१- उपरिवत, पृ०१११८, छन्द १३४ ।

२८२- उपरिवत्, रेवा तट समय

२८३- उपरिवत, पृ० ४६७, छन्द १२४ ।

२८४- उपरिवत

२८५- पृ०रासउ, मा०प्र०गु०, ८ : १० : २५ ।

२८६- उपरिवत्, ४ : १० : ६ ।

२८७- उपरिवत्, ६ : ८: १ तथा ८ : ६ : १६ ।

२८८- उपरिवत, ७ :१० ।

२८९- पृ०रा०, का०प्र०,पृ० ४६७, छन्द १२४ ।

२९०- पृ०रासउ, मा०प्र०,गु०, ११ : ११ : १ ।

२९१- उपरिवत, ७ : ८ : २ ।

२९२- उपरिवत

२९३- डॉ० ईश्वरीप्रसाद, हिस्ट्री आफ मेडिवल इण्डिया,पृ०१९८-१९९ ।

२९४- पृ०रा०,का०प्र०,पृ० २३०३,छन्द ११८२ तथा प०रा०, खण्ड १७, छन्द ४२ ।

२९५- पृ०रा०, उ०प्र०,भाग १, पृ० १६०, छन्द ५१ ।

२९६- पृ०रा०, का०प्र०, पृ० २३०२,छन्द ११-८२ ।

२९७- प०रा०, का०प्र०, खण्ड १५, छन्द ११२ ।

२९८- उपरिवत्, खण्ड ४, छन्द ७९ ।

२९९- उपरिवत्, खण्ड १०, छन्द ३७६-३७७ ।

३००- पृ०रासउ, मा०प्र०गु०, ७ : ६: ३९, ७ : ६ : ४९, ७ : ७: ४१, ७ : ६: ४९-५२, ७ : ६: ४९, ७ : ६: ५१, ७ : ६: ४० ७ : ४ १ : ३ : ५, ७ : ६ : ४१, ७ : ६: ५३, ६ : ५: ६ ।

३०१- पृ०रा०, का०प्र०, पृ० ५३१, छन्द ८१ ।

३०२- उपरिवत्, पृ० २५९४, छन्द २९४ ।

३०३- प०रा०, का०प्र०, खण्ड २१, छन्द ९० तथा पृ०रा०,का०प्र०,पृ०८९, छन्द ४४१ ।

३०४- पृ०रा०, का०प्र०, पृ०५०१, छन्द ३१६ ।

३०५- उपरिवत्, पृ० ५०१, छन्द ३१६ ।

३०६- प०रा०, का०प्र०,खण्ड २१,छन्द ९७ ।

३०७- पृ०रा०, का०प्र०, पृ० २०४९, छन्द १५१ ।

३०८- उपरिवत्, पृ० ४०५, छन्द ११० ।

३०९- उपरिवत्, पृ० ९०, छन्द ४४९ ।

३१०- पृ०रा०,उ०प्र०,भाग ३, पृ०९६६, छन्द ४१ ।

३११- पृ०रा०, का०प्र०, पृ०९८९, छन्द १५९ ।

३१२- उपरिवत्, पृ० ९४७, छन्द १३ ।

३१३- उपरिवत्, पृ० ९४९, छन्द २३ ।

३१४- प०रा०, का०प्र०, खण्ड १०, छन्द ५६४ ।

३१५- पृ०रा०, का०प्र०,पृ० १०११, छन्द १०५ ।

३१६- उपरिवत्, पृ० ६१७, छन्द २५ ।

३१७- उपरिवत्, पृ० २४६५, छन्द ५४६ ।

३१८- प०रा०, का०प्र० खण्ड४, छन्द १६४ ।

३१९- उपरिवत्, खण्ड ३, छन्द ६६ ।

३२०- पृ०रा०,का०प्र०,पृ०१३२३, छन्द २२८ ।

३२१- पृ०रा०, उ०प्र०,भाग ४, छन्द ६०२ ।

३२२- पृ०रा०, का०प्र०, पृ० २०४५, छन्द १४५ ।

३२३- उपरिवत्, पृ० २०४५, छन्द १३६ ।

३२४- उपरिवत्, पृ० २३७३, छन्द १६३१ ।

३२५- उपरिवत्,पृ०२२४३, छन्द ७८६-७८८ ।

३२६- उपरिवत्, पृ० २७७, छन्द ८-११ ।

३२७- उपरिवत्, पृ० २०२४,छन्द ४०-४१ ।

३२८- उपरिवत्, पृ० १७१६, छन्द ६६३ ।

३२९- उपरिवत्, पृ० १६५३, छन्द २४६६- २५०२ ।

३३०- उपरिवत्, पृ० १५०६, छन्द ३२१ ।

३३१- उपरिवत्, पृ० २३७४, छन्द १६३५ ।

३३२- उपरिवत्, पृ० २०३२, छन्द ८२ ।

३३३- उपरिवत्, पृ० २२४८, छन्द ८२० ।

३३४- उपरिवत्, पृ० २७८,छन्द २० ।

३३५- उपरिवत्, पृ०२७८, छन्द १३-१४ ।

३३६- उपरिवत्, पृ० २०२७, छन्द ५६ ।

३३७- उपरिवत्, पृ० २०२८, छन्द ६८ ।

३३८- उपरिवत्, पृ० १४६६, छन्द २६ ।

३३६- उपरिवत्, पृ० ४६३, छन्द १२७ ।

३४०- पृ०रा०,उ०प्र०,भाग२, पृ० ४२०,छन्द ४६ ।

३४१- पृ०रा०,का०प्र०,पृ० १६६२,छन्द ५७५ ।

३४२- उपरिवत्, पृ० १६७५, छन्द २ ।

३४३- प०रा०,का०प्र०,खण्ड ८, छन्द १८ ।

३४४- उपरिवत्, खण्ड३, छन्द ४० ।

३४५- पृ०रा०, उ०प्र०,३ : ७२ : ४ ।

३४६- पृ०रा०,का०प्र०, पृ० २०३०, छन्द ७६ ।

३४७- पृ०रा०,उ०प्र०, ३ : ७६ :७४ ।

३४८- उपरिवत् ।

३४६- उपरिवत्, १ : २०० : १८ ।

३५०- पृ०रा०,का०प्र०,पृ०२६१५,छन्द ८२८ ।

३५१- उपरिवत्, पृ० २८५, छन्द ३१ ।

३५२- प०रा०,का०प्र०,खण्ड १०, छन्द २७५ ।

३५३- पृ०रा०,उ०प्र०,भाग३, पृ० ३२४ ।

३५४- उपरिवत्, भाग ३, पृ० ३२४, छन्द ३ ।

३५५- उपरिवत्, भाग ३, पृ०३२८, छन्द १० ।

३५६- प०रा०, का०प्र०, खण्ड ६, छन्द १२३ ।

३५७- उपरिवत्, खण्ड २६, छन्द २६ ।

३५८- उपरिवत्, खण्ड २७, छन्द ४० तथा ४५ ।

३५६- पृ०रा०,का०प्र०, पृ० २४६३, छन्द १४७ ।

३६०- उपरिवत्, पृ०२४६७, छन्द १८० ।

३६१- प०रा०,का०प्र०,खण्ड ५, छन्द ४५ ।

३६२- पृ०रा०, उ०प्र०, भाग३,
पृ०५२७, छन्द ६६-७० ।

३६३- पृ०रा०,का०प्र०, पृ० ६१२, छन्द ६२ ।

३६४- उपरिवत्, पृ० ५२०, छन्द १८ ।

-0-

अष्टम अध्याय

-0-

आदिकालीन हिन्दी रासो काव्य परम्परा में चित्रित धार्मिक परिवेश, दर्शन तथा आचार-निष्ठा

अष्टम अध्याय

-o-

आदिकालीन हिन्दी रासो काव्य परम्परा में चित्रित धार्मिक परिवेश, दर्शन तथा आचार-निष्ठा

(विषय-विवरणिका)

धर्म, धर्म के तत्व ; रासो काव्यों का धार्मिक परिपार्श्व,जैन धर्माधारित चौंतीस रासो काव्य ; अजैन रासो रचनाओं में आर्यधर्म, जैन धर्म, बौद्ध-धर्म, इस्लाम धर्म ; अनेक सम्प्रदाय ; धार्मिक कृत्य ;उपास्य देवी-देवता ; साधना-पद्धतियां ; धार्मिक विश्वास , धार्मिक मान्यताएं ; विभिन्न धर्मों की पारस्परिक सहिष्णुता ; हिन्दू-मुसलमानों का एक ईश्वर ; राजनीतिक सत्तालोलुपता के कारण धर्म-युद्ध एवं धार्मिक संघर्ष ;यत्किंचित् हिन्दू-मुसलमान तथा वैदिक-बौद्ध-जैन वैमनस्य ; भगवान के दस अवतार; बहुदेववाद की प्रवृत्ति ; तीर्थयात्राएं; तीर्थस्थल ; तीर्थों में सम्पादित कृत्य; शक्ति के विविध रूप ; विविध दान, षोडशदान, यज्ञ, तपश्चर्या,अड़सठ तीर्थ, समाधि, योग, मुद्रा, रासो ग्रन्थ पढ़ने-सुनने का माहात्म्य ; जपतप जाप, ईश्वर और सृष्टि संबंधी विचार ; अभिशाप एवं वरदान ; स्वप्न, बलि ;मंत्र-शक्ति और तंत्र-क्रियाएं, मंत्र-युद्ध ; शकुन-अपशकुन ; मुहूर्त,लग्न ;जीव, जगत्, माया, मोक्ष; जैन रासो काव्यों में जैन दार्शनिक संस्कृति ;जैन जीवनदर्शन, संयमश्री, आत्मविजय, चित्तशुद्धि ; रागरहित तपस्या ; आत्मा की उत्क्रान्ति और मोक्ष के १४ सोपान ; ६ तत्वों की सम्यक्त्व, जैन धर्म की मूल मान्यताएं, सन्दर्भ-सारणि ।

-o-

अष्टम अध्याय

-0-

धार्मिक परिवेश, दर्शन तथा आचार-निष्ठा

'धर्म' शब्द का प्रयोग ऋग्वेद के अन्तर्गत छप्पन बार किया गया है[1]। धर्म को धार्मिक-विधि, धार्मिक-क्रिया-संस्कार,[2] 'तानि धर्माणि प्रथमान्यासन्'[3], प्रथमा धर्माः,[4] सनता धर्माणि[5] अर्थात् आचरण नियम[6] और 'ध्रुवेण धर्मणा'[7] आदि के रूप में अभिहित किया गया है। अथर्ववेद में भी 'ऋतं सत्यं तपोराष्ट्रं श्रमो धर्मश्च कर्म च' आदि का समानार्थक[8] धर्म शब्द का प्रयोग मिलता है। इसी प्रकार ऐतरेय ब्राह्मण[9], छान्दोग्योपनिषद्[10], तैत्तिरीयोपनिषद्[11], मनुस्मृति[12], श्रीमद्भगवद्गीता[13], याज्ञवल्क्य-स्मृति[14], वैशेषिक सूत्र[15], पूर्व मीमांसा सूत्र[16], महाभारत[17] तथा बौद्ध[18], जैन[19] एवं इस्लाम[20] धर्म-ग्रन्थों में धर्म की अनेकशः किन्तु एकमुखी परिभाषायें प्राप्त होती हैं।

'वेदोधर्ममूलम्'[21] का अभिधान आपस्तम्ब धर्म सूत्र[22] तथा वसिष्ठधर्मसूत्र[23] द्वारा किया गया है। मनुस्मृति में धर्म के पांच तत्व आख्यायित हैं-- वेद, परम्परा, व्यवहार, आचरण और आत्मतुष्टि[24]।

वस्तुत: `यतोऽभ्युदय निःश्रेयससिद्धिः`[25] तथा धारणाद्धर्मः[26] अथवा `यः स्याद्धारणसंयुक्त स धर्म इति निश्चयः`[27] को अन्तश्चेतना-सम्पृक्त आलोच्यकालीन[28] में रासो काव्यों की धार्मिक पृष्ठभूमि का आकलन यहां अभीष्ट है ।

अधिकांश रासो काव्यों में धर्म की प्रमुखता दी गया है । आलोच्यकाल में एक भी रासो काव्य धर्म-चर्चा रहित प्राप्त नहीं होता । चौंतीस रासो काव्य जैन धर्म से सम्बन्धित हैं[29] । तथा पृथ्वीराज रासो एवं परमाल रासो आदि में भी न केवल आर्य धर्म[30] वरन् जैन धर्म[31], बौद्ध धर्म[32] और इस्लाम धर्म[33] का भी काफी विवरण प्राप्त होता है । अनेक सम्प्रदायों-- शैव[34], शाक्त[35], कापालिक[36], गोरखपंथ[37], सिद्ध[38], योगी[39], ध्यानी[40], मंगोल[41], पारसीक[42], यवन[43], तुर्क[44] आदि के विवरण उपलब्ध हैं । इन धर्मों एवं सम्प्रदायों के धार्मिक कृत्यों उपास्य देवी-देवताओं, साधना-पद्धतियों तथा धार्मिक विश्वासों एवं मान्यताओं के विवरण रासो काव्यों में सन्निविष्ट हैं ।

विवेच्यकाल में रासो काव्यों में मुख्यत: धार्मिक कृत्यों के अन्तर्गत पूजा[45], व्रत[46], तीर्थाटन[47], तीर्थस्थान- निवास[48], तप[49], यज्ञ[50], श्राद्ध[51], मन्दिर-निर्माण[52], मूर्ति-स्थापना[53], पवित्र नदियों -- गंगा[54], यमुना[55], गोमती[56], में स्नान, नदियों के किनारे भूमिशयन[57], धर्म-कथा पठन[58] और श्रवण[59], इष्टदेव की आराधना[60], अनेक देवी-देवतादि की भक्ति[61], कुलदेवता[62], स्थान-देवता[63], विष्णु, शिव, ब्रह्मा[66], सूर्य[67], गणपति[68], शक्ति[69], शारदा[70], सरस्वती[71], यम[72], हरि[73], वाराह[74], इन्द्र[75], यक्ष[76], कुबेर[77], गन्धर्व[78], नाग[79], महेह-

देवी[८०], महामाया[८१], गौरी-लक्ष्मी[८२] आदि का पूजार्चन तथा दान-रोज़ा[८३], रमज़ान[८४], पांच नमाज़ पढ़ना[८५] आदि परिगणित किये जा सकते हैं। इसके साथ ही पंच महाव्रत[८६], भावशुद्धि[८७], अहिंसा[८८], सदाचार[८९], आत्मविजय[९०], अष्टांगिक कर्म[९१], शील[९२] आदि उल्लेख्य हैं। यंत्र-मंत्र[९३], भूत-प्रेत[९४], दानव[९५]-राक्षस[९६] आदि को भी मान्यता उपलब्ध होती है। यत्र-तत्र बलि[९७], पाण्डव[९८], प्रद्युम्न[९९], अर्जुन[१००], द्रोण[१०१] और जनमेजय[१०२] आदि की भी चर्चा की गई है। स्पष्टतः विविध धर्म-सम्प्रदायों के अन्तर्गत अनेक-विध धार्मिक कृत्यों एवं साधना-पद्धतियों का विधान था।

तत्कालीन जैन रासो काव्यों में जैन धर्म का विशद चित्रण मिलता है। चन्दवरदाई की धार्मिक प्रवृत्ति तथा सर्व-धर्म सहिष्णुता का महाकाव्य पृथ्वीराज रासो है। इसके अन्तर्गत धर्म को प्रमुखता दी गयी है --

> दुग्गिनपुर प्रथिराज कौ, देव दियौ, दिन चित्त।
> मोह बंध बंधन तजे, धम-क्रम किज्जै चित्त।[१०३]

रासो काव्यों में विभिन्न धर्मों का अनुसरण करने वालों का पारस्परिक सहिष्णुता-भाव निदर्शित किया गया है। यद्यपि कहीं-कहीं पारस्परिक विद्वेष-भाव भी प्रतिबिम्बित होता है। हिन्दू और मुसलमान दोनों जालन्धरी देवी के आराधक थे--

> तंह हिन्दू अरु मुसलमान। लष्ष विप्र सुजा वहि।
> जवनिक कुल छत्री । कुलाल षोडस मिलि धावहि।[१०४]

मुहम्मद गोरी की मां हिन्दू और मुसलमान दोनों का ईश्वर एक ही मानती है। उनके जीवन का लक्ष्य एक समान निरूपित करती है। संसार से मोक्ष प्राप्त करने की कामना भी दोनों में एक जैसी

हा है, किन्तु फिर भी पारस्परिक धर्म-विरोध होने का कारण अगम्य है और इस प्रकार यह धार्मिक ऐक्य-भाव का आकांक्षा है --

अल्लह रु राम एक्कै निजरि । विपरष बंध बंधे बलहि
साधक पंथ जु जु कियौ । मुगति पंथ एक
मुगति पंथ नह भिन्न । एक पंथ अधिकारिय
एक नरक संग्रहै । एक मुत्तिय सु विचारिय । [१०५]

प्रतीति यह है कि हिन्दू और मुसलमान दोनों में प्रबुद्ध वर्ग ईश्वर और अल्लाह को एक मानकर पर्याप्त उदार और सहिष्णु था, किन्तु वहां दूसरी ओर राजनीतिक शासन से प्रेरित होकर अपनी सत्ता-लोलुपता के कारण धर्म-युद्ध का आह्वान करता था । द्वितीय वर्ग के अन्तर्गत दूसरे धर्म का आख्यान सुनना भी नरक अथवा दोजख में जाने के लिए था । चन्दवरदायी को गज़नी में काफ़िर मानकर मुहम्मद गोरी का वज़ीर उसे अपने राज्य से बाहर निकालने का परामर्श देता है और उसके नाम तक को न सुनने के लिए मुहम्मद गोरी को आगाह करता है । [१०६] मुहम्मद गोरी हिन्दू और मुसलमान के संघर्ष से राक्षस और देवताओं के संघर्ष की तुलना करता है । [१०७] अन्यत्र पृथ्वीराज चौहान मुसलमानों का मुंह न देखने का संकल्प करता है । [१०८] यहां तक कि मुसलमानों की नमाज को सुनने वाला हिन्दू अवश्य नरकगामी बताया गया है । [१०९] मीर हुसैन के दिल्ली आगमन पर पृथ्वीराज चौहान को द्विविधा हो जाती है कि शरणागत की रक्षा करे अथवा मुसलमानों के मुंह न देखने की प्रतिज्ञा का पालन करे । [११०]

तत्कालीन भारत में उक्त असहिष्णुता का भाव केवल हिन्दू और मुसलमानों में ही नहीं था, वरन् वैदिक धर्मावलम्बियों तथा बौद्धों और जैनों में भी पारस्परिक विद्वेष-भाव व्याप्त था, किन्तु असहिष्णुता के साथ ही अनेक स्थलों पर सहिष्णुता की भावना भी परिलक्षित होती है । एक स्थान पर बौद्धों और जैनों के धर्म-ग्रन्थों को त्याज्य बताते हुए उन्हें पुरुषार्थहीनता का द्योतक निरूपित किया गया है --

परमोध तजो बोधक पुरान । रामाइन सुन भारत निदान ।[१११]

शारंगदेव को गोरी के विधवा हो जाने पर वैराग्य और अहिंसा की भावना जाग्रत हो जाती है तथा वह अर्हत्का सेवाव्रत ले लेते हैं । सारंगदेव के पिता बासलदेव उसे इस सेवा व्रत से विरत करने का प्रयास करते हैं तथा उसे पौरुषहीनता तथा अपकीर्ति का द्योतक बताते हैं साथ ही रामायण और महाभारत में अवगाहन करने के लिए उद्यत करते हुए बौद्ध और जैन पुराणों से विमुख करने का प्रयास करते हैं ।[११२] इच्छिनी का भाई भोला भीम से विवाह न करने का प्रस्ताव इसीलिए रखता है, क्योंकि वह उन्हें पाखण्डी तथा वैदिक धर्मविरोधी मानता है ।[११३] भोला-भीम की राजसभा के प्रतिष्ठित सिद्धपुरुष अमरसेवरा द्वारा अमावस के दिन चन्द्रोदय किया गया था और इसी आधार पर ब्राह्मणों के सिर मुड़वा दिये थे ।[११४] चन्दवरदायी के द्वारा द्वारिका-यात्रा के उपरान्त जैन-धर्मानुयायियों को अधम वेशभूषा और पवित्र नदियों में स्नान न करने वाला कहा है । उन्हें देव-विरोधी, गंगा-विरोधी, श्राद्धादि कर्म-विरोधी निरूपित करते हुए उन्हें भ्रमित बताया है--

मद्र भेष नउ हुये । जाइ गोमति न न्हावै ।

तजे न भ्रम सेवरा । होइ करि केश लुचावै ।

मुष पावन हन करै । वस्त्र धोवै न विवेक ।

आंगु अंष परंत । करत उपवास अनेकं

दरसन्न सेव माने नहीं । गंगा ग्यान आ क्रम ।

कवि चंद कहंत धन कहा गति । किहि मारग लागै सुभ्रम[१९५] ।

उक्त विवरण से ज्ञात होता है कि आलोच्यकाल में वेद-विहित मार्गानुयायियों तथा जैनियों में एक-दूसरे का धार्मिक प्रक्रियाओं एवं विश्वासों के प्रति वैमनस्य तथा चन्दवरदाया ने भोला-भीम को वैदिक धर्म-विरोधी और जैन मतावलम्बियों को प्रश्रय प्रदान करने वाला कहा है[१९६]। भोला भीम के द्वारा शिवपुरी में आग लगवाकर उसे नष्ट कर दिया गया था[१९७]--

भोरााराइ भीमंग, सोर शिवपुरो प्रजारिय ।

चन्दवरदायी ने भोला भीम को जैन धर्मावलम्बी अथवा जैन धर्म को ही प्रमाण मानने वाला चित्रित किया है--

ठानिज्जे मानिज्ज व्रत, हानिज्जे गुर ज्ञान ।

वेद धर्म जिन भंजए, जैन ध्रंम परिमान ।[१९८]

चन्दवरदायी के द्वारा गुजरात के उक्त राजा भोला भीम को,महाबार को अपना पुज्य निरूपित करते हुए, उन्हें कुत्सित, कुंचित पंथ का वरण करने वाला बताया है और उन्हें अधर्मी घोषित किया है --

महावीर बीर किंत जाप लानौ । जिनैं कुब्बिकं लुकिं पंग कानौ।

जिने जग्य ध्रमं बरं नेति भंजे । ध्रुमं उथापै अध्रमं सुरंजे ।[११८]

पृथ्वीराज रासो में दशम समय के अन्तर्गत भगवान के १० अवतारों का वर्णन किया गया है, जिनमें मत्स्य,[१२०] कच्छ,[१२१] वाराह,[१२२] नृसिंह,[१२३] वामन,[१२४] परशुराम,[१२५] रामक,[१२६] कृष्ण,[१२७] कल्कि[१२८] तथा बौद्धावतार[१२९] का उल्लेख प्राप्त होता है । दशावतारों का नाम-स्मरण भी उपलब्ध होता है --

मछ कछ वाराह प्रनम्मिय । नारसिंघ वामन कर नम्मिय

भुअ दसरथ्थ हलधर नम्मिय । बुद्ध कलंक नमो दह नम्मिय ।[१३०]

महात्मा बुद्ध को भी वेद-धर्म-विहित एक अवतार के रूप में चन्दवरदायी ने चित्रित किया है, उन्हें हरि और वेद का निन्दक बताया है --

जयो बुद्ध रूपं । धरंतं अनूपं । हरी बेद भेदे । दयादेह बंदे ।

पशुहंत रष्षे । कियं भष्ष भष्षे । जयं जग्यलोपं । कियं दत्तभोवं ।

प्रिगंया विहारं । सुरष्षे दयारं । असुरं जुजन्ता । बहं देह रष्षिगाता।

कला भंजि काठं । दया भ्रंम पालं । सुरं ग्यान मन्तं । प्रकते

सुजन्तं । धरे ध्यानं नूपं । नमो बुद्ध रूपं ।[१३१]

उपर्युक्त अवतारों की कथा से यह प्रतीत होता है कि तत्कालीन समाज में वैदिकों और बौद्धों के बीच सहिष्णुता बढ़ चुकी थी, किन्तु जैन धर्मावलम्बियों से अभी भी विरोध चल रहा था ।

हिन्दू धर्म के अन्तर्गत बहुदेववाद की प्रवृत्ति थी और शिव,शक्ति तथा विष्णु और विष्णु के स्वरूप राम और कृष्ण सभी की पूजा हिन्दुओं द्वारा की जाती थी । परमाल रासो के अन्तर्गत राम और

शिव की आराधना 'राष्ट्रिक-व्रत' के द्वारा की जाती है।[132] अन्यत्र परमार्दिदेव राम और शिव दोनों के प्रति अनुरक्त चित्रित किये गये हैं।[133] चन्दवरदायी के द्वारा भी हरि और हर दोनों को एक रूप बताते हुए इनमें विभेद करने वालों को नरकगामी निरूपित किया गया है --

करिये भक्ति कवि चंद हर । हरि जापिय इह भाइ ।
हंस स्याम जु जु कहै । नरक परंतह जाइ ।[134]

पृथ्वीराज चौहान रणभूमि में जाने के पूर्व भगवान श्रीकृष्ण का ध्यान करते हैं।[135] पृथ्वीराज चौहान नित्य-प्रति रामचरित सुनते हुए दिखाये गये हैं।[136] अन्यत्र पृथ्वीराज चौहान को शंकर की पूजा करते हुए और उनका आशीर्वाद ग्रहण करते हुए दिखाया गया है।[137] पृथ्वीराज रासो में एक स्थान पर पृथ्वीराज चौहान शक्ति की साधना करते हुए परिलक्षित होते हैं।[138] चन्दवरदायी ने पृथ्वीराज चौहान के प्रासाद में हरिहर, शिव और दुर्गा का पूजार्चन होते हुए प्रदर्शित किया है।[139] निश्चय ही तत्कालीन भारत में हिन्दू धर्म के विभिन्न देवी-देवताओं की आराधना के प्रति जन सामान्य और राजन्य वर्ग का सहिष्णु और समभाव का दृष्टि-कोण था, जिसकी पुष्टि ऐतिहासिक विवरणों से भी होती है।[140]

आलोच्यकालीन रासो काव्यों के सम्यक् विवेचन से मुख्यत: वैदिक धर्म और जैन धर्म के सम्बन्ध में पर्याप्त विवरण प्राप्त होते हैं तथा बौद्ध धर्म, इस्लाम धर्म एवं अन्य सम्प्रदायों के

यत्किंचित् नामोल्लेख मात्र दृष्टिपथ पर आते हैं । गवेषणात्मक सौकर्य की दृष्टि से इनका अध्ययन अजैन रासो काव्य और जैन रासो काव्यों में चित्रित धर्म, दर्शन, साधना-पद्धति, उपास्य, देवी-देवता एवं आचार-विचार के रूप में कर सकते हैं ।

तत्कालीन भारत में तीर्थस्थानों की यात्रा अपनी मनोकामनायें पूरी करने तथा शारीरिक पर्यवसान के पश्चात् सुगति हेतु की जाती थी । आराध्य-देव-दर्शन करने से धन-धान्य की वृद्धि तथा सुख-शान्ति की उपलब्धि होने की धारणा थी । तत्कालीन तीर्थों में पृथ्वीराज रासो एवं परमाल रासो के अनुसार अयोध्या,कालिंजर, वटेश्वर, पुष्कर,लज्जुरपुर, हरिद्वार, कांगड़ा, हिंगलाज, रूपनारायण, कपाल मोचन, कल्पेश्वर, उज्जैन, जगन्नाथपुरी,बद्रीनाथ, मथुरा, काशी, द्वारामती आदि प्रमुख थे[१४१] । चन्दबरदायी ने तत्कालीन समाज की इस जन-भावना का स्वरूप पृथ्वीराज रासो में प्रस्तुत किया है कि जो व्यक्ति तीर्थों में तिलकादि नहीं लगाते थे, वह मृत्युपरान्त घोड़ा बनते थे और जो मन्दिर के चारों ओर परिक्रमा नहीं करते थे, उन्हें दूसरे जन्म में बैल बनना पड़ता था[१४२] । वस्तुत: परमाल रासो और पृथ्वीराज रासो आदि में उपलब्ध इन धारणाओं के आधार पर यह स्पष्ट होता है कि उस समय वैदिक, ब्राह्मण निर्दिष्ट मान्यतायें पूर्णत: सम्बलित थीं । तीर्थों के अतिरिक्त वैयक्तिक जीवन में विविध उपलब्धियों के लिये विभिन्न देवी-देवताओं की पूजा होती थी और यह विश्वास था कि इन देवताओं की आराधना करके अभीष्ट सिद्धि हेतु वर प्राप्ति की जा सकती है । पृथ्वीराज चौहान तथा शशिव्रता पारस्परिक मिलन के लिए

शंकर भगवान को पूजा करते हुए चित्रित किए गए हैं।[१४३] इसी प्रकार पृथ्वीराज रासो में यह विवरण भी प्राप्त होता है कि अताताई नामक व्यक्ति प्रारम्भ में नारी रूप था और शंकर भगवान की पूजा से पुरुष हो गया।[१४४] परमाल रासो के अन्तर्गत अताताई न केवल पुत्री के रूप में पालित और पोषित होता है, बल्कि उसका विवाह संबंध भी हो जाता है।[१४५] उक्त परिस्थिति में वह शिवार्चन करता है। अपना शीश शंकर जी के समक्ष अर्पित कर देता है और तब पुरुष होने का तथा देवताओं को भी पराभूत कर देने का वरदान प्राप्त करता है--

> महादेव सिर जोरिया, सब जग मान्यो चित्र।
> बनिता सहित प्रसन्न है, किय पुत्री ते पुत्र।
> जाहि धाम चौरंगी सुत, हम दिन्नव बरदान।
> इक्क बार समता करै, नर सुर कह घमसान।[१४६]

परमाल रासो में ही आल्हा-ऊदल के पूर्वज चिन्तामनि शंकर भगवान को अपना शीश अर्पित करते हैं।[१४७] शंकर के द्वारा उन्हें पुन: जीवन प्राप्त होता है।[१४८] और वह अपने वंश में वीरों की उत्पत्ति का वरदान प्राप्त करते हैं।[१४९] पृथ्वीराज चौहान बटेश्वर में स्थित मन्दिर में शिवार्चन करते हैं और रणभूमि में विजयी होने के उपरान्त पुन: दर्शनार्थ आने की इच्छा व्यक्त करते हैं।[१५०] इसी प्रकार ऊदल और लाखन भी शिव-पूजन करके विजयी होने का वर प्राप्त करते हैं।[१५१] पृथ्वीराज रासो में शंकर भगवान, भूतनाथ का रूप धारण करके, चंडी के साथ और डाकिनी, योगिनी तथा भूत-प्रेतादि को साथ लेकर नाचते हुए वीरों के सिरों की मुण्डमाल धारण करते हुए चित्रित किये गये हैं--

पत्र भरें जुग्गिन रुधिर, ग्रिध्धियं मंस उकारि ।
नच्यौ ईस उमया सहित, रुण्डमाल गल धारि ।[152]

परमाल रासो तथा पृथ्वीराज रासो में रणभूमि में हर-हर शब्द का निनाद करते हुए शत्रुओं पर हमला करने के अनेक चित्र उपलब्ध होते हैं --

जय हर जंपे राज, चल्यौ थप्परि हय रुंध ।[153]

+ + +

दो सहस्र जोगा सु कंग, हर हर हर उच्चारि ।[154]

रासो काव्यों में शक्ति की आराधना कई रूपों में की गयी है। अनल-चाहमान शक्ति-पूजा के द्वारा ही शत्रुओं पर विजय प्राप्त करते हैं और उसे वांछित फल-प्रदायिका कुल-देवी के रूप में प्रतिष्ठित करते हैं।[155] धीर पुण्डीर के द्वारा जालन्धरी देवी की आराधना की जाती है और वह उसे सुख, मुक्ति, विजय की प्रदान करने वाली विश्व की आधायिका शक्ति तथा योग और भोग दोनों ही प्रदान करने वाली मानते हैं।[156] पृथ्वीराज रासो में चामुण्डराय तथा कैमास शक्ति की पूजा करके अपराजित होने का वरदान प्राप्त करते हैं।[157] पृथ्वीराज चौहान की माता के द्वारा 'शक्ति' के लिए होम कराया जाता है।[158] पृथ्वीराज चौहान भी शक्ति के लिए होम-क्रिया वटूवन की सम्पत्ति प्राप्त करने के लिए कराते हैं।[159] चन्दवरदायी के द्वारा कई स्थलों पर शक्ति की पूजा की जाती है।[160] चन्दवरदायी ने शक्ति के अनेक रूपों-- दुर्गा, डाकिनी, जगदमाता, जया, चामुण्डा, कमला, कल्याणी, पार्वती, महालक्ष्मी, मंगला, भद्रकाली, कंकाली, कराली, कलारूपिणी, महामाया

योगिनी, वाराही, शिवा, सरस्वती, शाकिनी, शंकरी, राधिका, यम, विष्णुमोहिनी, गोदावरी, गंगा, यमुना, गोमती आदि का उल्लेख किया है और यह धारणा व्यक्त की है कि शक्ति में विश्व की उत्पत्ति और संहार की क्षमता है[१६१]। शक्ति के द्वारा ही चन्द वरदायी को तन्त्र-मन्त्र तथा काव्य-कौशल की शक्ति प्राप्त हुई थी[१६२]। शक्ति ने ही चन्दवरदायी को सुन्दर वस्त्र प्रदान किये थे[१६३] और वही चन्दवरदायी की परीक्षा में सम्पन्न हुए किसी भी कार्य की सूचना भी देती थी[१६४]। जालपा देवी की पूजा करने से ही धीर पुण्डीर लौह स्तम्भ विदीर्ण कर सका था[१६५]। परमाल रासो के अन्तर्गत पृथ्वीराज चौहान को चण्डी के द्वारा उनकी जीत और आल्हा अथवा ऊदल में से किसी एक वीर की रणभूमि में मौत का वरदान प्राप्त होता है[१६६]। रासो काव्यों में कृष्ण भगवान को रक्षक के रूप में चित्रित किया गया है। पृथ्वीराज रासो में युद्धप्रयाण से पहले पृथ्वीराज चौहान कृष्ण भगवान का ध्यान करते हुए चित्रित किए गए हैं[१६७] तथा ब्राह्मण के द्वारा श्रीकृष्ण भगवान का नाम जाप करते हुए दिखाया गया है[१६८]। चन्दवरदायी के अनुसार कृष्ण भगवान का नाम जपते हुए सम्पूर्ण पापों का नाश सम्भव है[१६९]। मीलानाम के आक्रमण के समय यह विश्वास प्रकट किया जाता है कि गोवर्धन धारण करने वाले, कंस-वध करने वाले, कालि नाग नाथने वाले तथा परीक्षित की रक्षा करने वाले श्रीकृष्ण भगवान् रक्षा अवश्य करेंगे[१७०]। पृथ्वीराज रासो के अन्तर्गत कृष्णावतार का भागवत के आधार पर वर्णन किया गया है[१७१] और उसके अन्तर्गत उनकी विविध लीलाओं का निदर्शन प्राप्त होता है[१७२]।

परमाल रासो के अन्तर्गत चन्द्र-ब्रह्म के द्वारा भगवान राम के मन्दिर में पूजा की जाती है और भगवान राम उन्हें स्वत: आशीर्वाद देते हैं --

ता गढ़ थानौ राम नृप । चित्र कोट कहं जाय ।[१७३]

राहिल ब्रह्म को श्रीराम-भक्त चित्रित किया गया है।[१७४] परमार्दिदेव के द्वारा खजुरपुर में स्थित मन्दिर में जाकर राम-लक्ष्मण और सीता का अर्चन किया जाता है।[१७५] पृथ्वीराज रासो के अन्तर्गत पृथ्वीराज चौहान के द्वारा युद्धक्षेत्र में राम का नाम जपा जाता है और वह भगवान राम की कथा सुनते हुए चित्रित किये गये हैं।[१७६]

चन्दबरदायी के द्वारा पृथ्वीराज चौहान के कुछ सैनिकों को हनुमान का ध्यान करते हुए दिखाया गया है --

एक साट्ठ बच रचित एक पेबास उभय रत ।

एक हनु हिय ध्यान एक भैरू घोरत मह ।[१७७]

पृथ्वीराज रासो में हनुमान को विराट्, बीभत्स और भयंकर स्वरूप में निदर्शित करते हुए, हाथ में गदा धारण किये हुए ध्वजधारी तथा भूतों-प्रेतों का सहचर वर्णित किया गया है --

चलि आग हनुमान, एक जोजन ता अग्गिय ।

घटन रूप घन सज्जि, निजरि ता ताहि न लग्गिय ।

जोह बोज विकराल, धजा घन-वद्दल-रंगिय ।

कुत्थ गदा सोभंत, भूत प्रेतह ता संगिय ।

सामंत राज चिच्चिय सलस, हनुमान कथिय ।[१७८]

कुल-देवता के रूप में परमाल रासो के अन्तर्गत मनियादेवता को चित्रित किया गया है । जगनिक के द्वारा मनिया-देवता से प्रार्थना की जाती है कि वह आल्हा-ऊदल को कन्नौज से महोबा लौटने की प्रेरणा दें ।[१७६]

पृथ्वीराज रासो में गणेश को भी कुछ सैनिकों का आराध्य निदर्शित किया गया है ।[१८०]

इसी प्रकार रासो काव्यों में अन्य देव गण भी आराध्य हैं, जिनमें ब्रह्मा,[१८१] इन्द्र,[१८२] सरस्वती,[१८३] कुबेर,[१८४] हरि,[१८५] वाराहादि[१८६] अवतार,[१८७] यम,[१८८] गन्धर्व,[१८९] वलि,[१९०] पाण्डव,[१९१] महामाया,[१९२] गौरी,[१९३] लक्ष्मी आदि के उल्लेख प्राप्त होते हैं । अनेक स्थलों पर कुत्सित एवं निन्दित रूप में दानवों[१९४] और राक्षसों[१९५] का विवरण भी उपलब्ध होता है ।

तत्कालीन भारत में पवित्र नदियों में स्नान करने की प्रथा प्रचलित थी और इन नदियों को भी देवियों का ही रूप समझा जाता था । राजागण गंगा के किनारे जाकर धरती पर सोते थे --

भूमि सेज सुख सयन, गंग मंडल वर धारय ।[१९६]

+ + +

ऊन वस्त्र नृप अल्ट लै, भूतल दयौ विछाय ।[१९७]

गंगा को ब्रह्मा के कमण्डल से[१९८] तथा विष्णु के चरणों से उद्भूत[१९९] मानकर उन्हें भगवान शंकर के शीश पर विहार करने वाली[२००] तथा त्रैलोक्यवासियों का उद्धारक माना जाता था ।[२०१] गंगा नदी मोक्ष-प्रदायिका थी ।[२०२] गंगा में विशेष पर्वों पर स्नान करने का माहात्म्य माना

जाता था[२०३]। पृथ्वीराज रासो के अन्तर्गत चन्दवरदायी ने उल्लिखित किया है कि गंगा माता के द्वारा पापों का विनाश हो जाता है। जब तक गंगा की रज मानव-शरीर पर धारित रहती है, तब तक मनुष्य का प्राणान्त सम्भव नहीं[२०४]। परमाल रासो के अन्तर्गत यमुना नदी को यमराज की सास माना गया है[२०५] और पृथ्वीराज रासो में इसे सूर्य-पुत्री के रूप में अभिहित किया गया है[२०६]। यमुना नदी को साक्षात् ईश्वर की मूर्ति समझा जाता था--

गंगा मूरति विसन, ब्रह्म मूरति सर सत्तिय।
जमुना मूरति ईस। दिव्य देवन पुनि थप्पिय।[२०७]

तत्कालीन समाज में यह धारणा व्याप्त थी कि यमुना नदी का नाम लेते ही आवागमन से मुक्ति मिल जाती है --

कियौ अश्वमेधं पुनर्जन्म आवै। नहीं जन्म मातंग तौ ध्यान पावै[२०८]

परमाल रासो के अन्तर्गत यह चित्रित किया गया है कि यमुना नदी ने देवताओं की प्रार्थना पर, महोबा देखने की इच्छा व्यक्त करने पर, तद्वत् शुभाशीष प्रदान किया था[२०९]। यमुना के पानी को भी गंगा की ही तरह परम पवित्र समझा जाता था[२१०]। चन्दवरदायी के द्वारा गंगा और गोमती के जल का समान महत्व निरूपित किया है[२११]। पृथ्वीराज रासो में गोमती को शक्ति का मूर्तिमान स्वरूप बताते हुए उसकी महनीयता का निदर्शन किया गया है[२१२]।

पृथ्वीराज रासो के अन्तर्गत दानादि के सम्बन्ध में विवरण प्राप्त होते हैं। एक स्थान पर यह उल्लेख किया गया है कि कलियुग में दान देना प्रथम कर्तव्य है--

जुग सु आदि हुअक मंत्र गुर, त्रेता जुग हुआ स‌ु ।
द्वापर जुग पूजा प्रसिध, कलिजुग बार दत ।।[२१३]

एक स्थान पर सोमेश्वर के द्वारा यह कहा गया है कि सतयुग, त्रेता और द्वापर काल में राजाओं को यज्ञों के द्वारा मोक्ष प्राप्ति होती थी, किन्तु कलियुग में षोडस-दान के द्वारा सांसारिक आवागमन से मुक्ति सम्भव है।[२१४] पृथ्वीराज रासो के अन्तर्गत उत्तम, मध्यम और अधम ये तीन प्रकार के दान परिगणित किये गये हैं।[२१५] परमाल रासो के अन्तर्गत महादान लेना उत्कृष्ट नहीं माना जाता था। परमार्दिदेव, राजपुरोहित को अपनी पारस-मणि दे देते हैं और जब वह लोहे को सोना बनाने को पारस-मणि के गुण का व्यवहार करते हैं तो पारस-मणि को वापस कर देता है।[२१६] ग्रहण आदि के समय दान देने की प्रथा प्रचलित थी और यह विश्वास था कि ऐसे समय में दिया गया दान अति लाभकारी होता था। सोमेश्वर के द्वारा चन्द्रग्रहण के समय षोडस-दान दिये जाते हैं।[२१७] पृथ्वीराज रासो के अन्तर्गत षोडस-महादान की विवरणिका इस प्रकार है -- १- घोड़ा, २- सोने का रथ, ३- सोने का हाथी, ४- सोने का हल, ५- रत्न धेनु, ६- महाभूत - घट, ७- सोने का विश्व चक्र, ८- सर, ९- हिरण्य लता, १०- एक हजार गायें, ११- सोने की कामधेनु, १२- सोने का ब्रह्माण्ड, १३- सोने का कल्पतरु, १४- मेरु पर्वत सहित सोने की पृथ्वी, १५- ब्रह्मा की सोने की मूर्ति, १६- सोने की तराजू।[२१८] परमाल रासो के अन्तर्गत ५०० कुयें, ५०० बापी, १०००बाग, और सौ तालाबों का निर्माण बाल-ब्रह्म के द्वारा कराया जाता है और धार्मिक दृष्टि से इनके महत्त्व पर प्रकाश डाला गया है।[२१९] पृथ्वीराज रासो के अन्तर्गत

जयचन्द को दाना और दानपति को संज्ञाओं से चन्दवरदायी ने विभूषित किया है--

भूषण सुदान सुर समि आचार ।[220]

\+ \+ \+

दान कल्पित पति ।[221]

रासो काव्यों में तपश्चर्या को पर्याप्त महत्व प्रदान किया गया है । तपश्चर्या के अभाव में पत्नी, पुत्र, सम्पत्ति और राज्य आदि की उपलब्धि असम्भव बतायी गयी है ।[222] पृथ्वीराज चौहान की उत्पत्ति सोमेश्वर की तपस्या की परिणति बतायी गया है ।[223] अनंगपाल के द्वारा अपना पुनर्जन्म संभालने के लिए बद्रीनाथ में तपस्या की जाती है ।[224] ढुंढा राक्षस, तपस्या के कारण ही मोक्ष प्राप्त करता है ।[225] इसी प्रकार ढुंढो राक्षसी भी तपस्या करते हुए पार्वती जी से वरदान प्राप्त करती है ।[226] पृथ्वीराज रासो के अन्तर्गत सुमन्त ऋषि की बद्रीनाथ में अड़सठ तीर्थों का भ्रमण करने के बाद, कठोर तपस्या का विवरण उपलब्ध होता है ।[227] पृथ्वीराज रासो में ही एक ऋषि को बाघ-चर्म धारण करके गुफा में तपस्या करते हुए बताया गया है ।[228] कन्नौज नगर में गंगा देव जी के किनारे तपस्या करते हुए साधुओं को चन्दरवरदायी ने चित्रित किया है ।[229] कई स्थलों पर समाधि,[230] योग,[231] मुद्रा,[232] कुण्डली,[233] जटा,[234] विभूति[235] आदि शब्दों का प्रयोग पृथ्वीराज रासो के अन्तर्गत चन्दवरदायी ने किया है, जिनसे बौद्धों, नाथों, सिद्धों आदि की उपस्थिति का तत्कालीन भारत में ज्ञान होता है । परमाल रासो तथा

पृथ्वीराज रासो में धार्मिक ग्रन्थों के पढ़ने तथा सुनाने से पुण्य-फल की प्राप्ति का निर्देश किया गया है और उसी के साथ ही पृथ्वीराज रासो और परमाल रासो के पढ़ने-सुनने से भी मुक्ति मिलने का विवरण मिलता है । पृथ्वीराज रासो के अनुसार पुरुषार्थ चतुष्टय अर्थात् धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष की प्राप्ति पृथ्वीराज रासो को ही पढ़ने और सुनने से सम्भव है --

पावहि सुअरथ अरु ध्रम्म काम । निरमान मोष्य पावहि सुधाम ।
आवरत च्यारि जो सुनहि राज ।पावहि सुबि स बंछहि सुकाज ।[236]

इन रासो ग्रन्थों के पढ़ने और सुनने का माहात्म्य अतिशयोक्तिपूर्ण ढंग से चित्रित किया गया है । कई स्थलों पर इन रासो ग्रन्थों के सुनने से तीर्थाटन के समान फल-प्राप्ति, यज्ञादि सदृश प्रतिफल, देवी-दर्शन के समान पुण्य-लाभ बताया गया है ।[237] इसी प्रकार के विवरण रासो काव्यों में अन्यत्र भी प्राप्त होते हैं ।[238] रासो काव्यों में यज्ञ,[239] अजपा-जाप, मंत्र शक्ति[240] में विश्वास, अनन्य श्रद्धा-भक्ति,[241] मंदिरों का दर्शन,[242] मूर्तियों का पूजन[243] आदि के द्वारा अभीष्ट-सिद्धि और सद्गति की प्राप्ति की धारणा व्यक्त की गयी है ।

रासो काव्यों के अन्तर्गत ईश्वर और सृष्टि के संबंध में यत्र-तत्र विचार व्यक्त किये गये हैं । चन्दवरदायी के अनुसार यह संसार मिथ्या है तथा ईश्वर-भक्ति ही एकमात्र सत्य है । इसके साथ ही यह सांसारिक वस्तुयें स्वप्नवत् हैं तथा क्षणभंगुर हैं और विकराल काल के समक्ष मनुष्य केवल ईश-कृपा से ही सुरक्षित रह सकता है ।[244]

चन्दवरदायी के द्वारा ईश्वर को ही इस संसार का निर्माता बताया गया है और उसने ईश्वर को निर्गुण तथा सगुण दोनों ही रूपों में अभिहित किया है।[२४५] पृथ्वीराज रासो तथा परमाल रासो में ईश्वर को सम्पूर्ण सृष्टि-- आकाश-पाताल, स्वर्ग, चन्द्र आदि का रचयिता बताया गया है।[२४६] सर्वत्र हवा, आग, बादल, नदियों, समुद्रों, तीर्थों और पहाड़ों में उसकी व्याप्ति है।[२४७] चौरासी लाख योनियों में स्थावर-चेतन रवि-चन्द्र आदि के दुःख-सुख का नियन्ता ईश्वर ही है।[२४८] सूर्य और चांद केवल ईश्वर की ही इच्छा से उदित और अस्त होते हैं।[२४९] ईश्वर की ही इच्छा से हवा बहती है।[२५०] ईश्वर के निर्देश से ही वर्षा होती है,[२५१] उसी के तेज से धरती थमी हुई है।[२५२] ईश्वर के ही निर्देश से असीम सागरों में लहरें मर्यादित रहती हैं,[२५३] समस्त ब्रह्माण्ड-- अतीत, ~~ब्रह्माण्ड-अतीत~~, वर्तमान और भावी केवल उसी के आदेशानुसार परिचालित होता है।[२५४] परमाल रासो तथा पृथ्वीराज रासो में ईश्वर के दस अवतारों का उल्लेख किया गया है।[२५५] परमाल रासो के अन्तर्गत ईश्वरावतार के सम्बन्ध में यह उल्लिखित है कि धरती पर धर्म की कमी होने पर गाय के रूप में धरती विष्णु से प्रार्थना करती है और तब विष्णु अवतार लेकर धरती का भार कम करते हैं।[२५६]

रासो काव्यों के अन्तर्गत अभिशाप एवं वरदान से सम्बन्धित विवरण प्राप्त होते हैं, न केवल देव-मण्डल ही शाप या वरदान देने में सक्षम था, बल्कि जनता और सती नारियां भी वरदान अथवा अभिशाप देने की स्थिति में थीं। माणिक्य राव को मेवरा देवी ने यह वरदान दिया था कि घोड़े पर सवार होकर वह अपने राज्य की जितनी भूमि में पीछे देखे बिना भ्रमण कर लेंगे, उतनी ही भूमि रजतमय हो जायेगी।[२५७] परमाल रासो के अन्तर्गत भी आल्हा को गोरखनाथ ने अमर होने का वरदान

दिया था तथा सौरवन और मोहन संज्ञक दो अस्त्र भी प्रदान किये थे।[258] इसी प्रकार पृथ्वीराज रासो में यह स्पष्ट किया गया है कि शशिव्रता और संयोगिता का जन्म चित्ररेखा और मंजुघोषा नामक अप्सराओं को शाप लगने के कारण हुआ था।[259] संयोगिता को अपने पिता और पति के वंश का विनाश होने का भी अभिशाप दिया गया था। पृथ्वीराज चौहान को नेत्र-विहीन होने का शाप एक ऋषि के द्वारा मिला था।[260] पृथ्वीराज रासो में यह भी चित्रित किया गया है कि आनन्द नाम के एक राजा को मुनियों को कष्टान्वित करने के कारण राक्षस बनना पड़ा था।[261] चन्दबरदायी ने ही वीर बाहन राजा को प्रजा के द्वारा निपुत्री होने का अभिशाप देते हुए चित्रित किया है।[262] रासो काव्यों में स्वप्नों के माध्यम से भविष्य की गति का आभास मिलना प्रदर्शित किया गया है। यह भी उल्लेख मिलता है कि आधी रात के बाद के स्वप्न शत-प्रतिशत सत्य होते थे।[263] बुरे स्वप्न देखने के उपरान्त रात्रि-पर्यन्त जागरण की प्रथा प्रचलित थी।[264] यह विश्वास था कि बलि देने से स्वप्न के दुष्परिणामों का प्रशमन हो जाता है।[265] पृथ्वीराज चौहान को एक योगिनी के द्वारा बचपन में ही दिल्ली राज्य का अधिपति बनने का आभास स्वप्न में दे दिया जाता है।[266] पृथ्वीराज चौहान को मुहम्मद गोरी के आक्रमण का पूर्वाभास एक स्वप्न के द्वारा हो जाता है जिसमें कोई राक्षस उनकी रानियों को ले जाता है और वह उनकी रक्षा में असमर्थ रहते हैं।[267] पृथ्वीराज चौहान की पराजय से पूर्व उनकी राज्य-लक्ष्मी के द्वारा नारी रूप में उन्हें स्वप्न में ही सावधान किया गया था[268] और अपनी राज्य-रक्षा हेतु तत्पर होने का निर्देश दिया गया था। इसी प्रकार की अनेकानेक

घटनाओं का आभास स्वप्नों के द्वारा रासो[२६९] काव्यों में निदर्शित किया गया है[२७०], जिनमें महाराज अनंगपाल का स्वप्न, बालुकाराय[२७१] की पत्नी का स्वप्न, पृथ्वीराज चौहान[२७२] को खट्टूवन के धन-हेतु स्वप्न, चन्दवरदायी को कैमास-वध[२७३] का स्वप्न, महाराज परमाल को विन्ध्याचल की सम्पत्ति का स्वप्न[२७४], आल्हा को मनियादेवी द्वारा पृथ्वीराज चौहान[२७५] के आक्रमण का स्वप्न[२७६], जगनिक के कन्नौज पहुंचने का आल्हा को[२७७] स्वप्न, जससराज का स्वप्न, आल्हा को मलिखान की मृत्यु[२७८] का स्वप्न, ऊदल का युद्ध-भूमि में प्राणोत्सर्ग का आल्हा को आभास आदि संघटनाओं का संकेत स्वप्नों द्वारा ही तत्कालीन समाज में अभिनिविष्ट की गया है । रासो काव्यों में कई स्थलों पर जल्लदूत, बावनवीर तथा भूत-प्रेत विषयक आस्थाओं का उल्लेख हुआ है । इन्हें भयावह रूप-परिवेश और आकृति में चित्रित किया गयाहै है । बावन वीरों को वश में करने के लिए चन्दवरदायी के द्वारा किसी सिद्ध के द्वारा मन्त्र प्राप्त करने का उल्लेख हुआ है[२७९] । चन्दवरदायी ने भैरव को बावन वीरों का स्वामी बताया है[२८०] । भैरव के द्वारा चन्दवरदायी को[२८१] विपत्ति के समय साहाय्य प्रदान[२८२] करने[२८३] का आशीर्वाद[२८४] दिया जाता है । इन बावन वीरों के लिए देव, महापुरुष, देवसहायक आदि नामों से पुकारा गया है । बावन वीरों के प्रताप[२८५] से देवता, राक्षस, गन्धर्व, किन्नर और यक्ष सभी शंका ग्रस्त रहते थे[२८६] । बावन वीरों को विविध साधनाओं के द्वारा सिद्ध भी किया जा सकता था । बावन वीर अपूर्व एवं अपार्थिव[२८७] शक्तियों से सम्पन्न तथा विविध साज-सज्जाओं से पूर्ण माने[२८८] जाते थे । अकारण ही बावन वीरों का आह्वान कष्टप्रद हो जाता था ।

पृथ्वीराज रासो में चन्दवरदायी के द्वारा पृथ्वीराज चौहान के दरबार में बावन वीरों की आहूति करके[२८९] उनकी अर्चना की गया है[२९०] तथा किसी भी आपत्ति में उपस्थित होने का वचन लिया गया है[२९१]। इसी प्रकार जलद्भूतों को भी आग बरसाते, धूम्राच्छन्न करते, जल-वर्षण करते, पत्थर गिराते हुए चित्रित किया गया है[२९२]। पृथ्वीराज चौहान को जलद्भूतों के प्रकोप का भाजन बनना पड़ा था[२९३]।

आलोच्यकाल में मंत्र-शक्ति और जंत्र-क्रियाओं पर अटूट आस्था व्यक्त की गई है। यह धारणा थी कि मंत्राभिषिक्त शरीर पर अस्त्र-शस्त्रों का प्रभाव नहीं होता। यह भी विश्वास व्याप्त था कि मंत्रों के द्वारा असम्भव कार्य-निष्पत्ति सम्भव है। पृथ्वीराज रासो के अन्तर्गत चन्दवरदायी और दुर्गाकेदार के मध्य, मन्त्र-युद्ध चित्रित किया गया है, जिसमें चन्दवरदायी सर्वश्रेष्ठ मंत्रविद्या-प्रवीण मान लिया जाता है[२९४]। सर्वप्रथम दुर्गाकेदार के द्वारा सौ छेदों वाले घड़े से छेदों के द्वारा आग की चिनगारी तथा वेद-मंत्र निकलने की क्रिया सम्पन्न की जाती है[२९५]। चन्दवरदायी भी उन्हीं छेदों से आग की चिनगारियां, पानी की बौछारें निकालने के साथ-साथ पृथ्वीराज चौहान का स्तुतिगान और चतुर्दश विद्यापरक मन्त्र उच्चरित करने की, क्रिया की जाती है[२९६]। तदुपरान्त दुर्गा केदार के द्वारा छः महीने के शिशु से वार्तालाप कराने की क्रिया की जाती है और चन्दवरदायी एक दिन के बच्चे से ही बातचीत करा देता है[२९७]। इसी प्रकार दुर्गा केदार[२९८] और चन्दवरदायी[२९९] के द्वारा मन्त्र-शक्ति का प्रयोग एक घोड़े पर, शिलाखण्ड पर,

बालक का शीश काटकर उसके मुख से छन्द उच्चारण कराने में,[300] जलवर्षण[301] आदि करने में किया जाता है । अन्ततोगत्वा चन्दबरदायी मन्त्रों के द्वारा एक पत्थर पिघलाकर उसमें अपनी अंगूठी डाल देता है किन्तु दुर्गा केदार उस अंगूठी को निकाल नहीं पाता और वह चन्दबरदायी को अपने से श्रेष्ठ मान लेता है ।[302] पृथ्वीराज रासो के अन्तर्गत जैन धर्मानुयायी अमर सेवरा तथा वैदिक मतावलम्बी पंडितों के बीच तन्त्र-मन्त्र-शक्ति का प्रदर्शन चित्रित किया गया है ।[303]

न केवल जन्त्र-मन्त्र की शक्ति पर ही तत्कालीन सामाजिक और राजनीतिक जीवन में विशेष आस्था थी, वरन् ज्योतिर्विद्या का भी पर्याप्त महत्त्व था । परमाल रासो तथा पृथ्वीराज रासो आदि काव्यों में ज्योतिषियों से किसी भी कार्य को आरम्भ करने के पूर्व, लग्न अथवा मुहूर्त पूछने का प्रचलन था । पृथ्वीराज चौहान चन्देल राज्य पर आक्रमण करने के पूर्व मुहूर्त पूछते हैं ।[304] इसी प्रकार अनंगपाल द्वारा बद्रीनाथ यात्रा करते समय,[305] पृथा कुंअरि की विदाई के समय,[306] मुहम्मद गोरी से अन्तिम युद्ध पूर्व[307] मुहूर्तादि शोधन का उपक्रम किया गया है।

विवेच्यकालीन समाज में विविध प्रकार के शकुन और अपशकुन आदि का विश्वास प्रचलित था, जिसमें यह मान्यता थी कि उत्तम कोटि के शकुन सफलता सूचक[308] और अधम कोटि के शकुन पराभव के द्योतक[309] होते हैं । किसी भी प्रकार के अपशकुन होने पर कुछ देर तक रुक जाना[310] या अपशकुन सूचक पशु-पक्षी का वध कर देना प्रचलित था[311] और उत्तम कोटि का शकुन होने पर गांठ बांधने की मान्यता थी ।[312] यदि महिलाओं का बांया अंग फड़कता था तो इसे उत्तम माना जाता था--

हेमराज को सुता कहं, सगुन भये अधिकाय ।
बायां दृग फरकंत अति, आव गये निशिराय[313] ।

पृथ्वीराज रासो के अन्तर्गत कतिपय मानव-जीवन से सम्बन्धित कार्य-कलाप अशुभ समझे जाते थे, जिसमें दो रासभ, कुलाल, बिना जटायें बांधे हुए योगी, बिना तिलक-ब्राह्मण, रोता हुई विधवा आदि परिगणित किये जाते हैं --

रासभ उभय कुलाल करि, सिर बंधन निस मारि ।
वाम दिसा संमुख मिलइ, अवसि होइ प्रभु रारि ।
अतिलक बंभन स्याम अमु, जोगी हीन विमुक्त[314] ।
सम्मुख राज परख्खिये, गमन बरज्जै नित्त ।

इसी प्रकार प्रकृति के विभिन्न दृश्य शकुन अथवा अपशकुन के द्योतक माने जाते थे । पृथ्वीराज रासो और परमाल रासो आदि में, स्वच्छ आसमान, सूर्योदय, शीतल वायु बहना आदि उत्तम फलदायक माने जाते थे[315] । और यदि उल्कापात हो, सूरज मन्द हो, पेड़ की शाखा टूटे, अंकुश गिरे, जंगल में आग लग जाय अथवा दावाल धंस जाए तो अनिष्टकारी समझा जाता था[316] । पशु-पक्षी भी शकुन और अपशकुन के प्रतीक थे[317] । श्यामा चिड़िया अत्यन्त शुभ समझी जाती थी । इसी प्रकार तीतर, नाहर, सारस, चील, खर, चातक, उल्लू, तोता, बन्दर, बकरा, नेवला, दहाड़ता शेर, मृगसमूह, शृगाली आदि शुभकारी समझे जाते थे[318] । परमाल रासो के अन्तर्गत मोर, वाराह, सांड़, बकुल, कववा आदि उत्तम परिणाम के प्रतीक माने गए हैं[319] ।

विवेच्य रासो काव्यों में उपर्युक्त निर्दिष्ट विविध विश्वासों और मान्यताओं के साथ ही दार्शनिक पृष्ठभूमि में तत्वनिष्ठा,[320] धर्माधारित मोक्ष,[321] तद्हेतुक विविध साधन,[322] एवं समस्त दुःखों का कारण माया[323] मानते हुए धर्मयुक्त जीवनयापन में प्रगाढ़ आस्था थी । 'सातुक्क वट्ट',[324] (सन्मार्ग) अथवा 'आचार: परमोधर्म:'[325] ही तत्कालीन भारत का जीवन - धर्म था और मुक्ति का साधन भी --

मुक्किं सव्व सातुक्क वट्ट[326] ।

तत्कालीन भारत में भी गुरु का स्थान सर्वोपरि था । पृथ्वीराज चौहान के गुरु गुरु राम समाज में सर्वश्रेष्ठ पद के अधिकारी थे ।[327] यह गुरु ज्ञानदाता[328] और वन्दनीय[329] माने जाते थे । राजाओं की शक्ति और प्रेरणा के स्रोत थे ।[330] इसीप्रकार कई स्थलों पर ब्रह्म-ज्ञान,[331] योगमार्ग,[332] परमतत्व,[333] अनासक्ति,[334] कर्म-योग तथा वैराग्य-वृत्ति[335] का भी समुच्छ्वास रासो काव्यों में उपलब्ध होता है ।[336] जीव, जगत,[337] माया[338] और मोक्ष[339] के सम्बन्ध में भारतीय परम्परावलम्बित विचारणा ही रासो काव्यों में सम्वलित है ।

जैन रासो काव्य, तत्कालीन जैन संस्कृति के स्रोत तथा बहुलांश जैन संस्कृति की आत्मा स्वरूप निवर्तक धर्म का उद्घोष करते हैं । इनमें जैन संस्कृति के बाह्य एवं आन्तर दोनों रूपों का निवेश हुआ है । संघ, साधु,तीर्थ और ज्ञान-- इन चार संस्थाओं का उल्लेख रासो काव्यों में उपलब्ध है । ब्राह्मण एवं श्रमण परम्पराओं के संघर्ष और समन्वय की आवृत्ति इनका आधार है । परिवार,समाज

और राज्य के निवृत्तिवादी प्रवृत्तिमूलक आदर्शों की सृष्टि इनमें सन्निविष्ट की गई है। अहिंसा, सत्य, तप, ब्रह्मचर्य, आवश्यक क्रियाएं, कर्मतत्व अनेकान्तवाद, ब्रह्मजीवविषयक दृष्टि, मोक्ष, पर्वादि के विविध चित्र इनमें अवगुंफित हैं। वस्तुतः आदिकालीन हिन्दी जैन रासो काव्य, जैन दार्शनिक संस्कृति का ही समुच्छ्वास करते हैं।

गौतमस्वामी रास में साधक,[340] संघ,[341] वीतराग (वातराग) तथा अष्टपद शैल पर वंदना, २४ तीर्थंकरों की वन्दना, भगवान का उपदेश-श्रवण, मन्दिर-दर्शन, जिनबिंब संबंध, जिनेश्वर वाणी-श्रवण और कैवल्यादि का चित्रण मिलता है।[342] कई स्थलों पर वीवास जिन, और आदि जिनेश्वर[343] (जिणेसर)[344] का उल्लेख है। समरारास, 'अरिहंत' देवता का द्योतन करता है[345] पंचपाण्डवचरित रास में आदि जिनेश्वर[346] और कच्छूलि रास में स्वामी पार्श्व-जिन का विवरण[347] है। गौतमस्वामी रास में 'जादू' पर विश्वास व्यक्त किया गया है।[348]

उपदेश रसायन रास का प्रारम्भ जिनदेव की वन्दना से किया गया है --

पणमह पास -- वीरजिण भाविण ।
तुम्हि सव्वि जिव मुच्चहु पाविण ।
घरववहारि म लग्गा अच्छह
खणि खणि आउ गलंतउ पिच्छह ।।[349]

आचार्य जिनदत्त सूरि, ने त्रिभुवन स्वामी जिनेश्वर की वन्दना के पश्चात अपने गुरु जिनवल्लभसूरि की महिमा का वर्णन करते हुए

उन्हें माघ और कालिदासादि कवियों से भी श्रेष्ठ घोषित करते हैं--

मगह- मग्गु पुच्छियउ तु अक्खउ ।[350]

++ ++ ++ ++

दव्वु खित्तु कालु वि परियाणइ ।[351]

उपदेशरसायन रास के अन्तर्गत मूलतः सदाचार संबंधी उपदेश दिए गए हैं।[352] सन्मार्ग पर आरूढ़ एवं धर्मालु व्यक्तियों तथा कुमार्गगामी और पतितों के सम्यक् चित्र प्रस्तुत किये गये हैं।[353] युगप्रधान गुरु,[354] संघ,[355] साधु, साध्वी,[356] लौकिक, युक्तता,[357] तथा कौटुम्बिक आचरण[358] की मीमांसा की गई है। अन्त में कवि के द्वारा आशीर्वचन के साथ रचना की समाप्ति होती है --

इयजिणदत्तु वएसरसायणु,

इय परलोयह सुक्खह भायणु ।

कण्णंजलिहि पियंति जि भव्वइं,

ते हवंति अजरामर सव्वइं ।[359]

भारतेश्वर बाहुबलि घोर रास और भारतेश्वर बाहुबलि रास का प्रारम्भ भी जिनवन्दना से किया गया है।[360] अन्त में ऋषभदेव के उपदेश से कैवल्य पद प्राप्त होता है।[361] बुद्धिरास का प्रारम्भ अम्बादेवी की वन्दना से किया गया है --

पणमवि देवि अंबाई, पंचइण गामिणी ।

समरविदेवि सोघाई, जिण सासण सामिणी ।।[362]

बुद्धिरास के अन्तर्गत सद्गुरुवचन,[३६३] समाज में गुरु-वचनों का प्रचार, मानव-धर्म,[३६४] प्रियवचन, दान-महिमा,[३६५] श्रावक-धर्म,[३६६] सदाचार-दुराचार-आशीर्वचन,[३६७] गुरु-मातृ-पितृभक्ति[३६८] का उपदेश किया गया है।

जीवदयारास के अन्तर्गत धर्मोपदेश व्याप्त है। ग्रन्थ का प्रारम्भ सरस्वती वन्दना से किया जाता है --

उर सरसति आसिगु मगउ, नवउ रास जीवदया-सारु ।
कंनु धरिवि निसुणेहु जण, दुत्तरु जेम तरहु संसारु ॥[३६९]

उक्त रास ग्रन्थ में श्रावक-धर्म, माता-पिता-गुरु-आराधना, परोपकार, सद्वचन, सांसारिक क्षणभंगुरता, धर्माचरण, २८ ऋषियों तथा जिन[३७०] नेमिकुमार आदि महात्माओं की वन्दना का उपक्रम किया गया है। चन्दनबालारास के अन्तर्गत श्राविकाधर्म, ब्रह्मचर्य, संयम, सतीत्व,[३७१] शुचिता, ज्ञानमहिमा, मानवतावाद की भावभूमि समाविष्ट की गई है। जम्बूस्वामी रास भी एक धर्मप्रधान रचना है। इसके अन्तर्गत जैन तीर्थंकर जंबूस्वामी का आख्यान है। जिनवन्दना और गुरुवन्दना के द्वारा ग्रन्थारम्भ किया गया है--

जिण चउवीसह पय नमेवि गुरु चलण नमेवी ।
जंबूसामि हिं तणउं चरिय भविउ निसुणेवी ।
करि सानिध सरसति देवि जिम रयं कहाणउं ।
जंबू सामिहि गुण गहण संखेवि वखाणउं ।[३७२]

रेवंतगिरिरास में संघवर्णन, यात्रावर्णन तथा मूर्ति-स्थापना-वर्णन प्रस्तुत किया गया है। मूलत: इसकी विषयवस्तु धार्मिक है,

धार्मिक स्थल का चित्रण है और आध्यात्मिक संदेश संजोए है । संक्षेप में रेवंतगिरि (गिरिनार) के माहात्म्य का वर्णन इसमें अनुस्यूत है । गिरिनार, नेमिनाथ, संघपति, अंबिका, यक्ष, मन्दिर, दानवीरता, संघतीर्थों का शिल्प, मूर्ति का पराक्रम आदि इसके चार कडवकों में अभिप्रेत हैं । श्रावक भक्तों को धर्मालु बनाने का लक्ष्य लेकर इसकी रचना की गई है । ऋषभदेव के मन्दिर का निर्माण, इन्द्रमण्डप का उद्धार, मणिमय नेमि प्रतिमा की स्थापना, गिरिनार के अन्य देव-मन्दिरों तथा प्रतिमाओं के विवरण दिए गए हैं । परमेश्वर, तीर्थेश्वर और अंबिकादेवी केनाम स्मरण से ग्रन्थ का आरम्भ किया गया है --

परमेसर-तित्थेसरह, पय-पंकय पणमेवि ।
भणिसु रासु-रेवंतगिरे, अंबिक दिवि सुमरेवि[373]

आबूरास में भी आबू पर्वत पर ऋषभ जिनेन्द्र स्वामिनी अम्बादेवी के स्थान का घोतन करते हुए, वस्तुपाल तेजपाल के द्वारा आबू पर ही मन्दिर बनवाने का विवरण दिया गया है । नेमि जिणंद को प्रणाम करते हुए रचना का प्रारम्भ किया गया है--

पमणउ नेमि जिणंदह रासो[374]

नेमिनाथरास के अन्तर्गत, जैनियों के २३ वें तीर्थंकर नेमिकुमार के चरित्र का वर्णन किया गया है । संसार से वीतराग होना, राजमती का नेमिकुमार से दीक्षा ग्रहण करना, महानिर्वाण प्राप्त करना, राज्य के प्रति निर्लिप्तता, जीवदया आदि का चित्रण इस रास में संग्रथित है । रास का अन्त संघ की कल्याण कामना तथा जिणवर और अंबिकादेवी से विघ्नबाधायें, दूर करने की प्रार्थना से किया गया है --

सिरि जिणवइ गुरु बछ तासइ इहु मण हरमासु ।
नेमिकुमारह रइउ गणि सुमइण रासु ।
सासण देवी अंबाइ इहु रास दियंतह ।
विग्घु हरउ सिग्घु संघह गुणावंतह ।[375]

गयसुकुमाल रास भी मुनि गयसुकुमाल के साधनापूर्ण चरित्र का निदर्शन करता है । गयसुकुमाल की तितिक्षा और कैवल्य-प्राप्ति का अंकन करता है । वैराग्य, दीक्षा, श्मशान में ध्यान तथा जीवन उत्सर्ग का कथा है । रास का प्रारम्भ श्रुत देवी को प्रणाम करके किया गया है --

पणमेविणु सुयदेवी सुयरयण-विभूसिय ।
पुत्थय कमल करोह कमलासणि संठिय ।।[376]

स्थूलिभद्ररास में पाटलिपुत्र राज्य के मंत्री-पुत्र स्थूलिभद्र के भोगलिप्त जीवन से कोशा वेश्या द्वारा विमुक्ति अर्थात् शृंगार एवं उपदेश प्रधान कथाओं का संग्रह है । अपने भाई का राज-लिप्सा, पिता का वध और मंत्रित्वपद का प्रस्ताव देखकर `मणजालोचिउ`[377] कहते हुए स्वकेश उखाड़े तथा वैराग्य लेकर दीक्षा ग्रहण की । स्थूलिभद्र का संयमश्री , पंचव्रतपालन, विजितेन्द्रियता एवं चारित्रिक विशिष्टता का आकलन इस रास में है । प्रारम्भ में शासनदेवी और वागीश्वरी का स्मरण रचनाकार ने किया है--

पणमवि सासण देवी अनंड वाएसरि,
थूलिभद्द गुण गहणु मुनिवरह जुकोरि ।
मयण उ थूलि भद्दहु रासु,
पांडलि पुरि नयरि जसु वासु । [378]

कच्छूलिरास,पेथडरास और समरारास में भी संघवर्णन और संघपतियों की दानवीरता का निदर्शन किया गया है । कच्छूली तीर्थ तथा वहां पर पार्श्वजिन का मन्दिर, अनेक संघ-यात्राएं, दीक्षादि का चित्रण कच्छूलि रास करता है । पेथड और समरसिंह के द्वारा दान, तीर्थों का उद्धार, संघों का वर्णन, आदिनाथ की प्रतिमा स्थापना तथा जूनागढ , प्रभास-पट्टण आदि तीर्थों की यात्रा के विवरण दिए गए हैं । कच्छूली रास काप्रारम्भ पार्श्वजिन को नमन करते हुए हुआ है--

गणवह जो जिम दुरी उविहंडणु रोलनिवारणु,
तिहुयण मंडणु पणमवि सामीउ पासजिणु ।
सिरिभद्दे सरसुरिहिं वंसो वीजोसाहड,
वंनिसु रासो धमीय रोल निवाराउ ।। [379]

अन्त में कच्छूलीरास के अन्तर्गत फलश्रुति का विवरण दिया गया है --

जिणहरि दितसुणंतं मणवंछिय सवि पूरवउ ।। [380]

समरारास के प्रारम्भ में जिनवन्दना और सरस्वती की वन्दना की गई है--

पहिलउ पणमिउ देव आदीसरू सेत्तुज्ज हरे ।

++ ++ ++

तउ सरसति सुमरेवि सारयससहरनिम्मलीय ।[३८१]

तथा अन्त में फलश्रुति का विवरण दिया गया है--

`भणि सुणइ सो बयठऊ ए तीरथ ए तीरथ ए तीरथजात्रफल लेइ ।`[३८२]

जम्बूस्वामीरास[३८३] ,शान्तिनाथरास,[३८४] शान्तिनाथदेवरास,[३८५] महावीररास,[३८६] मयणरेहारास,[३८७] वीसविरहमानरास,[३८८] शालिभद्ररास[३८९] आदि के अन्तर्गत जैनधर्ममूलक विविध चरित्रों का चित्रण किया गया है,जिनमें उपदेश,उपासना, दान, संघ, जिनालय,तीर्थादि के विवरण प्रस्तुत किए गए हैं । इसीप्रकार पंचपांडवचरितरासु[३९०] ,त्रिविक्रमरास,[३९१] वारव्रतरास[३९२] भी इतिवृत्त और आख्यान का आधार लेकर जैन धर्म के माहात्म्य का निदर्शन करते हैं । जिनचन्द्रसूरिवर्णन-रास[३९३] में गुरु-प्रशस्ति का उद्भास है । श्रावकविधिरास के अन्तर्गत श्रावकों के कर्तव्य का बोतन किया गया है--

पाय पउम पणमेवि, चउवीसवितित्थ करह ।
श्रावकविधि संखेवि, भणइ गुणाकर सूरि गुणे ।[३९४]

++ ++ ++

जो पढइ जो सुणय जो रमइ जिणहरे,
सासणदेवि तासु सानिधि करइ ।
जाम ससि सूर अरु मेरु गिरिनन्दबा , तां
जयउ तिहुयणे एह जिण सासणं ।।[३९५]

रत्नशेखर या चतु:पर्वीरास,[३९६] अज्ञात लेखक का जैन-धर्माधारित चरित काव्य है । इसी प्रकार किसी अज्ञात कृतिकार का वर्णनात्मक काव्य सप्तक्षेत्री रास[३९७] है,जिसमें जिनमन्दिर, जिन प्रतिमा,

साधु, साध्वी, श्रावक, श्राविका और ज्ञान का विवरण दिया गया है। जिनेश्वरसूरि विवाह वर्णन रास,[398] जिनकुशलसूरि पट्टाभिषेकरास,[399] जिनपद्मसूरि पट्टाभिषेक रास[400] तथा श्री जिनोदयसूरि पट्टाभिषेकरास[401] के अन्तर्गत संयमश्री से आध्यात्मिक विवाह तथा दीक्षाभिषेक अथवा पट्टाभिषेक का वर्णन है।[402] `जिनकुशलसूरि` की प्रतिष्ठा के समय महोत्सव में २४००साध्वी, ७०० साधु एवं अनेक देशों के संघ कुंकुम-पत्रों द्वारा आमन्त्रित किए गए थे।[403]

वस्तुत: जैन रासो काव्यों के अन्तर्गत नवीन जीवन-दर्शन और दार्शनिक संस्कृति की व्याख्या अनुस्यूत है।[404] तपोमय जीवन को ही यज्ञ निरूपित किया गया है।[405] संयमश्री का सर्वाधिक महत्त्व उपदिष्ट है। भगवान महावीर गौतम रास में संयमश्री का उपदेश देते हुए ब्राह्मण-विद्वान, इन्द्रभूति और अग्निभूति को अपना अनुयायी बना लेते हैं--[406]

चरण जिणेसर केवल नाणी, चउविह संघ पयट्ठा जाणी ।
पावापुर सामी संपत्तो, चउविहदेव निकायहि जुत्तो ।।
उपसम रसभर भरि वरसंता, योजनावाणि वखाण करंता,
जाणि अ वर्धमान जिन पाया, सुरनर किंनर आवे राया ।।
कांतिसमूहे झलझलकंता, गयण विमाण रणरणकंता,
पेखवि इन्द्र भूई मन चिंते, सुर आवे अम्ह यज्ञ होवंते ।।
तीर तिरंडक जिमते वहता, समवसरण पहुता गहगहता,
तो अभिमाने गोयम जंपे, तिणे अवसरे कोपे तणु कंपे ।।
मूढा लोक अजाण्यो बोले, सुर जाणंता इम कांइ डोले,
मू आगल को जाण भणीजे, मेरु अवर किम ओपम दीजे ।।

भरतेश्वर बाहुबलिरास में शस्त्रबल और बाहुबल से कहीं अधिक शक्ति आत्मविजय में निरूपित की गई है।[407] स्थूलिभद्र संयमश्री के अग्रगण्य मुनि हैं।

विशुद्धि के लिए जैन परम्परा में सिद्धान्ततः अधिक बल दिया गया है। घोर तपस्या भी राग रहित न होने पर केवल ज्ञान प्रदान नहीं करता। गौतमस्वामी रास में 'राग' के त्यागने का विधान किया गया है, जिसमें न केवल माता-पिता, घर-परिवार से ही त्याग, वरन् 'गुरु' के प्रति भी भी राग-राहित्य का उन्मेष किया गया है[४०६]--

वलता गोयम सामि, सवि तापस प्रतिबोध करे,
लेइ आपणे साथ चले, जिम जुथाधिपति ।।३९।।
खीर खांड घृत आण, अमिअवूठ अंगुठ ठवि
गोयम एकण पात्र, करावे पारणो सवि ।।४०।।
पंच सयां शुभ भावि, उज्ज्वल भरिओ खीरमिसि,
साचा गुरु संयोगे, कवल ते केवल रूप हुआ ।।४१।।

++ ++ ++ ++

आवतुं ए वे उलट, रहेतुं रागे साहियुं ए,
केवलुं ए नाण उत्पन्न, गोयम सहेजे उमाहियुं ए,
त्रिभुवने ए जयजयकार, केवलि महिमा सुर करेए,
गणधर ए करे वखाणा, भवियण भव जिम निस्तरे ए ।।४६।।

तीर्थंकरों के जीवन में आत्मा की उत्क्रान्ति तथा मोक्ष-प्राप्ति के लिए १४ सोपानों को पार करने का चित्रण मिलता है।[४१०] वैराग्य, अहिंसा, सत्याग्रह, आपत्ति में धैर्य, शीलरक्षा हेतु आत्माहुति का अवलम्ब राजकुमारी चन्दनबाला के चरित्र में अवगुम्फित है।[४११] सप्तक्षेत्रिरासु में जिनवर

के द्वारा ६ तत्वों के सम्यकत्व की आवृत्ति है-- १- अहिंसा, २- सत्य, ३- अस्तेय, ४- शील, ५- अपरिग्रह, ६- दिक्प्रमाण, ७- भोगउपभोगव्रत, ८- अनर्थदंडत्याग, ९- सामयिक व्रत।[४१२] श्रावक विधिरास के ५० पदों में श्रावक धर्म का विवरण 'तिहिं नर आह न औड जिहिं पुला रवि उगाइय'[४१३] से लेकर रात को सोने तक सन्निविष्ट किया गया है।-

कतिपय जैन रासो काव्यों की रचना केवल जैनधर्मतत्व-विवेचनार्थ ही की गई है, यथा, उपदेशरसायन रास। जिनदत्तसूरि के द्वारा उक्त रास में महावीर के आचार-विचार संबंधित वचन-श्रवण, द्रव्य-क्षेत्र-काल का ज्ञान, क्रियाओं का वास्तविक अर्थ समझना, पारस्परिक प्रेम-भाव, अन्य धर्मावलम्बियों के प्रति सहिष्णुता, क्षमाशीलता आदि जैनमत की मूल मान्यताओं का परिवेश संजोया है गया है।[४१४] निष्कर्षत: उपदेश-रसायन रास का 'उद्देश्य' ही अधिकांश जैन रासो काव्यों का अभीष्ट है--

'सुगुरु-कुगुरु-सुपथ-कुपथ विवेकं लोकप्रवाहचैत्याविधि-निरोधकं विधिचैत्य- विधिधर्मस्वरूपावबोधकं श्रावक-श्राविका दिशिक्षाप्रदं धर्मोपदेशपरं चेत दपि द्वादशशताब्द्या उत्तरार्धे प्रणीतं सम्भाव्यते।'[४१५]

सन्दर्भ-सारणि

-o-

(अष्टम अध्याय)

सन्दर्भ-सरणि

-0-

(अष्टम अध्याय)

१- डॉ० पाण्डुरंग वामन काणे, अनु० अर्जुन चौबे काश्यप, धर्मशास्त्र का इतिहास, पृ०३ प्र० हिन्दी समिति,उत्तरप्रदेश, द्वि०सं० ।

२- ऋग्वेद १.२२.१८, ५.२६.६, ७.४३.२४, ६.६४.१ ।

३- उपरिवत् ।

४- ऋग्वेद १.१६४.४३ तथा १०.६०.१६ ।

५- ऋग्वेद ३.१७.१ एवं १०.५६.३ ।

६- ऋग्वेद ३.३१

७- वाजसनेयी संहिता २.३ तथा ५.२७ ।

८- अथर्ववेद ६.६.१७ ।

६- ऐतरेय ब्राह्मण ७.१७ ।

१०- छान्दोग्य उपनिषद् २.२३ ।

११- तैत्तिरीय उपनिषद् १.११ ।

१२- मनुस्मृति १.२ ।

१३- डॉ० पाण्डुरंग, वामन काणे, अनु० अर्जुन चौबे काश्यप, धर्मशास्त्र का इतिहास, पृ०४, प्र० हिन्दी समिति, उ०प्र०, द्वि०सं० ।

१४- याज्ञवल्क्य स्मृति १.१ ।

१५- वैशेषिक सूत्र १।१।२

यतोऽभ्युदय निश्रेयससिद्धि: स धर्म:

१६- पूर्वमीमांसा सूत्र १.१.२ ।

१७- महाभारत, अनुशासन पर्व, ११५.१.१ तथा वनपर्व ३७३.७६ ।

१८- सुत्तनिपात २ : ४ : १४ तथा महावग्ग ५.३.१, ६.३१, ५.२०, ५.१.१० ।

तथा दीघ निकाय, पृ० २६६ आदि

१९- पं० वै सुमेरुचन्द्र दिवाकर, जैन शासन, प्र० भारतीय ज्ञानपीठ,काशी।

२०- राहुल सांकृत्यायन, इस्लाम धर्म की रूपरेखा, प्र० किताब महल प्रा० लिमिटेड, इलाहाबाद ।

२१- गौतम सूत्र १.१.२

२२- आपस्तम्ब धर्मसूत्र १.१.१.२ ।

धर्मज्ञ समय: प्रमाणं वेदाश्च ।

२३- वसिष्ठ धर्मसूत्र १.४.६

श्रुति स्मृतिविहितो धर्मः ।

तदलाभे शिष्टाचार: प्रमाणम् ।

शिष्ट: पुनरकामात्मा ।

२४- मनुस्मृति २.६

वेदो खिलो धर्ममूलं स्मृतिशीले च तद्विदाम् आचारश्चैव सा धूनामात्मनस्तुष्टिरेव च ।

२५- वैशेषिक सूत्र १.१.२ ।

२६- महाभारत, शान्ति पर्व १०९-११ ।

२७- उपरिवत् ।

२८- पृ०रा०, सं० मोहन सिंह, साहित्य संस्थान, उदयपुर प्रथ,समय २६ छन्द ७६ तथा डॉ० सुमन राजे, हिन्दी रासो काव्य परम्परा पृ० ४८४, ग्रन्थम, कानपुर प्रका०,प्र०सं० ।

२६- द्रष्टव्य परिशिष्ट द्वितीय, प्रस्तुत शोध-प्रबन्ध ।

३०- पृ०रा०,का० प्र०,पृ०२०३०,छन्द ७३ तथा पृ०२००२ छन्द ५७८ तथा पृ०१६६५, छन्द ७१ तथा पृ० १५७४, छन्द ६८ तथा पृ० रा०, का० प्र०, खण्ड २, छन्द ८७ ।

३१- उपरिवत्, पृ० ४४६, छन्द ६ तथा पृ०४८२, छन्द २१४ तथा पृ० ४६१, छन्द २७८ ।

३२- उपरिवत्, पृ० ७१, छन्द ३५२ तथा पृ० ४६४ छन्द २८८ ।

३३- उपरिवत्, पृ०२२४२, छन्द ७८४-७८५ तथा पृ० २६२६, छन्द ३०८ ।

३४- पृ०रा०, उ०प्र०, समय ५८, छन्द ४१३ ।

३५- उपरिवत्, समय ३५,छन्द ५६ ।

३६- उपरिवत्, समय २३, छन्द १५४ ।

३७- उपरिवत्, समय ५, छन्द १३ ।

३८- पृ०रासउ, मा०प्र०गु०, सा०स० फाँसी प्रकाशन, ४ :१३ :३ ।

३९- उपरिवत्, १२ : ७ : ७ ।

४०- उपरिवत्, ४ : १० :११ ।

४१- उपरिवत्, ७.१०.६ ।

४२- उपरिवत् ८.८.२ ।

४३- उपरिवत्, ८.८.२ ।

४४- उपरिवत्, ८.२.५ ।

४५- पृ०रा०, उ०प्र०, समय ६, छन्द १ तथा समय ६१, छन्द १६८।

४६- उपरिवत्, समय ६, छन्द २ ।

४७- उपरिवत्, समय ३४, छन्द २७ ।

४८- उपरिवत्, समय ३४,छन्द ४० ।

४६- उपरिवत्, समय ६, छन्द ८ ।

५०- पृ०रासउ, मा०प्र० गु०, २ :३ : १५ , २ :२ :१६, ४ : २० :१।

५१- पृ०रा० उ०प्र०, समय ३५, छन्द ४५ ।

५२- पृ० रासउ, मा०प्र० गु०, ४ : २२ : १ ।

५३- उपरिवत्, ४ : २२ : १ ।

५४- पृ०रा०, का०प्र०,पृ० १६२५, छन्द ११५ ।

५५- उपरिवत्, पृ० ११२५, छन्द ३८ ।

५६- उपरिवत्, पृ० २३६०, छन्द २५ ।

५७- पृ०रा०, उ०प्र०, भाग ४, पृ० ६२६ छन्द १४८ तथा प०रा०, खण्ड६ छन्द १५६ ।

५८- पृ०रा०,का०प्र०,पृ०२५०४, छन्द २३२ ।

५९- उपरिवत्, पृ० २५०४, छन्द २३३-२३६ ।

६०- पृ०रा०, उ०प्र०, समय ५८,छन्द १३४ ।

६१- उपरिवत्, समय १, छन्द १३ ।

उपरिवत्,०समय

६२- उपरिवत्, समय १, छन्द ७६ ।

६३- उपरिवत्, समय ३८ छन्द ११ ।

६४- उपरिवत्,समय ५८, छन्द १३७ ।

६५- उपरिवत्, समय ६, छन्द १-३ तथा समय ५८, छन्द १३२ ।

६६- उपरिवत्, समय १, छन्द १ ।

६७- उपरिवत्, समय ५८, छन्द १३४ ।

६८- उपरिवत्, समय १, छन्द १४ ।

६९- पृ०रा०,का०पृ०, पृ० ५२ ,छन्द २६४से पृ०५३, छन्द २६८ तक।

७०- पृ०रा०, उ०प्र०, समय १ छन्द १० ।

७१- पृ०रासउ, मा०प्र०पु०, १:२:१, १ : २ : २।

७२- उपरिवत्, ३ :१७ : ३९, ४ : ११ : ७, ८ : ३ : ५ ०, ८:१:२।

७३- उपरिवत् ७ : ५ : ६ ।

७४- उपरिवत्, ६ ७ : ६ : २६ ।

७५- उपरिवत्, १ : ३ :२१ ।

७६- उपरिवत्, २ : ३ :१७ ।

७७- उपरिवत्, २ : ३ : १८ ।

७८- उपरिवत्, ४ : ११ : ७ ।

७९- उपरिवत्, ३ : २३ : १ ।

८०- उपरिवत्, ४ : २४ : १ ।

८१- उपरिवत्, ८ : २४ : १०२ ।

८२- उपरिवत्, ८ :३२ : ६ तथा ७ : ६ : ११

८३- उपरिवत्, ५ : १ : २ ।

८४- उपरिवत्, ५ : १ : २, ४५ से ६९ ।

८५- उपरिवत्।

८६- श्रीकृष्णदत्त भट्ट, जैन धर्म क्या कहता है ? , सर्व सेवा संघ प्रकाशन, पृ० ५-७७ तथा आदिकालीन जैन रासो काव्य, ~~द्वितीय~~ परिशिष्ट, षष्ठ प्रस्तुत शोधप्रबन्ध ।

८७- उपरिवत् ।

८८- उपरिवत् ।

८९- उपरिवत् ।

९०- उपरिवत् ।

९१- उपरिवत् ।

९२- उपरिवत् ।

९३- पृ०रा०रा०, मा०प्र०जु०, ३ : २३ :२ ।

९४- उपरिवत् ११ : १२ : १५ ।

९५- उपरिवत्, २ : ३ : ३४ तथा ६ : १० : १ ।

९६- उपरिवत् ७ : ८ : १ ।

९७- उपरिवत् २ : ३ : १५ ।

९८- उपरिवत्, २ : ३ : १६ तथा २ : १: १६ ।

९९- उपरिवत् , ७ : ६ : ११-१२ ।

१००- उपरिवत्, ७ : १७ : ३ तथा १२ : ३३ : ९ ।

१०१- उपरिवत्, १२ : १३ : १६ ।

१०२- उपरिवत्, ४ : २० : १-२ ।

१०३- पृ०रा०, उ०प्र०, समय २६, छन्द ७६ ।

१०४- पृ०रा०,का०प्र०,पृ० २०३०, छन्द ७३ ।

१०५- उपरिवत्, पृ० १३५३,छन्द ३७-३८ ।

१०६- उपरिवत्, पृ० २६२६, छन्द ३०८ ।

१०७- उपरिवत्, पृ० २२४२, छन्द ७८४-७८५ ।

१०८- उपरिवत् पृ० ११०५, छन्द ४३ ।

१०९- उपरिवत्, पृ० ५८१, छन्द १४५ ।

११०- उपरिवत्, पृ० ३८९, छन्द १३ ।

१११- उपरिवत्, पृ० ७१, छन्द ३५२ ।

११२- उपरिवत्, पृ० ७१, छन्द ३४९ तथा पृ० ७१,छन्द ३५१-५२ ।

११३- उपरिवत्, पृ० ४५४, छन्द ४० ।

११४- उपरिवत्, पृ० ४८२, छन्द २१४ ।

११५- उपरिवत्, पृ० १२७२, छन्द ४९ ।

११६- उपरिवत्, पृ० ४४६, छन्द ८ ।

११७- उपरिवत्, पृ० ४४७, छन्द १ ।

११८- पृ०रा०, उदयपुर, पृ०, भाग २, पृ० ४३२, छन्द २५ ।

११९- पृ०रा०, का०प्र०, पृ०४६४, छन्द २८८ ।

१२०- उपरिवत्, दसम समय, पृ० १८७ ।

१२१- उपरिवत्, दसम समय, पृ० १८६ ।

१२२- उपरिवत्, दसम समय, पृ० १६५ ।

१२३- उपरिवत्, दसम समय, पृ० १६६ ।

१२४- उपरिवत्, दसम समय, पृ० २०२ ।

१२५- उपरिवत्, दसम समय, पृ० २०५ ।

१२६- उपरिवत्, दसम समय, पृ० २१० ।

१२७- उपरिवत्, दसम समय, पृ० २१८ ।

१२८- उपरिवत्, दसम समय, पृ० २४३ ।

१२९- उपरिवत्, दसम समय, पृ० २५२ ।

१३०- उपरिवत्, पृ० १८१, छन्द २ ।

१३१- उपरिवत्, पृ० २५३, छन्द ५ ।

१३२- प०रा०, का०प्र०, खण्ड २, छन्द ८७ ।

१३३- उपरिवत्, खण्ड ३०, छन्द २६ ।

१३४- पृ०रा०, का०प्र०, पृ०११, छन्द ७६ ।

१३५- उपरिवत्, पृ० २२०२, छन्द ५७८ ।

१३६- उपरिवत्, पृ० १६६५, छन्द ७१ ।

१३७- उपरिवत्, पृ० १५७४, छन्द ६२ ।

१३८- उपरिवत्, पृ० ७५३, छन्द ४६८-४६६ ।

१३६- उपरिवत्,पृ०१६८८, छन्द १०-१२ ।

१४०- डॉ० गौरीशंकर हीराचन्द ओझा,मध्यकालीन भारतीय संस्कृति पृ० ३०-३१ हिन्दुस्तानी एकेडमी, उ०प्र०, तृ०सं० १६५१६० ।

१४१- पृ०रा०,का०प्र०,पृ० २११७,छन्द ६७४ तथा पृ० १११ छन्द५५६ तथा प०रा०,का०प्र०खण्ड१, छन्द १६५ तथा खण्ड १, छन्द १६४ तथा खण्ड १, छन्द ११२ ।

१४२- पृ०रा०,का०प्र०,पृ०११७१ छन्द ७८ ।

१४३- पृ०रा०, उ०प्र०, भाग१,पृ० १३६ छन्द १ ।

१४४- पृ०रा०, का०प्र०,पृ० १८७५, छन्द १६७४ ।

१४५- प०रा०,का०प्र०,खण्ड ३४, छन्द ३७ ३१ ।

१४६- उपरिवत्, खण्ड ३४, छन्द ३८-३६ ।

१४७- उपरिवत्, खण्ड २, छन्द १७३ ।

१४८- उपरिवत्, खण्ड २, छन्द २७४ ।

१४६- उपरिवत्, खण्ड २,छन्द १७८ ।

१५०- उपरिवत्, खण्ड ४, छन्द १३१ ।

१५१- उपरिवत्, खण्ड १०, छन्द ४५४ ।

१५२- पृ०रा०, उ०प्र०,भाग१, पृ० ४१०,छन्द ३३ ।

१५३- उपरिवत्, भाग १, पृ० २५७, छन्द ४५ ।

१५४- प०रा०,का०प्र०खण्ड १०,छन्द ५६६ ।

१५५- पृ०रा०,का०प्र०,पृ० ५२, छन्द २६४ ।

१५६- उपरिवत्, पृ० २०१६, छन्द १२ ।

१५७- पृ०रा०,उ०प्र०,भाग१, पृ० ३५०,छन्द १० ।

१५८- पृ०रा०,का०प्र०,पृ० २६५, छन्द ४६ ।

१५६- उपरिवत्, पृ०७४८, छन्द ४४१ ।

१६०- उपरिवत्, पृ० ४६०, छन्द २७३ ।

१६१- उपरिवत्, पृ० ४६२, छन्द २८० तथा पृ० २३६०, छन्द २३-२५ तथा पृ० २४०३, छन्द १३०-१३६ ।

१६२- उपरिवत्, पृ० १५२८, छन्द ११३ ।

१६३- उपरिवत्, पृ० २४०२, छन्द १२३ ।

१६४- उपरिवत्, पृ० १४८१, छन्द १०८-१०६ ।

१६५- उपरिवत्, पृ० २०२१, छन्द २४ ।

१६६- प०रा०, का०प्र०, खण्ड४, छन्द १४ ।

१६७- पृ०रा०, का०प्र०, पृ० ४०५ छन्द ११० ।

१६८- उपरिवत्, पृ० १६६५, छन्द ६६ ।

१६९- उपरिवत्, पृ० २२३, छन्द ३३६ ।

१७०- उपरिवत्, पृ०४५५, छन्द ४४ ।

१७१- उपरिवत्, पृ०२५२, छन्द ५६१ ।

१७२- उपरिवत्, पृ० २१८, छन्द ३०२ से पृ० २५२, छन्द ५६४।

१७३- प०रा०, का०प्र०, खण्ड२, छन्द २६३ ।

१७४- उपरिवत्, खण्ड २, छन्द ८७ ।

१७५- उपरिवत्, खण्ड ३०, छन्द २५-२६ ।

१७६- पृ०रा०, का०प्र०, पृ० १६६५, छन्द ७१ ।

१७७- पृ०रा०, उ०प्र०, भाग४, पृ० ६०० छन्द ७६ ।

१७८- उपरिवत्, भाग ४, पृ० ६२३ छन्द १३२ ।

१७९- प०रा०, का०प्र०, खण्ड७, छन्द ७८ ।

१८०- पृ०रा०, उ०प्र०, भाग४, पृ० ६०० छन्द ७६ ।

१८१- पृ०रासउ, सं०डॉ० मा०प्र०गु० १:६:४, २ : ८:२, ८ : ६: २।

१८२- उपरिवत्, ५ : ३१ : २।

१८३- उपरिवत्, १ : २ : २।

१७४- उपरिवत्, २ : ३ : १८।

१८५- उपरिवत्, २ : ३ : २० ।

१८६- उपरिवत्, ७ : ६ : २६ ।

१८७- उपरिवत्, ८ : २ : २ ।

१८८- उपरिवत्, ४ : ११ : ७ ।

१८९- उपरिवत्, २ : ३ : १६ ।

१९०- उपरिवत्, २ : १ : १६ ।

१९१- उपरिवत्, ४ : २२ : १० ।

१९२- उपरिवत्, ८ : ३२ : ६ ।

१९३- उपरिवत्, ७ : ६ : ११ ।

१९४- उपरिवत्, ६ : १० : १ ।

१९५- उपरिवत्, ७ : ८ : १ ।

१९६- पृ०रा०,उ०प्र०,भाग ४, पृ० ६२९ छन्द १४८ ।

१९७- प०रा०,का०प्र०,खण्ड ६,छन्द १५८ ।

१९८- पृ०रा०,का०प्र०,पृ० १६२५, छन्द ३२५ ।

१९९- उपरिवत्, पृ० १६२६, छन्द ३१९ ।

२००- उपरिवत्, पृ० १६२७,छन्द ३२६ ।

२०१- उपरिवत्, पृ० ३६, छन्द १६२ ।

२०२- उपरिवत्, पृ० ३६, छन्द १५९ ।

२०३- उपरिवत्, पृ० ३१९, छन्द १२९ ।

२०४- उपरिवत्, पृ०३६, छन्द १६८ ।

२०५- प०रा०,का०प्र०,खण्ड १७ छन्द ५३ ।

२०६- पृ०रा०,का०प्र०,पृ०११२५,छन्द ३८ ।

२०७- उपरिवत्, पृ० ११२६, छन्द ४६ ।

२०८- उपरिवत्, पृ० ११२६, छन्द ४४ ।

२०६- प०रा०,का०प्र०,खण्ड ६, छन्द १५१-१५२ ।

२१०- पृ०रा०,का०प्र०,पृ० ६०३, छन्द ५ ।

२११- उपरिवत्, पृ० ११७२, छन्द ४६ ।

२१२- उपरिवत्, पृ० २३६०, छन्द २५ ।

२१३- उपरिवत्, पृ० ७४२,छन्द ४१४ ।

२१४- पृ०रा०, उ०प्र० ३ : ११ : २५ ।

२१५- उपरिवत्, ३ : १२ : २७ ।

२१६- प०रा०,का०प्र०,खण्ड २, छन्द १६५-१६६,व १६७-१६८ ।

२१७- पृ०रा०,उ०प्र०, ३ : १६ : ३४ ।

२१८- उपरिवत्, ३ :१६ : ३१ ।

२१९- प०रा०, का० प्र०,खण्ड २०, छन्द १७५ ।

२२०- पृ०रासउ, मा०प्र०गु० २ : ३ : ५६ ।

२२१- उपरिवत्, ५ : ४३ : १ ।

२२२- पृ०रा०,का०प्र०,पृ० ५६४, छन्द २८ ।

२२३- उपरिवत्, पृ० १४५, छन्द ६६६ ।

२२४- उपरिवत्, पृ० ५६६, छन्द २ ।

२२५- उपरिवत्, पृ० ११३, छन्द ५६७ ।

२२६- उपरिवत्, पृ०६७२, छन्द ६ ।

२२७- उपरिवत्,पृ० १२३७,छन्द ६७-७१ ।

२२८- उपरिवत्, पृ०२००७, छन्द १५७ ।

२२९- उपरिवत्,०पृ० पृ०रासउ, मा०प्र०गु०,४ : १०:११ तथा४ :१०:१६।

२३०- उपरिवत्, ७ : ५ : ६ ।

२३१- उपरिवत्, १ ? ३ : १४ ।

२३२- उपरिवत्, ५ : ३८ : २१ ।

२३३- उपरिवत्, ५ : ३८ : २१ ।

२३४- उपरिवत्, १२ : ३ : १।

२३५- उपरिवत्, १२ : ३ : १ ।

२३६- पृ०रा०,का०प्र०,पृ०२५०४,छन्द २३२ ।

२३७- उपरिवत्, पृ० २५०४,छन्द २३३-२३६ ।

२३८- पृ०रासउ, मा०प्र०पु०, ४ : १० : ६ ।

२३९- उपरिवत्, १२ ? ३८ : ४ ।

२४०- उपरिवत्, १२ : ३८ : ४ ।

२४१- उपरिवत्, ५ : २ : ३-३३ ।

२४२- उपरिवत्, ४ : २२: १ ।

२४३- उपरिवत्, ४ : २२ : १-२ ।

२४४- पृ०रा०, का०प्र०,पृ० १२२७,छन्द २०२ ।

२४५- पृ०रा०,का०प्र०, पृ० १५, छन्द १८-२० ।

२४६- प०रा०,का०प्र०,खण्ड२, छन्द १६३ ।

२४७- उपरिवत्, खण्ड ३७, छन्द १६७ ।

२४८- पृ०रा०,का०प्र०,पृ० १५, छन्द १८-२० ।

२४९- उपरिवद, पृ० १५, छन्द २१-२५ ।

२५०- उपरिवत् ।

२५१- उपरिवत् ।

२५२- उपरिवत् ।

२५३- उपरिवद ।

२५४- उपरिवत् ।

२५५- प०रा०, का०प्र०,खण्ड १, छन्द ६५ तथा ६८ ।

२५६- उपरिवत्, तथा पृ०रा०,का०प्र०,पृ०११८१,छन्द २ ।

२५७- उपरिवत्, पृ० १४६३, छन्द २१३ ।

२५८- प०रा०,का०प्र०,खण्ड ३१, छन्द १८६ ।

२५९- पृ०रा० के का०,प्र०,पृ० ७७१, छन्द ७२ तथा पृ०१२४६,छन्द १६२ ।

२६०- उपरिवत्, पृ० २००८, छन्द १६२ ।

२६१- उपरिवत्, पृ० ७४३, छन्द ४२७ ।

२६२- उपरिवत्, पृ० ८८४, छन्द ५ ।

२६३- प०रा०,का०प्र०,खण्ड १०,छन्द ३८ ।

२६४- पृ०रा०,का०प्र०,पृ०२५७, छन्द ११ ।

२६५- उपरिवत्, पृ० २१४५,छन्द २५४ ।

२६६- उपरिवत्, पृ० २५६, छन्द ३ ।

२६७- उपरिवत्, पृ० २१४४,छन्द २५२ ।

२६८- उपरिवत्, पृ०१४०७, छन्द ८३ तथा ८८ ।

२६९- उपरिवत्, पृ०५९२,छन्द १५ ।

२७०- उपरिवत्, पृ०१३२७,छन्द २५४।

२७१- पृ०रा०,उ०प्र०,भाग ३, पृ० ३३८ छन्द २७ ।

२७२- उपरिवत्, पृ० ४९०,छन्द २७२ तथा पृ०१४८१,छन्द१०८-१०९।

२७३- प०रा०,का०प्र०,खण्ड ३०,छन्द ५८ ।

२७४- उपरिवत्, खण्ड १०, छन्द ४०३-४०४ ।

२७५- उपरिवत्, खण्ड ६, छन्द ४१-४२ ।

२७६- उपरिवत्, खण्ड २२,छन्द ३६-३८ ।

२७७- उपरिवत्, खण्ड६, छन्द २४-२६ ।

२७८- उपरिवत्, खण्ड ३१, छन्द १ ।

२७९- पृ०रा०,उ०प्र०, ३ : २४ : ४३ से ३ : २४ : ६० तक ।

२८०- उपरिवत् ।

२८१- उपरिवत् ।

२८२- उपरिवत् १: १०८ : १८ से १ :११४ :३७ तक।

२८३ उपरिवत् ।

२८४- उपरिवत् ।

२८५- उपरिवत्, १ : १११ : २७ ।

२८६- उपरिवत्, १ : ११४ : ३७ ।

२८७- उपरिवत्, १ ? ११५ : ३६ ।

२८८- पृ०रा०का०प्र०,पृ० ३२३,छन्द १५३ ।

२८९- उपरिवत्, पृ० ३२३, छन्द १५० ।

२९०- उपरिवत्,पृ० ३२०, छन्द ६८-६९ ।

२९१- उपरिवत्, पृ० ३२७,छन्द १७३ ।

२९२- पृ०रा०,उ०प्र०,३ : २४ :४३ से ३ : ३२ : ६० तक ।

२९३- उपरिवत् ।

२९४- पृ०रा०, का०प्र०,पृ० १५३१,छन्द १३८-१४१ ।

२९५- उपरिवत्, पृ० १५२४, छन्द ८२-८८ ।

२९६- उपरिवत्, पृ० १५२४,छन्द ८८-८९ ।

२९७- उपरिवत्, पृ० १५२४,छन्द ९० से पृ०१५२५,छन्द ९२ ।

२९८- उपरिवत्, पृ०१५२५,छन्द ९२ से पृ०१५२६,छन्द१०२-१३५ ।

२९९- उपरिवत् ।

३००- उपरिवत् ।

३०१- उपरिवत् ।

३०२- उपरिवत्,पृ०१५३१,छन्द १३८-१४३ ।

३०३- उपरिवत्, पृ० १५३१,छन्द १३८-१४३ ।

३०४- प०रा०,का०प्र०,खण्ड४, छन्द ५-६ ।

३०५- पृ०रा०,उ०प्र०, ७ : ८६ :२२ ।

३०६- उपरिवत्, १ ?: ३६२ : ४६-४७ ।

३०७- पृ०रा०का०प्र०,पृ०२२०१,छन्द ५७७ ।

३०८- उपरिवत्, पृ० १६०१,छन्द १६० ।

३०९- पृ०रा०, उ०प्र० ४ :६१० : १०६ ।

३१०- उपरिवत् ।

३११- उपरिवत्, ४ : ५६४ : ३६ ।

३१२- प०रा०,का०प्र०,खण्ड ४,छन्द ६८ ।

३१३- उपरिवत्, खण्ड १,छन्द १२६ ।

३१४- पृ०रा०,उ०प्र०,भाग४, पृ० ६०६,छन्द ६७ ।

३१५- पृ०रा०का०प्र०,पृ०७२२,छन्द २६६ ।

३१६- प०रा०,का०प्र०,खण्ड १६,छन्द ७६-८३ ।

३१७- पृ०रा०,का०प्र०,पृ०२५७ की टिप्पणी ।

३१८- उपरिवत्, पृ० १६०२,छन्द १६७-१६८ ।

३१९- प०रा०,का०प्र०,खण्ड ४, छन्द६६-६८ ।

३२०- पुष्पराज, मा०प्र०गु० ८:१४ : ३ ।

३२१- उपरिवत्, ३ :३२ : १-४ तथा १२ :३८ :३ तथा ८ :११:५ तथा ८ : ५ : ४ आदि ।

३२२- डॉ० सूर्यनारायण पाण्डेय,पृथ्वीराज रासो की शब्दावली का सांस्कृतिक अध्ययन विषयक शोध प्रबन्ध,इलाहाबाद विश्ववि०,पृ०३८२ ।

३२३- पुष्पराज, मा०प्र०गु० १ : ३ :१८ ।

३२४- उपरिवत्, ८ : १० : १० ।

३२५- मनुस्मृति १ : १०८ ।

३२६- पुष्पराज, मा०प्र०गु०, ८ :१० : १० ।

३२७- पृ०रा०,उ०प्र०समय १,छन्द ६० तथा समय ५८,छन्द८२तथा समय ६१,छन्द १६ ।

३२८- उपरिवत्, समय ६१, छन्द १६ ।

३२९- उपरिवत्, समय ६१, छन्द ३४५ ।

३३०- उपरिवत्, समय ६१, छन्द ३४५ ।

३३१- पृ०रा०,उ०प्र० समय ४८,छन्द ५७ ।

३३२- उपरिवत्, समय ४८, छन्द ५५-५६ ।

३३३- उपरिवत्, समय ४८, छन्द ५८-६२ ।

३३४- उपरिवत्, समय ६,छन्द ६ ।

३३५- उपरिवत्, समय २६, छन्द ८२ ।

३३६- उपरिवत्, समय ६०, छन्द ३४ तथा समय ६१,छन्द २५८, तथा समय ४५,छन्द ५४-५७ तथा समय ६१, छन्द २७४ ।

३३७- उपरिवत्, समय २, छन्द १०२ तथा समय १,छन्द १७४ तथा समय ६१ , छन्द २२६ तथा समय ५६,छन्द २५८ ।

३३८- उपरिवत्, समय २६, छन्द ८१ तथा समय ६१ छन्द ७२,३४५ तथा समय ६१,छन्द १६८ तथा समय ६१, छन्द १७३ तथा समय ६१,छन्द २४५,२४६,३४३ ।

३३९- उपरिवत्, समय ६१ छन्द २५३, २५८,२७४, ३००,३१२,३१७,३२५, ३६३ आदि ।

३४०- जयसागर अथवा विनय प्रभ उपाध्याय, गौतमरास, छन्द ८

३४१- उपरिवत्, छन्द ४८ ।

३४२- उपरिवत्, छन्द ३० तथा छन्द ३२-४१ ।

३४३- उपरिवत्, छन्द ३२ ।

३४४- उपरिवत् छन्द १ तथा ५ ।

३४५- अम्बदेव सूरि, समरारास,छन्द १ ।

३४६- शालिभद्र सूरि, पंच पाण्डव चरित रास,छन्द १५ ।

३४७- प्रज्ञातिलक,कच्छूलि रास,छन्द ३६ ।

३४८- विनयप्रभ,गौतमस्वामी रास,छन्द २१ ।

३४९- जिनदत्त सूरि, उपदेश रसायन रास,छन्द १ ।

३५०- उपरिवत्,छन्द ४ ।

३५१- उपरिवत्,छन्द ५ ।

३५२- उपरिवत्, छन्द १-८० ।

३५३- उपरिवत् ।

३५४- उपरिवत्।

३५५- उपरिवत् ।

३५६- उपरिवत् ।

३५७- उपरिवत् ।

३५८- उपरिवत् ।

३५९- उपरिवत् ।

३६०- वज्रसेनसूरि, भारतेश्वर बाहुबलि घोर रास,तथा शालिभद्र सूरि भारतेश्वर बाहुबलि रास, क्रमश: छन्द १ ।

३६१- उपरिवत्, क्रमश: अन्तिम छन्द ।

३६२- शालिभद्र सूरि, बुद्धिरास,छन्द १ ।

३६३- उपरिवत्,छन्द ५ ।

३६४- उपरिवत्, छन्द ६ ।

३६५- उपरिवत् ,छन्द १४ ।

३६७- उपरिवत्, छन्द ४७ ।

३६८- उपरिवत्,छन्द ६३ ।

३६९- उपरिवत्,छन्द ६२ ।

३७०- आसिगु, जीवदयारास,छन्द १ ।

३७१- उपरिवत्, छन्द ३-५३ ।

३७२- आसिगु,चन्दनबाला रास,छन्द १-३५ ।

३७२- धर्मसूरि जम्बू स्वामी रास,छन्द १ ।

३७३- विजयसेन सूरि, रेवन्तगिरि रास, छन्द १ ।

३७४- पाल्हण,आबुरास,छन्द १ ।

३७५- सुमतिगणि,नेमिनाथ रास, छन्द ५०-५८ ।

३७६- देल्हह, गयसुकुमालरास, छन्द १ ।

३७७- धर्मसूरि, स्थुलि,भद्र रास, छन्द २-२१ ।

३७८- उपरिवत्, छन्द १ ।

३७९- प्रज्ञा तिलक,कच्छुलि रास, छन्द १ ।

३८०- उपरिवत्, अन्तिम छन्द ।

३८१- अम्बदेव सूरि, समरारास, छन्द १-२ ।

३८२- उपरिवत्, छन्द १० ।

३८३- धर्मसूरि,जम्बू स्वामी रास, छन्द १-४३ ।

३८४- अज्ञात लेखक, शान्तिनाथ रास, अप्रकाशित ,जैसलमेर ज्ञान भण्डार में अपूर्ण प्रति ।

३८५- लक्ष्मी तिलक, शान्तिनाथ देव रास,अभय जैन ग्रन्थालय,बीकानेर ।

३८६- अभय तिलक,महावीर रास, अभय जैन ग्रन्थालय, बीकानेर ।

३८७- रयणु, मयण रेहा रास, अभय जैन ग्रन्थालय ,बीकानेर ।

३८८- अस्तिग, बीसविरहमान रास, जैन युग पु०५,पु०४३८ ।

३८९- राजतिलक गणि, शालिभद्र रास, अभय जैन ग्रन्थालय,बीकानेर ।

३९०- शालिभद्र सूरि, पंच-पाण्डव चरित रास गुर्जर रासावली ,गायकवाड़ ओरियण्टल सीरिज ।

३९१- विनोदय सूरि, त्रिविक्रम रास,बड़ा भण्डार,जैसलमेर ।

३९२- विनयचंद सूरि , बारव्रत रास, जैन युग पु०५,पु०४३० ।

३९३- लक्ष्मीसागर, जिन चंदसूरि वर्णन रास,अभय जैन ग्रन्थालय,बीकानेर ।

३९४- धनपाल, श्रावकविधि रास, मुक्तिमाला मुक्तिकमल जैन , मोहनमाला, पु०१७, छन्द १ ।

३९५- उपरिवत्, छन्द ५० ।

३९६- अज्ञात लेखक, रत्नशेखर या बधु: पर्वी रास,जैन गुर्जर कवियों,खण्ड१, भाग३, पृ०४१० ।

३९७- अज्ञात लेखक, सप्तक्षेत्रि रास, प्राचीन गुर्जर काव्य संग्रह ।

३९८- सोममूर्ति, जिनेश्वर सूरि विवाह वर्णन रास, ऐतिहासिक जैन काव्य संग्रह ।

३९९- धर्म कलश ,जिनकुशल सूरि पट्टाभिषेक रास, ऐतिहासिक जैन-काव्यसंग्रह ।

४००- सारमूर्ति, जिन पद्मसूरि पट्टाभिषेक रास, प्राचीन ऐतिहासिक जैन काव्य संचय ।

४०१- ज्ञान कलश,श्री जिनोदय सूरि पट्टाभिषेक रास, जैन ऐतिहासिक गुर्जर काव्य संचय ।

४०२- उपरिवत् ,छन्द ५ ।

४०३- डॉ० दशरथ ओझा, रास और रासान्वयी काव्य,पृ०२९७, ना०प्र० सभा वाराणसी प्रकाशन, प्र०सं०,सम्वत् २०१३ ।

४०४- उपरिवत्, पृ० ~~२८६~~ २८६ ।

४०५- उपरिवत्, पृ०२८७ ।

४०६- उपरिवत्,पृ०२८७ ।

४०७- उपरिवत्, पृ०२८८-८९ ।

४०८- उपरिवत्, पृ०२८९ ।

४०९- उपरिवत्, पृ०२९३ ।

४१०- उपरिवत्, ३०१ ।

४११- उपरिवत्, पृ० २९९ ।

४१२- उपरिवत्, पृ० ३१३ ।

४१३- उपरिवत्, पृ०३०५ ।

४१४- जिनदत्तसूरि, उपदेश रसायन रास, अपभ्रंश काव्यत्रयी में संकलित गायकवाड ओरियण्टल सीरिज,नं०३७, पृ०१२१-१२३ ।

४१५- उपरिवत, पृ० १२५ ।

-०-

नवम अध्याय

-0-

आदिकालीन हिन्दी रासो काव्यों में साहित्य,कला और विज्ञान की अभिव्यक्ति

नवम अध्याय

-0-

आदिकालीन हिन्दी रासो काव्यों में साहित्य, कला और विज्ञान की अभिव्यक्ति

(विषय- विवरणिका)

साहित्य का अभिप्राय-- भारतीय वाङ्मय ; वेद, पुराण, रामायण, महाभारत, काव्यशास्त्र, नाट्यशास्त्र, पिंगल, षडंग, चौदह विद्याएं तथा जैन धर्मशास्त्रादि की अभिव्यक्ति; परम्परागत चौंसठ कलाओं का अभिनिवेश ; ललित कलाओं-- वस्तु, मूर्ति, चित्र, संगीत, नृत्य, नाटक आदि का समायोजन; वैज्ञानिक परिवेश-- ज्योतिर्विज्ञान, जीव विज्ञान, वनस्पति - [illegible], विज्ञान, ऋतु विज्ञान, धातु विज्ञान, भूविज्ञान, कृषि विज्ञान, आयुर्वेद विज्ञान, भौतिक विज्ञान, रसायन विज्ञान, गणित तथा भाषा विज्ञान का द्योतन ; सन्दर्भ-सरणि ।

-0-

नवम अध्याय

-0-

आदिकालीन हिन्दी रासो काव्यों में साहित्य, कला और विज्ञान की अभिव्यक्ति

रासो काव्यों में 'साहित्य' का अभिप्राय उनमें उल्लिखित प्राचीन व भारतीय वाङ्मय[1] से है । इसके अन्तर्गत वेद,[2] पुराण[3] काव्यशास्त्र,[4] पिंगल-नाट्य,[5] राजनीति शास्त्र,[6] षडंग[7] और चौदह विद्याओं[8] की अन्विति आदि उल्लेख्य हैं । 'कलाओं' के क्षेत्र में रासो काव्यों में चौंसठ कलाओं का उल्लेख प्राप्त होता है,[9] जिनमें परम्पराधारित काम-सूत्र,[10] शुक्रनीतिसार,[11] प्रबन्धकोष[12] तथा ललित विस्तर[13] आदि की कला सूचियों का यत्किंचित् समावेश किया गया है । विवेच्यकालीन ललित-कलाओं-- वास्तु,[14] मूर्ति,[15] चित्र,[16] संगीत,[17] नृत्य,[18] नाट्य[19] आदि की प्रमुखता के साथ अन्य कलाओं[20] का भी द्योतन यहां अभीष्ट है । विज्ञान[21] से तात्पर्य इन रासो

काव्यों में प्रयुक्त ज्ञान-विज्ञान को विशिष्ट शाखाओं से है, जिन्हें शुद्ध विज्ञान की संज्ञा से अभिहित किया जाता है,यथा--गणित,रसायन, ज्योतिष,आयुर्वेद, भूगर्भ शास्त्र, प्राणिशास्त्र, वनस्पति शास्त्र तथा भौतिक विज्ञान आदि । प्राकृतिक परिदृश्य में -- पशुओं, पक्षियों, प्राकृतिक स्थानों तथा प्राकृतिक सम्पत्ति स्वरूप वनस्पतियों आदि के माध्यम से तत्कालीन वैज्ञानिक वैविध्य का सम्यक् निदर्शन प्राप्त होता है ।

तत्कालीन भारत में साहित्यिक विकास,कलात्मक अभिव्यक्ति, वैज्ञानिक पटुता एवं प्राकृतिक उन्मेषों का निदर्शन अलबेरूनी द्वारा विशदत: किया गया है ।[२२] इतिहासकारों द्वारा भी तत्कालीन भारत और योरोप आदि की समानस्तरीय वैज्ञानिक अभिरुचि का विश्लेषण किया गया है ।[२३]

रासो काव्यों में, भारतीय धर्म,दर्शन, साहित्य एवं राजनीति का मूल वेदों में बताया गया है । जैनमतावलंबित रासो काव्यों में जैन धर्मशास्त्रों का समावेश किया गया है ।[२४] पृथ्वीराज रासो में वेद-विहित मार्ग का अनुसरण करना प्रत्येक हिन्दू का धर्म बताया गया है --

भुगति भुम्मि किय बयार, वेद सिध्यि जल पूरन ।
बोय सु बय लय मध्य, ग्यान अंकुर सदूरन ।
त्रिगुन साख संग्रहिय, नाम बहु पत्त रत क्रिति ।
सुक्रम सुमन फुल्लयो, भुगति पक्का फल संगति,
दुज सुमन डसिय बुधपक्क रस, बट विलास गुन परसरिय,
तरु इक्क साख अयलोक तिहि, अजय विजय गुन बिस्तरिय ।[२५]

वेदों का समादर प्रत्येक हिन्दू का कर्त्तव्य था --

ठानिज्जै मानिज्ज मत, हानिज्जै गुरू ग्यान ।[26]
वेद धर्म जिन भंजर, जैन भ्रम परिमान ।।

वेदों में निर्दिष्ट पथ का पथिक बनने से ही व्यक्ति मुक्ति-भुक्ति प्राप्त कर सकता था --

भिरि भारथ दाहिम्म, मुट्टि रन ओय पकार ।
मात पित अरु स्वामि, वाच मन कम्म सुधार ।
वेद मग्ग उथ्थापि, मग्ग थप्पे वर धार ।
जोग मग्ग लभ्भैन, कम्म नक्कै भरतार ।।
आवृत्त सुद्ध गिरि जुरिग भर, भिरिग सूर सामंत नर ।[27]
लग लित्त लगिग दोउ दीन वर, बढ्ढि मंतिवर विप्पवर

वेदों को सभी धर्मों के अन्तर्गत अभिनन्दनीय कहा गया है--

एक देव सन्यास, सन्ध तारुणि भ्रम वारिय ।
इन्द्रिय दलदल मलिय, पुरिब परचर निज नारिय ।।
एक सत्त छत्रिय सुधम, धर्मंत स्वामि सुम ।
गुन गौ ग्रह ग्रह धरणि, वीर बद्दिदय मुवाद उम ।।
मंडलिय मरद मेवार पहु, मिलि प्रधान पुच्छि प्रसन ।[28]
सिखि कहिय सहिय, सुप्रत, सुविधि वेद विंदिय सुमन।

वेदों के अतिरिक्त ब्राह्मण एवं उपनिषद् ग्रन्थों के कथ्य और विशिष्ट उपदेशादि रासो काव्यों में बिना नामोल्लेख किए समाविष्ट किए गए हैं। गीता की विचार-सरणि कई स्थलों पर अवलोकनीय है।

युद्धभूमि में विजय अथवा मृत्यु के सम्बन्ध में पृथ्वीराज रासो के अन्तर्गत गीता के ही अनुरूप विचार प्रस्तुत किए गए हैं --

जौ जोवंदा जिि, मुकि तो सरग स माना[29]

इसी प्रकार निष्काम कर्मयोग तथा कर्मों के नष्ट हो जाने पर मोक्ष की प्राप्ति का आधार भी गीता की विचारधारा पर आधारित प्रतीत होता है।[30]

महाभारत का उल्लेख अनेक स्थलों पर किया गया है।[31] यत्र-तत्र पुराण शब्द का भी नामोल्लेख मिलता है।[32] महर्षि वेदव्यास का नाम भी आस्थापूर्वक उल्लिखित है।[33] श्रीमद्भागवत के आधार पर भी कतिपय कथानक समाकलित हैं।[34] रामायण[35], वाल्मीकि और रामायण[36] के ही अनेक पात्रों का उल्लेख[37] अनेकशः यह इंगित करता है कि वेदों के उपरान्त रामायण का ही तत्कालीन भारत में सर्वाधिक महत्व था।

रासो काव्यों के अन्तर्गत परम्परा-विहित, कामसूत्रादि उल्लिखित चौसठ कलाओं की विद्यमानता संकेतित है। डॉ० सूर्यनारायण पाण्डेय के द्वारा कलात्मक कार्यों के अन्तर्गत पृथ्वीराज रासो में कतिपय उल्लेख किये गये हैं, यथा-- गायन[38], वादन[39], नर्तन[40], नाट्य[41], अंगरागादिलेपन[42], पच्चीकारी[43], शयन रचना[44], रूपबनाना[45], माला गूंथना[46], मुकुट बनाना[47], वेश बदलना[48], कर्णाभूषण बनाना[49], सुगन्धित द्रव्य बनाना[50], आभूषण धारण[51], नाटक प्रस्तुत करना[52], रत्न-परीक्षा[53], बागवानी[54], मालिश करना[55], केश-मार्जन-कौशल[56], भविष्य-कथन[57], आशु काव्य-क्रिया[58], घोड़ा चढ़ी[59], द्यूत विद्या[60] और शिष्टाचार[61] आदि। इनके अतिरिक्त शुक्रनीति के आधार पर भी वस्त्र सज्जा[62], रतिज्ञान[63], शस्त्र-संचालन[64], कुश्ती[65], लक्ष्य-भेद[66], युद्ध-कर्म[67], देवपूजन[68], रंगसाजी[69], सेवा कार्य[70], ताम्बूल रक्षण[71], नट-कर्म[72] आदि का विवरणात्मक स्वरूप डॉ० पाण्डेय द्वारा प्रस्तुत किया गया है।[73] कामकला के सन्दर्भ में विविध रसपूर्ण स्थलों का

निदर्शन पृथ्वीराज रासो में द्रष्टव्य है । काव्य[74] कला का उच्चवास,[75] कवि और काव्यांगों[76] का विन्यास पृथ्वीराज रासो में अभिनिविष्ट है । स्पष्टतः उक्त विवरण पर आधृत सूची यदि कलात्मक कार्यों[77] और तत्कालीन कलात्मक विनोदों[78] का समाहार कर सके तब उल्लिखित कलाओं की संख्या रासो काव्यों में शताधिक हो जायेगी, किन्तु अनुसंधित्सु अभीष्ट यहां केवल वास्तु, मूर्ति, चित्र, संगीत एवं नृत्य तथा नाट्यादि कलाओं से ही है । चन्दवरदायी के द्वारा उक्त ललित कलाओं के साथ ही चौंसठ कलाओं का उल्लेख एकाधिक बार किया गया है--

सामुद्रिक लच्छिन सकल, चौंसठ कला सुजान ।
जानि चतुर दस अंग षट, रति वसंत परमान ।[79]

+ +

संवत् इक्कादसि इकत्यालीस सुदिन प्रिथिराज राज भर ।
अति सामंत उभार तखत धज ध्रम्म दिल्लि धर
दिया थानक नाइक, नाम किल्हन गुन गेयं ।
अति संगत सु विध, कला लच्छन अमेयं ।
ना साहित्य श्रीय रति रूप तन, वरस बवंद चातुरसकल
दुव सीस गुतच्छित मति विमल, अति मति कगनित विध वल ।।[80]

+ +

विधा विनय विवेक, वनि विरळं वर्णी कुबेर प्रभा ।
सुविचारी सुविचक्षणे सु, सुमनं सौजन्य सौन्दर्यता ।
माग्यं रूप अनपमं रस रसं संजोग विम्भोगयं
मांगल्यं संपूर सौम्य कलयं, जानंति केलो कला ।।[81]

रासो काव्यों के अन्तर्गत वास्तुकला सम्बन्धी अन्विति वैदिक कालीन आधार-पीठिका से लेकर राजपूतकालीन विविध कालखण्डों, के विकास-क्रम का समायोजन करता है । ऋग्वेद के अन्तर्गत पुर,[८२] व्रज,[८३] गृह,[८४] सद्म,[८५] प्रसद्म,[८६] दीर्घ प्रसद्म[८७] आदि शब्दों का प्रयोग किलों, प्रासादों और घरों के लिए प्राप्त होता है । रासो काव्यों के अन्तर्गत मुख्यतः नगरों में निर्मित भवनों का ही उल्लेख अधिकांशतः परिलक्षित होता है । तत्कालीन भारत में अजमेर, दिल्ली, कन्नौज, महोबा, रणथम्भौर, पट्टनपुर द्वारिका, काशी, मथुरा, अयोध्या, देवगिरि, हांसी, नागौर, लाहौर, समुद्र शिखर गढ़ , अनहिलवाड़ा तथा गजनी आदि नगरों का विवरण विभिन्न राज्यों की राजधानी के रूप में प्राप्त होता है, जिनमें नगर के चतुर्दिक एक परकोटा रहता था, जो कि रक्षा-पंक्ति का कार्य करता था--

रमि सगुल चल्यो नृपति, नैन दरसि सो नथ्थ ।
वर वासी छुट नैर को मिलन पसारत हथ्थ ।।[८८]

इस प्रकार के नगरों को जिनमें परकोटा रहता था-- गढ़ या दुर्ग की संज्ञा से अभिहित किये जाते थे और सामान्यतः इन्हें राजप्रासाद समझा जाता था ।[८९] राज-प्रासादों में राजा और राज-परिवार के स्वजन निवास करते थे ।[९०] उच्चतिउच्च भवनों को 'अटारी' नाम से अभिहित किया जाता था --

तिहिं दिवस चंद कविराज तत, अति उलास ओपम वढ़ि
उझ्झकत कंग सुकंग आगं, राज-कुमारिरि अटानि चढ़ि ।[९१]

+ + +

साल अटा जालिनि गवख, रचित्त नव रनिवास ।
छत्र छांह छवि करत जिन- भ्रमर गत रस वास ।।[९२]

श्रेष्ठ भवनों में 'कंगूरे' भी रहते थे[९३]। राजभवनों के अन्तर्गत ही अन्तःपुर[९४], सम्राट् का निजी कक्ष[९५], पाकशाला[९६], नाट्यकलाशाला[९७], हयशाला[९८], गज शाला[९९], शस्त्रागार[१००], पानभण्डार[१०१], तथा सभागृहों[१०२] का निर्माण किया जाता था। विशेष अतिथियों के लिए अतिथिगृह[१०३] का निर्माण किया जाता था। गढ़ से बाहर जाने के लिए दो प्रकार के द्वारों का उल्लेख किया गया है। पहला मुख्य द्वार[१०४] और दूसरा धर्मद्वार[१०५]। किवाड़ों का प्रयोग भी महलों और घरों[१०६] में होता था।

यद्यपि यजुर्वेद[१०७] में मणिकार, स्वर्णकार आदि का उल्लेख प्राप्त होता है, किन्तु वैदिककाल में मूर्ति-विज्ञान का प्रत्यक्ष प्रमाण नहीं मिल पाता। सिन्धुघाटी की सभ्यता के अन्वेषण में यक्ष, पृथ्वी और पशुपति आदि की मूर्तियां, मिट्टी के खिलौने आदि उपलब्ध हुए हैं[१०८]। प्रतीति है कि यह परम्परा विवेच्यकाल तक विकासशील रही होगी। पृथ्वीराज चौहान की स्वर्ण प्रतिमा का उल्लेख तत्कालीन मूर्ति-विज्ञान का अंकन करता है --

सौवन्न प्रतिमा प्रथीराज बानं। थापऊे पोलि जिमि दरबानं[१०९]

पृथ्वीराज रासो के अन्तर्गत चंडी[११०], द्वारिकाधीश[१११], शिव[११२], जालपा देवी[११३] आदि की मूर्तियों के पूजन का उल्लेख प्राप्त होता है।

विवेच्यकाल में चित्रसारी का उल्लेख प्राप्त होता है[११४]। स्पष्टतः इससे तत्कालीन भारत में चित्रकला के विकास की ओर उन्मुखता का ज्ञान प्राप्त होता है --

ततहीन पुतली, कुंमबंधी नट नचै-[११५]

\+ \+ \+

चित्र जानि ७ पुतरिय, नयन जुव्वैं पग मग्गिय ।[११६]

+ + +

कायर मुख ऐसे भए ज्यों चित-पुतल पान ।

सूरन मुख ऐसे भए ज्यों नव सुंदरि जान ।।[११७]

विवाहों एवं अन्य मांगलिक कार्यों के अवसर पर मण्डप बनाने[११८] तथा चौक पूरने[११९] में भी चित्रकारिता का उन्मेष रहता था । भारतवर्ष में संगीत-कला का उत्स वेदों में निहित है । ऋग्वेद-काल में सामगान से जनवर्ग पूर्णत: अभिज्ञ था । यजुर्वेद में वीणा, बांसुरी, शंख, आदि के बजाने वालों का उल्लेख प्राप्त होता है[१२०] । वैदिक काल से लेकर आलोच्यकाल तक संगीत शास्त्र का सतत् विकास हुआ है[१२१] । इसके अन्तर्गत मुख्य छ: राग हैं और रागिनियों की संख्या छत्तीस है, जिनका उल्लेख पृथ्वीराज रासो में हुआ है --

भरहिं दण्ड बल सण्ड, गर्भ गर्भिनि उर कढहिं ।

सगपन इक रुग त्याग, खलक सेवा सिर मंडहिं ।।

दुर्जनि देव गुर गाइ, पाइ, पुज्जियहि निरंतर ।

पंडित गुनी गुनग्य, द्रव्य लै चलहि दिसंतर ।।

दरबार भीर सुभटनि ठटनि, कला कलित नाटक नटहिं ।

छत्तीस राग रागिनि रसनि, तंतिलास्त के कंठहि ठहहिं ।।[१२२]

संगीत के अन्तर्गत 'नाद' मूल तत्त्व माना गया है, जिसके द्वारा सभी मंत्र-मुग्ध एवं कौतूहलपूर्ण हो जाते हैं --

कौतूहल आगम अलाप दिखिलय दर बंदह ।[१२३]

संगीत की राग-रागिनियां रासो काव्यों के अंतर्गत कई स्थलों पर प्रयुक्त हुई हैं । विविध मंगल-कार्यों के समय विवाहादि के उपलक्ष्य में गीतों का

प्रयोग हुआ है --

महलनि जालनि महल मंडि, दासो सालनि गानं ।
मंडय पण्डित वेद ध्वनि, घुमटनि सोम समान ॥[124]

\+ +

मंगल गावति कुमंकनि, कोकिल कंठा नारि ।
घुघट पुरुष जोवन झके, सुनहि सुहाई गारि ॥[125]

\+ +

संग विवाह मोमंग रुचि, बाजे बज्जनि लग्गि ।
मंगल मिलि गावहीं गौरव [गौरव] निस जग्गि ।[126]

\+ +

दिल्लिय पति सिनगारि , हट्ट पट्टन की सोभा ।
गौरव गौरव जाटान, दिल्लि प्रिय नर सुर लोभा ॥
भुगल भेरि नफेरि, नह नासान मदंगा ।
नाना करत संगीत, ताल वां ताल उपंगा ॥
गाजंत नम्भ गज्जिय गुहिर नृप प्रवेस सुंदरि करिय ।
सामंत जैत पय लग्गि प्रथ प्रथक प्रथक परसंस किय ॥[127]

पृथ्वीराज रासो के अन्तर्गत संगीत-सभाओं में अनेक प्रकार के गीतों का गाया जाना [128] उल्लिखित है । युद्धकाल में गाये गये राग,[129] नाद[130] तथा पंच - सुर[131] आदि संज्ञाओं का प्रयोग हुआ है । अनेक प्रकार के वाद्य-यन्त्र आलोच्यकाल में प्रयुक्त होते थे, जिनका प्रयोग विविध अवसरों पर किया जाता था । इन्हें मुख्यत: तन्तु-वाद्य, ताल-वाद्य, मुख-वाद्य, चर्म-वाद्य तथा अन्य वाद्य की कोटियों में रखा जा सकता है । पृथ्वीराज रासो में तन्तु-वाद्य के अन्तर्गत तम्बूर का उल्लेख मिलता है--

उठो ढाल गुलि तान, तान अन रंधि अग्गि सजि ।
भेरि मयंक निफोर तबल तंबुर लाग बजि ॥[132]

तालवाद्यों के अन्तर्गत घण्ट, घण्टा, और झांझ का उल्लेख प्राप्त होता है । इनका प्रयोग मन्दिरों, पूजागृहों, हस्ति यात्राओं आदि के सम्बन्ध में किया जाता था । घण्ट और झांझ के सम्बन्ध में यह उद्धरण द्रष्टव्य है --

घंटनि राग किलंक किंतु बिलय तकि दव्वल ।
वाज सिवा कुहोनि झयटि व्यं बुनि पल बव्वल ।[133]

+ +

बजि निसान दरबार, बज्जि भेरिय भुंकारणि ।
सहनाइ सुर संग, बाज्जि झंझिय झंकारणि ।[134]

इसी प्रकार घंटा, क ताल-वाद्य का भी उल्लेख मिलता है ।[135]

मुखवर्ग के अन्तर्गत मुरली और शंख का उल्लेख प्राप्त होता है--

किन जिम्भी जंजार, भार कहे भुज हिल्ले ।
किन सखियन संसार, हार मुरली मुरलिल्ले ॥[136]

+ +

अवतार रूप दरस त भल, संख बजावत माधरिय ।
लल असी मकमक पांरूस अतुल, धर कंपत पग्गह धरिय ।[137]

इसी वर्ग के अन्तर्गत शहनाई[138] और सिंगी[139] को म रक्खा जा सकता है ।

चर्मवाद्यों का उल्लेख रासो काव्यों में सर्वाधिक हुआ है । इनमें डमरु और उपंग विशेष उल्लेखनीय हैं --

डमरिय डहकि,विज्जुल लहकि लग कट्यो गोमेमजा ।
कंप्यो नरिंद अवसानं लकि,कौं हारिय हुथता ।।[१४०]

++ ++ ++ ++

भुंगवल भेरि नफेरि, नद नोसान प्रबंगा ।
नाना करत संगीत , ताल सौं ताल उपंगा ।।[१४१]

अन्य चर्म-वाद्यों के अन्तर्गत डंका[१४२], तबला[१४३],नगाड़ा[१४४], ढोल[१४५], धौंसा[१४६], मृदंग[१४७], भोमंग[१४८], रणतूर[१४९] तथा निसान[१५०] परिगणित किये जा सकते हैं ।

रासो काव्यों के अन्तर्गत उक्त वर्गीकृत वाद्य-यन्त्रों के अतिरिक्त नफीरी[१५१],नौबत[१५२],दुन्दुभी[१५३],भेरी[१५४], तथा तुरही[१५५] का भी उल्लेख प्राप्त होता है ।

तत्कालीन भारत में नृत्य-कला राज दरबारों में मनोरंजनार्थ अनिवार्य बन गयी थी । भारतवर्ष में सांस्कृतिक विकास की दृष्टि से यह कला अत्यन्त महत्वपूर्ण है । ऋग्वेद[१५६] के अन्तर्गत नृत्यकला में योग्य महिलाओं का उल्लेख किया गया है । यजुर्वेद[१५७] में भी 'वंशनर्तिन' शब्द का प्रयोग मिलता है । रासो काव्यों की उद्भुति नृत्य-गीत-परक मानी गयी है[१५८] । रासो काव्यों के अन्तर्गत अनेक स्थलों पर नृत्यकला का उल्लेख प्राप्त होता है --

देवग्गिरि उद्दव नरेश, अति प्रबल तपत तय ।
संगीतक बर कला, गहन शुभ ज्ञान गुमत बय ।।
तान सु गुन्न लहन, भेद शुभ आन विचारं ।
तास राज समीप, रहौ नट विध उचारं ।
ताग्रह सुपात्र अन्नेक, गुन रहे सु तहं निशि दोहपर ।
राजंत राज उद्दव नृपति, ज्यों सुदेव-पति नाक गुर ।। १५६

++ ++ ++

बोल ताम नाइब, सत्थ सत्थह सब बाजं ।
बोलि पात्र कर्नाटि, बैठि गानं बर बाजं ।।
नाटक भेव निबंध, बभि, राजन वर वतं ।
कवन कला व कृत पात्र, कहा नाइक निज बत ।।
नायक कहै प्रथिराज सुनि, इह पात्र दिक्खौ सुपय ।।
इह रूप रंग जोवन सुवय, कला मनोहर चिति मय ।। १६०

++ ++ ++

मृदु मृदंग धुनि संचरिय, अलि अलाप सुध ध्यंद ।
ताल त्रिग्राम उपंग सुर, औसर पंग नरिंद ।। १६१

++ ++ ++

ज्वलन दीप लिय अगर रस, फिरि घनसार तमोर ।
जमनिक पट उब महल मुल । गुनु । सरद अभ्भ ससि कोर ।। १६२

++ ++ ++

तत धरम्मह मंत इह, रतह काम सुचित ।
काम विरुद्धनि विद्धकिय, नृत नितंबनि नित ।। १६३

दापांगी चंद नैत्रा नलिन अलि मिला, नैन रंगी कुरंगा ।
कोकांगी दीर्घनासा सुरसर कलिका ,नारिंगी सारदंगा ।
श्द्रानी लोल डोला चपल मति धरा, एक बोला अमोला ।
पुष्पा वानी विसाला सुमग गिरवरा, जैस रंभा सुबोला ।।[१६४]

उल्लेख्य यह है कि रासो काव्यों में नारद[१६५] और शिव[१६६] को नर्तक के रूप में प्रस्तुत किया गया है । इन काव्यों में संगीतात्मक संज्ञाओं का यत्किंचित् प्रयोग उपलब्ध होता है,यथा-- धुन[१६७], तान[१६८], ग्राम[१६९], अलाप[१७०], ध्रुवपद[१७१] और सिंधुराग[१७२] आदि ।

नृत्यकला का ही भांति नाट्य अथवा अभिनय-कला भी तत्कालीन भारत में पुष्पित-पल्लवित हो रही थी[१७३] । राजागण तथा अभिजातवर्ग की नाट्यकला में अभिरुचि थी[१७४] ।

भारतवर्ष में सांस्कृतिक अनिवार्यता के अनुरूप विविधमुखी वैज्ञानिक प्रगति प्राचीनकाल से ही परिलक्षित होती है । विज्ञान की विभिन्न शाखाओं-- ज्योतिर्विज्ञान[१७५], जीव विज्ञान[१७६],वनस्पति विज्ञान[१७७], नक्षत्र विज्ञान[१७८], ऋतु विज्ञान[१७९], धातु विज्ञान[१८०], भूविज्ञान[१८१],कृषि विज्ञान[१८२], आयुर्वेद विज्ञान[१८३], भौतिक विज्ञान[१८४],रसायन विज्ञान[१८५], भूगर्भ विज्ञान[१८६] गणित[१८७] भाषा विज्ञान[१८८] आदि के मूलभूत सिद्धान्तों का प्रारम्भ और विकास वैदिक काल से ही उपलब्ध होता है ।

आलोच्यकालीन रासो काव्यों के अन्तर्गत भारतीय संस्कृति के सर्वांगीण प्रतिबिम्बन में उक्त वैज्ञानिक विकास द्वारा पर्याप्त साहाय्य प्राप्त हुआ है । यद्यपि उपर्युक्त वैज्ञानिक अन्विति का उल्लेख विवेच्य साहित्य में संकेतित ही है, तथापि तत्कालीन रासो साहित्यकारों

ने व्यष्टिनिष्ठ समष्टिगत विन्यास करते हुए वैज्ञानिक विभूति का भी निदर्शन किया है ।

पृथ्वीराज रासो के अन्तर्गत ज्योतिर्विज्ञान, नक्षत्र-विज्ञान अथवा खगोल विद्या के सम्बन्ध में अनेक स्थलों पर उल्लेख प्राप्त होते हैं । युद्धादि के अवसर पर शुभलग्न-विचार तथा मुहूर्त-शोधन का कार्य ज्योतिषियों अथवा गणकों के द्वारा किया जाता था । रासो काव्यों में सर्वाधिक वैज्ञानिक उल्लेख ज्योतिर्विज्ञान का ही हुआ है । पृथ्वीराज रासो में रेवा तट समय के छन्द ५५ के अन्तर्गत ज्योतिर्विज्ञान का चित्रण चन्दवरदायी द्वारा किया गया है, जिसमें अष्ट चक्र, योगिनी, भरणी नक्षत्र, पंचम स्थान में गुरु, पंचम स्थान में सूर्य, अष्टम स्थान में मंगल, केन्द्रस्थान में बुध, क्रूर-ग्रह सूर्य तथा मंगल का उदित होना, चक्रचिन्ह और हाथ में त्रिशूल चिन्ह आदि का अभिनिवेश है--[१८९]

वरमंगल पंचमी दिन सु दीनी प्रिथिराजं ।
राहु केतु जप दीन दुष्ट टारे सुभ काज ।।
अष्ट चक्र जोगिनी भोग भरनी सुधिरारी ।
गुरु पंचमि रवि पंचम अष्ट मंगल नृप भारी
केन्द्र बुद्ध मारथ्य भल कर त्रिशूल चक्रावलिय
सुभ घरिय राज बरलीन बर चढ्यौ उदै क्रूरह बलिय[१९०]

रासो काव्यों के अन्तर्गत अमर सेवरा, दुर्गाकेदार और चन्दवरदायी आदि ज्योतिर्विद्या-प्रवीण विद्वानों का उल्लेख मिलता है तथा इनमें नक्षत्र-ग्रह[१९१] आकाश-गंगा[१९२], आकाश[१९३], पाताल[१९४], मृत्युलोक[१९५], सूर्य-[१९६]चन्द्र[१९७], विश्व-[१९८] ब्रह्माण्ड[१९९], बैकुण्ठ[२००], प्रलय[२०१], वायु[२०२], विद्युत[२०३], मेघादि[२०४] संज्ञक शब्दों का प्रयोग उपलब्ध होता है । डॉ० नेमिचन्द्र शास्त्री के अनुसार इस काल में शकुन-शास्त्र, मुहूर्त-शास्त्र, रमल-शास्त्र, ताजिक-शास्त्र, यन्त्रशास्त्र, ग्रहण

गणित-शास्त्र तथा सिद्धान्त ज्योतिष का विशेष विकास हुआ और भास्कराचार्य दुर्गदेव, उदयप्रभदेव, मल्लिषेण, राजवर्म, बल्लालसेन, पद्मप्रभसूरि तथा महेन्द्र सूरि आदि के द्वारा उल्लेखनीय ज्योतिर्विज्ञान तथा गणित के क्षेत्र में कार्य किये गये।[२०५]

रासो काव्यों में प्रकृति के विविध दृश्य वन्य-सम्पदा,[२०६] वनस्पतियां,[२०७] विभिन्न पशु,[२०८] विविध पक्षी आदि अनेकशः वर्णित किये गये हैं। कृषि-उपज,[२०९] विभिन्न ऋतुएं,[२१०] जलवायु[२११] प्राकृतिक स्थल[२१२] आदि के विवरण दृष्टि पथ पर आते हैं। खनिज पदार्थों[२१३] में भी हीरा, मोती मणि, सोना, लोहा, कांच, नग, सप्तधातु, आदि उल्लिखित हैं। शृंगारसज्जा हेतु विविध सुगन्धित द्रव्यों[२१४] का प्रासंगिक प्रयोग प्राप्त होता है। निष्कर्षतः इन विवरणों से वनस्पति-विज्ञान, प्राणि-विज्ञान, कृषि-विज्ञान, ~~क्षक एवकक~~ ऋतु-विज्ञान, भू-विज्ञान, भूगर्भ-विज्ञान, धातु-विज्ञान तथा रसायन विज्ञानादि की ~~अधिकतक~~ अभिज्ञता का द्योतन ~~ह~~ होता है।

सन्दर्भ-सरणि

-०-

(नवम अध्याय)

सन्दर्भ-सरणि

-0-

(नवम अध्याय)

१ (अ) प्रो० शिवदत्त ज्ञानी, भारतीय संस्कृति, राजकमल प्रकाशन दिल्ली, अध्याय ११ तथा १२ ।

(ब) म०म० डॉ० प्रसन्नकुमार आचार्य, भारतीय संस्कृति एवं सभ्यता, हिन्दी साहित्य सम्मेलन,प्रयाग, प्रकाशन,अध्याय ७ 'वाङ्मय' पृष्ठ ७८- ३०३ ।

(स) डॉ० लल्लन जी गोपाल तथा डा० ब्रजनाथ सिंह यादव, भारतीय संस्कृति, विश्वविद्यालय प्रकाशन, गोरखपुर,अध्याय ६ 'भारतीय वाङ्मय', पृ०१७५-२६४ ।

२- पृ०रा०, सम्पादक, मोहन सिंह, साहित्य संस्थान उदयपुर प्रकाशन, समय ६१, छन्द ३०० --

वेद मग्ग ब्रह्म उच्चयापि मग्ग शप्पे धर धार ।
जोग मग्ग लम्भैन, ब्रम्म नकै भरतार ।

तथा

उपरिवत्, समय ६१, छन्द ३३१
मंडलिय भरद मेवार पहु, मिलि पधान पुच्छिय प्रसन ।
रिखि कहिय रखिय सुव्रत सकल, सुविधि वेद विधिय सुमन ।

३- उपरिवत्, समय ३५, छन्द १ तथा समय ३५, छन्द १८ तथा समय ६१, छन्द ३१५ व ३५० क्रमश:

गुज्जर धर चालुक्य, भीम जिम भीम महाबल ।
कोइ न चपै भीम क्रिसि बर रीति अबंगल ।।

++ ++ ++

नाग कलं मलि मार, सैन सज्जन रण रज्जन ।
दे दुबाह चालुक्क भीम भारत सलग्गन ।।

++ ++ ++

रण राम जिजोधन भर भिरण, बालमीकि व्यासह कहिय ।
अस दुवन हौ हिन्दु तुरक, मुकति माग विधिय धरिय ।।

४- उपरिवत्, समय १ छन्द २२ तथा समय १ छन्द २३ तथा समय १ छन्द २४ तथा समय ५८ छन्द २४१ क्रमश:

कवि समंद कवि चंद कृत, मुगति समप्पन ज्ञान ।
राजनीति लौहिय सुफल, पार उतारण पान ।।
छन्द प्रबन्ध कवित्त जति, साटक गाह दुहत्थ ।
लघु गुरु मंडित खंडि यहि, पिंगुल अमर भरत्थ ।।

++ ++ ++

पंच सहस नख सिख सरस, सकल आदि मुनिदिक्ख ।
घटि बढ़ि कोइ मतह पढ़ौ मोहि दुष्ण न विसिक्ख ।।

++ ++ ++

जौ बरनौ जै चंद कौं, तौ सरसै बर मोहि ।
छंद प्रबंध कवित्त जति कहि समुझावहि तोहि ।।

५- उपरिवत्, समय ५८, छन्द २४२

कहहि पंग बुधिजन कवित, सुनहु चंद वर दाइ ।

दिहि दिक्खौ वरनै सकल, अदिठ न वरनौ जाइ ।।

तथा

समय १,छन्द २५ तथा समय १ छन्द २७ तथा समय५८

छन्द २४६-२४६ ।

६- उपरिवत्, समय १ छन्द २२ तथा २६ ।

७,८ उपरिवत्, समय २७ छन्द ६ तथा समय २८ छन्द ५ ।

६ उपरिवत्, समय १७ छन्द ७ तथा समय २८ छन्द ५ तथा समय २८,छन्द ६ क्रमश:

सामुद्रिक लच्छिन सकल, चौंसठ कला सुजान ।

जानि चतुर-दस अंग मट, रति वसंत परमान ।।

++ ++ ++

संवत इकल्यालीस सुदिन पिथिराज राज भर ।

अति सामंत उभार तक्त छज ध्रम्म दिल्लि धर ।।

दिय थानक नाइ वक, नाम किल्हन गुन गेयं ।

अति संगत सु विय, कला लच्छन अनेयं ।।

ना सास्त्रि त्रीय रति छब तन, वरस चवद चातुर सकल ।

दुव तीस सुलच्छित मति विमल, अति मति अगनित चिधिवल

++ ++ ++

विघा विनय विवेक चामि विमलं वर्णौं कुबेर प्रभा ।

सुविचारौं सुविचक्षणे सु, सुमनं सौजन्य सौंदर्यता ।।

भाग्यं रूप अनूपं रस रसं संजोग विम्भोगय ।

मांगल्यं संपूर सौम्य कलसं, जानंति केलो कला ।।

१०- डॉ० हजारीप्रसाद द्विवेदी, प्राचीन भारत के कलात्मक विनोद, पृ० १८५ प्रकाशक, हिन्दी ग्रन्थ रत्नाकर प्राइवेट लिमिटेड, हीराबाग,बम्बई तदनुसार पृथ्वीराज रासउ, सम्पादक डॉ० माताप्रसाद गुप्त में अनुस्यूत --

५ : ३८ : १२, २ : ५ : ६, ४ : २३ : १९,
५ : ३३ : ४०, ४ : २३ : २१, ४ :१० : १०,
१ : ६ : १, १२ : १६ : १, ४ :२५ : १३,
४ : २५ : १९, ४ : २५ : १५, ४ : २३ : १५,
४ : २४ : २, ४ : २५ : ७, ४ : २५ : १९,
१२ : १६ : १, ४ : २५ : १६, ९ : ५ :१,
४ : २५ : २१, १२ : ६ : १,
४ : २५ : ३१, ४ : २५ : ५, ९ : ५ : ६,
६ : २७ : १, १२ : ७ : ६, ४ : १५ : १,
४ : ४ : २, ५ : ९ : १३, ४ : २३ : ४ आदि ।

११- उपरिवत्, पृ० १८७, तदनुसार ,पृथ्वीराज रासउ सम्पादक डॉ० माताप्रसाद गुप्त में अनुस्यूत --

४ : २४ : २, ४ : २५ : २७, ४ : १४ : १३,
४ : १० : ५, १२ : १२ : १, ४ : १० : ९-१६,
४ : २३ : १, ४ : १० : ८, ३ : ३९ : १, ५ : ५ : २,
१२ : ६ : १, ४ : १० : ५ आदि ।

१२- उपरिवत्, १९१ पृ० ।

१३- उपरिवत्, पृ० १८१

१४- पृ०रा०, सम्पादक मोहन सिंह, उदयपुर प्रकाशन, समय ६,छन्द ११, तथा समय १६, छन्द १ तथा समय १७ छन्द ७, तथा समय १८, छन्द ४८ ।

१५- उपरिवत्, समय ३८, छन्द ११ तथा समय ३८ छन्द १२ तथा समय ६, छन्द १ तथा समय ६१ छन्द १६८ आदि ।

१६- उपरिवत्, समय ४, छन्द १ तथा समय १५ छन्द २६

१७- पृथ्वीराज रासउ, सम्पादक, डॉ० माताप्रसाद गुप्त, साहित्य सदन भांसी, प्रकाशन, २ : ५ : ६ तथा ४ : २३ : १६

१८- उपरिवत्, ४ : २३ : २१ तथा ४ : १० : १० ।

१९- उपरिवत्, १ : ६ : १, तथा १२ : ६ : १

२०- उपरिवत्, ५ : ५ : २ तथा ५ : ६ : १३ तथा ५ : ४० : १ तथा द्रष्टव्य संदर्भ संख्या १०-११ ।

२१- डा० विपिन बिहारी त्रिवेदी, रेवातट समय, हिन्दी विभाग, लखनऊ विश्वविद्यालय प्रकाशन, द्वितीय भाग, पृ० ५२-५७ ।

२२- अलबेरूनी का भारत, अनु० श्री रजनीकान्त शर्मा, प्रकाशक, आदर्श हिन्दी पुस्तकालय, इलाहाबाद ,पृ० २३-३२ ।

२३- डॉ० बी०एन०एस० यादव, सोसायटी एण्ड कल्चर इन नादर्न इण्डिया(इन दि ट्वेल्थ सेन्चुरी), सेण्ट्रल बुक डिपो,इलाहाबाद पब्लिकेशन,पृ०३६६ एण्ड ४१८ ।

२४- डॉ० दशरथ ओझा तथा डॉ० दशरथ शर्मा, रास और रासान्वयी काव्य, प्रकाशक, ना०प्र० सभा,वाराणसी,पृ०२८६-३२८ ।

२५- पृ०रा०, सम्पादक मोहन सिंह, उदयपुर प्रकाशन, समय १,छन्द२ ।

२६- उपरिवत्, समय २० छन्द २५ ।

२७- उपरिवत्, समय ६१ छन्द ३०० ।

२८- उपरिवत्, समय ६१, छन्द ३०१ ।

२९- उपरिवत्, समय ६१, छन्द २२६ ।

३०- उपरिवत्, समय ६१,छन्द ३०० ।

३१- उपरिवत्, समय २४,छन्द ८ तथा समय २५ छन्द ६, तथा समय २६, छन्द ३० तथा समय २२, छन्द ३५, तथा समय २३, छन्द २६४ तथा समय ३५, छन्द १८ तथा समय ४६, छन्द ४६ तथा समय ५३,छन्द३८ ।

३२- उपरिवत्, समय १, छन्द २६ ।

३३- उपरिवत्, समय २,छन्द १०२ ।

३४- उपरिवत्,समय २, छन्द २८ तथा समय ६०,छन्द ३७ ।

३५- उपरिवत्, समय ४५, छन्द १ ।

३६- उपरिवत्, समय २, छन्द १०२ तथा समय ६१ छन्द ३१५ क्रमशः

थिर बहुआना भार, राम लीला कछु गाईय ।
सनक संनंद समस्त, कही सुख देवन जाईय ।
बाल्मीक रिखि राज, किसन दीपायन धारो ।
कोटि जमै संभवै, तोय हरि नाम अपारो ।।
मनुच्छ मंद गति मंद तन, पुब्बमार बहुआन थिर ।
जं कह्यौ अलपमति सुमति करि, सुकरि चिंत ब्यंतौ सुथिर ।।

++ ++ ++

रण राम त्रिजोधन भर थिरण,बाल्मीक ब्यासह कहिय
अस हुव न हौं हिन्दु तुरक, मुकति मग्ग विधिय धरिय

३७- उपरिवत्, समय १ छन्द ५८

के दसरथ गृह राम धाम वसुदेव कृष्ण वर ।
तथा समय २ छन्द ११ ।
तरुनि नाम तारिका, ग्यान हरि परसो राम ।
बारि सतो थानुरत्त, करय सब सुम्मह कामं ।।
ये कस्यै वर मंगि, राम ब बन भरत सुराजं ।
तब दसरथ दुख किन्न, भयौ धुर काज अकाजं ।।
दसरथ्थ पाइ पद से ब उमय, पंचवटी बंधी कुटिया ।
अकि बंद बंध पावंध करि. लंक अंक जिहि विधि त्रुटिय ।

३८- पृथ्वीराज रासउ,सम्पादक, डॉ० माताप्रसाद गुप्त, साहित्य सदन, झांसी प्रकाशन, २ : ५ : ६ ।

३९- उपरिवत्, ५ : ३३ : ४० ।

४०- उपरिवत्, ४ : २३ : २१ तथा ४ : १० : १० ।

४१- उपरिवत्, १ : ६ : १

४२- उपरिवत्, १२ : १६ : १ ।

४३- उपरिवत्, ४ : २५ : १३ । ४ : २५ : १९ ।

४४- उपरिवत्, ४ : २५ : १५ तथा ४ : २३ : १५ ।

४५- उपरिवत्, ४ : २४ : २ ।

४६- उपरिवत्, ४ : २५ : ७ ।

४७- उपरिवत्, १२ : १३ : १३ ।

४८- उपरिवत्, अध्याय १२

४९- उपरिवत्, ४ : २५ : १९ ।

५०- उपरिवत्, ४ : २५ : १६ ।

५१- उपरिवत्, ४ : २५ : २१ ।

५२- उपरिवत्, ४ : २५ : ३१ [illegible] १२:६:१ ।

५३- उपरिवत् ४ : २५ : ३१।

५४- उपरिवत् ४ : २५ : ५ ।

५५- उपरिवत्, ६ : २७ : १ ।

५६- उपरिवत्, ४ : १५ : १ ।

५७- उपरिवत्, ४ : ४: २ ।

५८- उपरिवत्, ५ : ६ : १३ ।

५९- उपरिवत्, चन्द कवि का, अध्याय १२ के अन्तर्गत योगा-परिवेश ।

६०- उपरिवत्, ४ : २३ : ४ ।

६१- उपरिवत्, २ : ३ : १० तथा १२ : १३ : १ तथा १२ : १३ : ३, तथा ५ : ३ : १ आदि ।

६२- उपरिवत्, ४ : २४ : २ तथा ४ : २५ : १७ तथा ४ : २३ : १४ ।

६३- उपरिवत्, ५ : ४० ।

६४- उपरिवत् ७ : ८ : ११ अध्याय ।

६५- उपरिवत्, ४ : १० : ५ ।

६६- उपरिवत् १२ : १२ : १ ।

६७- उपरिवत्, अध्याय ७,८,११ ।

६८- उपरिवत्, ४ : १० ।६-१६ ।

६९- उपरिवत्, ४ : २३ : १७ ।

७०- उपरिवत्, ४ : १० : ८ तथा ३ : ३९ : १ ।

७१- उपरिवत्, ५ : २१ तथा ५ : ४८ ।

७२- उपरिवत्, १२ : ६ : १ ।

७३- उपरिवत्, १० : १५ : ३, १० : २८ : १, १५ : ४३ : १,
४ : १२ : ४, ५ : ४० : १, ५ : ३८ : २५,
६ : २५ : १, ६ : १५ : २, ५ : ३९ : १,
५ : ३६ : १, ५ : २३ : १, ९ : ६ : ३,
९ : ६ : १, ९ : ६ : ४,७ ९ : ७ : १ आदि ।

७४- उपरिवत्, २ : १ : १०, ५ : ४३ : १, १ : ६ : ४, १ : ५ : १,
२ : १० : ५, १ : ४ : १०, १ : ४ : ५, ८ : ३५ : ५,
३ : १९ : २, १ : १ : ४ ।

७५- उपरिवत्, १ : ४ : ७, १ : ४ : ९, १ : ४ : १३, १ : ४ : १४,
१ : ५ : २ ।

७६- उपरिवत्, ५ : ५ : १,२,१२ : ८ : ३, १२ : ४९ : ५, १ : ५ : १ ।

७७- उपरिवत्, ६ : १२ : ४६, तथा ६ : १११ : ११२ ।

७८- डॉ० हजारीप्रसाद द्विवेदी, प्राचीन भारत के कलात्मक विनोद, प्र० हिन्दी ग्रन्थ रत्नाकर प्रा०लि०,बम्बई, अनुक्रम पृ०१-४ ।

७९- पृ०रा०, सम्पादक, मोहन सिंह, उदयपुर प्रकाशन समय १७ छन्द ७ ।

८०- उपरिवत्, समय २८, छन्द ५ ।

८१- उपरिवत्, समय २८, छन्द ६ ।

८२- ऋग्वेद १।१०।३, २।२०।८, ३।१२।६, ४।३२।१० ।

८३- उपरिवत् ५।६।७ ।

८४- उपरिवत्, ६।२।८, १।१२१।१, १०।१४६।३ ।

८५- उपरिवत् ७।१८।२२ ।

८६- उपरिवत् ८।१०।१ ।

८७- उपरिवत्, ८।१०।१ ।

८८- पृ०रा०, सम्पादक मोहन सिंह, उदयपुर प्रकाशन,समय ५८,छन्द १६६ ।

८९- उपरिवत्, समय ३१, छन्द ४५, तथा समय २९ छन्द १ तथा समय १७, छन्द १५ ।

९०- उपरिवत्, समय १४, छन्द २४ तथा समय १७ छन्द ७ तथा समय १८ छन्द ४८ तथा समय १९ छन्द १५ ।

९१- उपरिवत्, समय ६, छन्द ४४ ।

९२- उपरिवत्, समय १४, छन्द ४९ ।

९३- उपरिवत्, समय ३८, छन्द १० ।

९४- उपरिवत्, समय ९, छन्द १५ तथा समय २८,छन्द १० तथा समय६१ छन्द ३५ ।

९५- उपरिवत्, समय १९, छन्द १७ तथा समय ५८ छन्द २९९ ।

९६- उपरिवत्, समय ९, छन्द १५ तथा समय २८ छन्द १०,तथा समय ६१ छन्द ३५ ।

९७- उपरिवत्, समय २८, छन्द ६ ।

९८- उपरिवत्, समय ५८, छन्द २९८ तथा समय ३८ छन्द १५ ।

९९- उपरिवत्, समय ३८ छन्द १५ ।

१००- उपरिवत्, समय ५८, छन्द ४२४ ।

१०१- उपरिवत्, समय ६१, छन्द ३५२ ।

१०२- उपरिवत्, समय ६, छन्द ७८, ८० तथा समय १९,छन्द २४,२५,२६,२९ तथा समय २८ छन्द ६ तथा समय २९, छन्द १ ।

१०३- उपरिवत्, समय १८, छन्द १८, तथा समय ५८ छन्द २९२ ।

१०४- उपरिवत्, समय १४ छन्द १८ तथा समय १८ छन्द २६ तथा समय १९, छन्द १७ तथा समय ४१, छन्द १७ ।

१०५- उपरिवत्, समय ५०, छन्द ३ ।

१०६- उपरिवत्, समय १९ छन्द २४व२५,३० ।

१०७- यजुर्वेद , ३०।६-७,११,१७, २० ।

१०८- प्रो० शिवदत्त ज्ञानी, भारतीय संस्कृति, पृ० २५१-२५२,राजकमल-प्रकाशन, दिल्ली १९४४ई० ।

१०९- पृथ्वीराज रासउ, सम्पादक, डॉ० माताप्रसाद गुप्त, २ ? ३: ५१-५२ ।

११०- पृथ्वीराज रासो, सम्पादक मोहन सिंह, समय ३८, छन्द ७ तथा समय ३८, छन्द ३१ क्रमश:

नीलकंठ सिव वास करि, मति भवानी भेटि ।
फुनि नरिंद त्रिभंग भिति, बंद दंद मन मेटि ।।

++ ++ ++

कनक तुला हिय गर्भ, पुमित ब्रह मंड दान करि ।
कल्पना तरु गउ सहस, काम धेनहि कंचन धरि ।।
कनक अस्व रथ कनक, दुनित हस्ती हल कंचन ।
भेर सहित धर कनक, विस्व चक्र दे मुल संचन ।।
हीरन्य लता सर थिरि सहित, रत्नधेन महाभूत घट ।
इय महादान सोमेस नृप मुकति पुरि दिय जमुन तट ।।

१११- उपरिवत्, समय ३८ छन्द ११ तथा समय ३८ छन्द १२ क्रमश:

फिरि परदक्ष दरसन करिय, हुअ पर तिमिक्ष प्रमान ।
तब अस्तुति सु प्रनाम करि, प्रभा विराजिय मान ।।

++ ++ ++

करि अस्तुति सस्तुति सुबद होम हवन हरि नाम ।
सोवन तुला सुराज बर, करि सुमद्द सुचि काम ।।

११२- उपरिवत्, समय ३८, छन्द ७ तथा समय ६, छन्द १ क्रमश:

नीलकंठ शिव दास करि मात भवानी भेंटि ।
फुनि नरिंद चिंतं मिलि, चंद दंद तन मेटि ।।

++ ++ ++

शिव शिव उपास्य राजं, विदं देव न कामयं ।
कवि चंद वेद बाणी, प्रगट देव विस्मित: ।।

११३- उपरिवत, समय ६१, छन्द १६८ तथा समय ६१, छन्द १६६ आदि क्रमश:

तलनल जानी सबै, हम माया पुग्मामि ।
बाल जालंधर देवरै, मिलि जालम पुच्छामि ।।

++ ++ ++

नालि केल फल दल सुफल कष्ट कपुर समीर ।
सबै सुनर पूजन चले, दै सब स्वस्थ बहोर ।।

११४- उपरिवत्, समय ४, छन्द १ ।

११५- उपरिवत्, समय १, छन्द ७० ।

११६- उपरिवत्, समय ४, छन्द २ ।

११७- उपरिवत्, समय १५, छन्द २६ ।

११८- उपरिवत, समय १४ छन्द ४५,४६,४८ तथा समय १५ छन्द ११ ।

११९- उपरिवत,समय १७,छन्द २१ ।

१२०- यजुर्वेद ३०।६-७,११।१७।२० ।

१२१- शिवदत्त ज्ञानी, भारतीय संस्कृति,पृ०२५७, राजकमल प्रकाशन, दिल्ली, १९४५ई० ।

१२२- पृ०रा०, सम्पादक, मोहन सिंह, उदयपुर प्रकाशन, समय ७ छन्द २ ।

१२३- उपरिवत्, समय ५८, छन्द २०६ ।

१२४- उपरिवत्, समय १४, छन्द२५ ।

१२५- उपरिवत्, समय १४, छन्द ५१ ।

१२६- उपरिवत्, समय ३१, छन्द ३५ ।

१२७- उपरिवत्, समय ३१, छन्द ४४ ।

१२८- उपरिवत्, समय २८, छन्द ८,१० तथा समय ४१, छन्द ८२ ।

१२९- उपरिवत्, समय २६, छन्द ६२ ।

१३०- उपरिवत्, समय १७, छन्द ३ ।

१३१- उपरिवत्, समय १७, छन्द ३ ।

१३२- उपरिवत्, समय २९, छन्द १२ ।

१३३- उपरिवत्, समय ५, छन्द ५५ ।

१३४- उपरिवत्, समय ३४, छन्द ६६ ।

१३५- उपरिवत्, समय ७, छन्द २४ तथा समय ३८ छन्द ३४ ।

१३६- उपरिवत्, समय ६०, छन्द ३७ ।

१३७- उपरिवत्, समय ५८, छन्द २११ ।

१३८- उपरिवत्, समय ४०, छन्द ६ तथा समय ५८, छन्द ५४३ ।

१३९- उपरिवत, समय ७, छन्द १९ ।

१४०- उपरिवत, समय ८, छन्द ८ ।

१४१- उपरिवत्, समय ३१, छन्द ४४ ।

१४२- उपरिवत्, समय ५, छन्द ५६ ।

१४३- उपरिवत्, समय५, छन्द ५६ तथा समय ७ छन्द १६,३६ तथा समय २६, छन्द १२ ।

१४४- उपरिवत्, समय ६, छन्द ३, तथा समय ३१, छन्द ४४ ।

१४५- उपरिवत्, समय ६१, छन्द ३१० ।

१४६- उपरिवत्, समय २५, छन्द ४१ ।

१४७- उपरिवत्, समय ३१, छन्द ४४ ।

१४८- उपरिवत्, समय ३१, छन्द ४४ ।

१४९- उपरिवत्, समय ७, छन्द १६ ।

१५०- उपरिवत्, समय ५, छन्द ५६ तथा समय ६ छन्द ४७ तथा समय ७ छन्द ८ तथा समय १०,छन्द २२,२६ तथा समय ११, छन्द ३८, ३९,४१ तथा समय १६,छन्द २,३ तथा समय १८, छन्द ३४, तथा समय ३१, छन्द ४४ ।

१५१- उपरिवत्, समय ३१, छन्द ४४ ।

१५२- उपरिवत्, समय १८, छन्द ३४ ।

१५३- उपरिवत्, समय २६, छन्द १२ तथा समय ३१, छन्द ४४ ।

१५४- उपरिवत्, समय ७, छन्द ३९ ।

१५५- उपरिवत्, समय ७, छन्द ३६ तथा समय २६ छन्द१२ तथा समय ३१, छन्द ४४ तथा समय ३८, छन्द ३ ।

१५६- ऋग्वेद ८ १।६२।४;६।२६।३

१५७- यजुर्वेद ३०।२१

१५८- डॉ० सुमन राजे, हिन्दी रासो काव्य परम्परा,ग्रन्थम प्रकाशन्, पृ०९ तथा डॉ० माताप्रसाद गुप्त, रासो साहित्य विमर्श, साहित्य भवन इलाहाबाद प्रकाशन, पृ०७ ।

१५९- पृ०रा०, सम्पादक, मोहनसिंह, उदयपुर प्रकाशन, समय ३३, छन्द १।

१६०- उपरिवत्, समय २८, छन्द ८ ।

१६१- उपरिवत्, समय ५८, छन्द ३१८ ।

१६२- उपरिवत्, समय ५८, छन्द ३१९ ।

१६३- उपरिवत्, समय ५८, छन्द ३२० ।

१६४- उपरिवत्, समय ५८, छन्द ३२१ ।

१६५- पृथ्वीराज रासउ, सम्पादक, डॉ० माताप्रसाद गुप्त, साहित्य सदन,फांसी प्रकाशन ७ : ६ : ४३ ।

१६६- उपरिवत्, ७:६:४४,४५ ।

१६७- उपरिवत्, ५ :३८ : ३ ।

१६८- उपरिवत्, ५ : ५ : ४२ ।

१६९- उपरिवत्, ५ : ३३ : २ ।

१७०- उपरिवत्, ५ : ३३ : १ ।

१७१- उपरिवत्, ५ : ३८ : १७ ।

१७२- उपरिवत्, ७ : ६ : ४७ ।

१७३- पृ०रा०, सम्पादक, मोहन सिंह, उदयपुर प्रकाशन, समय १,छन्द ७४ तथा समय २८, छन्द १४ ।

१७४- उपरिवत्, समय २८, छन्द ८ तथा समय ५८ छन्द १५२ ।

१७५- ऋग्वेद, ८.५८.२ तथा यजुर्वेद ३०.१० तथा छान्दोग्य उपनिषद् ७.१.२, ७.१.४ आदि ।

१७६- पद्मपुराण २४.६३ तथा शतपथ ब्राह्मण १०.५.४.१२; १२.३.२.३ ।

१७७- ऋग्वेद ४.५७ तथा अथर्ववेद ८.७.४, १२ तथा बृहदारण्यक उपनिषद् ३.६.२८ तथा ऋग्वेद में १०.२८.८--

देवास आयन् परशूरबिभ्रन वना वृश्चन्तो अभि विड्भिरायन् ।
निसुद्रवं दधतो वक्षणासु यत्रा कृपोट मनु तद्दहन्ति ।।

१७८- तैत्तिरीय संहिता, ३.४.७.१.

'सूर्यरश्मिश्चन्द्रमा गन्धर्वः'

तथा ऋग्वेद ८.५८.२ ।

१७९- ऋग्वेद १.१६४.४८

द्वादशप्रधयश्चक्रमेकं त्रीणि नभ्यानि क उ तच्चिकेत तस्मिन्त्साकं

त्रिशता न शंकवो र्पिताः षष्टिर्न चला चलास :।

१८०- डॉ० रामजी उपाध्याय, प्राचीन भारतीय साहित्य की सांस्कृतिक भूमिका, पृ०११०१, लोक भारतीय प्रकाशन, इलाहाबाद, प्र०सं० १९६६ई० ।

१८१- उपरिवत्, पृ० ११०१,११०२ ।
१८२- उपरिवत् पृ०११०२, ११०३ ।
१८३- उपरिवत्, १.११६,१६ , १.२४.६, २.३३.४, ७ तथा १.२४.६ तथा यजुर्वेद ३६.२४ तथा अथर्ववेद ६.८.६-६, १७, २१ ।

१८४- डॉ० रामजी उपाध्याय, भारतीय साहित्य की सांस्कृतिक भूमिका, पृ० १०६८ ।

१८५- उपरिवत्, पृ० १०९९,११००- ११०१।

१८६- उपरिवत्, पृ० ११०१-११०२ ।

१८७- उपरिवत्, पृ० १०८२- १०८६ तथा डॉ० ललन जी गोपाल, भारतीय संस्कृति, पृ०३११,वि०विद्यालय प्रकाशन,गोरखपुर ।

१८८- उपरिवत्, पृ०११०६-११०७-११०८ तथा डॉ० विपिन विहारी त्रिवेदी चन्दबरदायी और उनका काव्य ,पृ०४२,प्रकाशक हिन्दुस्तानी एकेडेमी इलाहाबाद तथा पृ०रा०, सम्पादक डॉ० श्यामसुन्दरदास, ना०प्र० सभा, वाराणसी, समय १, छन्द ८३ व समय ६१, छन्द ५५६, व समय ६१, छन्द ७४४ व समय ६७, छन्द १७६ क्रमशः

उक्ति धर्म विशालस्य, राजनीति नवं रसं ।

षट भाषा पुराणं च, कुराणं कथितं मया ।।

भाषा परिका भाष छह, दस रस दुम्मर भाग ।
कितकवित जु छंद लों, भाग समय पिंगल नाग ॥

++ ++ ++

छह कवि दिल्लिय माथो, मैं सुन्यौ वोर वरदायो ।
तिहि नव रस भाषाह्ह भनियं, पट्ठाइय अस्सनं तथ्थं ।

++ ++ ++

षट भाष रस्स नव नट्ट नाद ।
जानो विवेक विज्वार वाद .... ॥

१८६- डॉ विपिन विहारी त्रिवेदी, रेवातट, समय द्वितीय भाग, पृ० ५२-५३-५४-५५-५६ तथा ५७ ।

१९०- पृ०रा०, सम्पादक, डॉ० श्यामसुन्दरदास, रेवतातट समय, छन्द ५५ ।

१९१- पृथ्वीराज रासउ, सम्पादक, डॉ० मातापुसाद गुप्त, साहित्य सदन झांसी प्रकाशन, ११ :१३ :२४ तथा ३ : ३१ : ४ ।

१९२- उपरिवत्, ७ :१२ : १३ ।

१९३- उपरिवत्, ७ : ६ : २ ।

१९४- उपरिवत्, ३ : २५ : २ ।

१९५- उपरिवत्, २ : ३ : १६ ।

१९६- उपरिवत्, ४ : २२ : २, ५ : १० : २, १२ : १२ : २ ३ :२० : ३६ : ५ : ८, ४ : १८ : १

१९७- उपरिवत् २ : ४: २, २: १२ : १८, ३ :१७ :८, १० : ११ :४२।

१९८- उपरिवत्, १ : ४ : ४ ।

१९९- उपरिवत्, ७ : ६ : २ ।

२००- उपरिवत्, ८ : १५ : १, ४ : ४ : २ , ८ : १४ :३ ।

२०१- उपरिवत्, ३ : २७ : ६।

२०२- उपरिवत्, २ : ५ : ४९, ६ : ५ : १८ ।

२०३- उपरिवत् ६ : १९ : १, ६-५ : ४३ : १० : २ ।

२०४- उपरिवत्, ७ : १७ : १८ ।

२०५- डॉ० नैमिचन्द्र शास्त्री, भारतीय ज्योतिष, भारतीय ज्ञानपीठ प्रकाशन, पृ० १३३ ।

२०६- पृ०रा० सम्पादक मोहन सिंह उदयपुर प्रकाशन, समय ५, छन्द ८ ।

२०७- उपरिवत्, समय ५, छन्द ५६ तथा समय ५, छन्द ४ तथा समय ३२, छन्द २३ ।

२०८- उपरिवत्, समय १७, छन्द १२ तथा समय १७ छन्द ६ तथा समय ३८ छन्द ७ तथा समय ५८, छन्द ६३१ तथा समय १७, छन्द १६ तथा समय ५८छन्द २६८ तथा समय ५, छन्द ४६ तथा समय १७ छन्द १२, तथा समय ५८ छन्द ३६८ तथा समय ५ छन्द ६७ तथा समय ५, छन्द ४५ तथा समय ५ छन्द ४६ तथा समय ५८ व छन्द ६९-७० तथा समय ६१ छन्द ३६० तथा समय ६१, छन्द ३६१, तथा समय ५ छन्द ५५, तथा समय ५ छन्द ४२ तथा समय ५८, छन्द ६५ आदि ।

२०९- पृथ्वीराज रासउ, सम्पादक डॉ० माताप्रसाद गुप्त २ : ५ : २५, २ : ५ : ४१, ५ : ७ : १ आदि ।

२१०- उपरिवत्, ४ : ११ : १०, ४ : २० : २८ ।

२११- उपरिवत्, २ : ७ : ६, २ : ५ : २७, ३ : १३ : २ ।

२१२- पृ०रा०, सम्पादक मोहन सिंह, उदयपुर प्रकाशन समय १२, छन्द ३ तथा समय ३६, छन्द ८१-८२ ।

२१३-

२१३- पृथ्वीराज रासय, सम्पादक, डॉ० माताप्रसाद गुप्त, साहित्य सदन झांसी प्रकाशन ४ : २४ : २, १२ ? ४३ : १, ४ : २० : २३, ५ : १३ : १८, ४ : ६ : १, २ : ७ : ८, ४ : २४ : १, १२ : ४३ : १ आदि ।

२१४- उपरिवत्, ६ : ५ : १, १ : १ : १, ४ : २३ : २५ आदि ।

-0-

दशम अध्याय

-0-

आदिकालीन हिन्दी रासो काव्यों में निदर्शित सांस्कृतिक द्वन्द्व और समन्वय

दशम अध्याय

-0-

आदिकालीन हिन्दी रासो काव्यों में निदर्शित सांस्कृतिक द्वन्द्व और समन्वय

(विषय- विवरणिका)

साहित्य की विकास प्रक्रिया ; सांस्कृतिक परिपार्श्व में साहित्य की व्याख्या ; आलोच्यकालीन रासो साहित्य में सांस्कृतिक द्वन्द्व और समन्वय ;भारतीय एवं इस्लामिक संस्कृतियों का विविध क्षेत्रों में आदान-प्रदान ; भारत में इस्लाम का भारतीयकरण ; तत्कालीन सामन्ती संस्कृति और सुल्तानी संस्कृति की समरूपता ; अल्लाह और राम का एकत्व ; इतिवृत्तात्मक, पुरातात्त्विक, अभिलेखीय एवं साहित्यिक साक्ष्यों का निष्कर्ष ;सांस्कृतिक सामंजस्य का स्वरघोष ; सन्दर्भ-सरणि ।

-0-

दशम अध्याय
-0-

आदिकालीन हिन्दी रासो काव्यों में सांस्कृतिक द्वन्द्व और समन्वय

साहित्य की विकास-प्रक्रिया-- व्यक्ति-समाज, परम्परा-वातावरण और द्विधा संस्कृतिजन्य द्वन्द्व से गतिमान होती है तथा प्रत्येक द्वन्द्व की चरम परिणति अन्ततः सन्तुलन एवं समन्वय की सिद्धि बन जाती है[1]। सांस्कृतिक परिपार्श्व में साहित्य की व्याख्या अथवा साहित्यिक परिप्रेक्ष्य में संस्कृति-विन्यास के विविध प्रयास, तेन, ब्रन्तेअर, बौरेक्त, हैनेकिन, हडसन, मार्क्स आदि विद्वानों द्वारा किए गए हैं[2]। आलोच्यकालीन रासो साहित्य में सांस्कृतिक द्वन्द्व और उसका समन्वयात्मक स्वर स्पष्टतः मुखरित हुआ है। तत्कालीन भारत के सामाजिक जीवन, धार्मिक परिवेश, राजनीतिक पर्यावरण, अर्थतंत्र, सैन्य-व्यवस्था, भाषा, साहित्य, विज्ञान और कलात्मक निदर्शनों में पारस्परिक टकराव और सामंजस्य का प्रतिफलन हुआ है[3]।

इलियट[4], कनिंघम[5], बरनी[6], इब्नबतूता[7], टाडटस[8], के०एम०अशरफ[9], डॉ० ताराचन्द[10], डॉ० आशीर्वादीलाल श्रीवास्तव[11], डॉ० बी०पी० मजूमदार[12], प्रो० मोहम्मद हबीब[13], डॉ० आर०सी० मजूमदार[14], युसुफ हुसैन[15] प्रभृति विद्वानों द्वारा तत्कालीन भारत में हिन्दू-मुस्लिम मिलन के परिणामों का इतिवृत्तात्मक विवेचन करते हुए बहुमुखी विनिमय, संघर्ष एवं समन्वय पर प्रकाश डाला गया है।

सन्देशरासक ,भाषा-काव्यान्तर्गत, एक मुसलमान कवि का उत्कृष्ट रचना[१६] है तथा अन्य रासो काव्यों में लगभग पांच सौ अरबी,फारसी तथा तुर्की शब्द उपलब्ध होते हैं[१७]। भाषा और साहित्य के क्षेत्र में यह प्रवृत्ति पारस्परिक सामंजस्य का द्योतक है । हिन्दू-मुस्लिम संस्कृति के प्रतिनिधि प्रथम राष्ट्रीय कवि खुसरो अपने हिन्दवी- ज्ञान के लिए गर्व का अनुभव करते थे[१८]। विवेच्य रासो-काव्य में मुस्लिम-संस्कृति के विवरण अत्यल्प प्राप्त होते हैं, किन्तु जहां कहीं भी इस्लामिक उप उपादान प्रस्तुत किए गए हैं,उनसे यही ध्वनित होता है कि कवियों का दृष्टिकोण औदार्यपूर्ण था, जो कि तत्कालीन सामाजिक वृत्ति का प्रतिबिम्बन है । हिन्दू राज्यों में भी मुसलमान शरणागत[१९] अथवा चाकर[२०] के रूप में विद्यमान थे । इसी प्रकार दफ़न[२१], नमाज़[२२], नबी[२३], नजूमी-फ़कीर[२४] आदि के प्रति रचनाकार आस्थावान थे --

पट्टयो हुस्सेन सु पात्र सुनि, चिंतिय चित्त इमांन ।
सज्यो ओर हुस्सेन संघ, कट्टयो प्रदेस अपान ।।

++ ++ ++ ++

फरि निवाज सुरतान कहि, कितिक बुद्धि दिल्लीस।

पृथ्वीराज रासो के अन्तर्गत मुसलमानों को भी जालन्धरी देवी की पूजा-अर्चना करते हुए चित्रित किया गया है--

तंह हिन्दुवर मुसलमान। लख्ख विप्र सुआवहिं ।
जवनिक कुल क्री । कुलाल षोडस मिलि धावहिं[२५]।

इसी प्रकार मुहम्मद गोरी की माता का अल्लाह और राम के एक स्वरूप होने का कथन उल्लेख्य है-- हिन्दू-मुसलमानों का अन्तिम लक्ष्य मोक्ष[२६] प्राप्त करना बताती हुई वह धार्मिक सद्भाव के उद्गार व्यक्त करती है--

अल्लह रू राम इक्के निजरि ।
विषय बंध बंधे चलहि ।।

++ ++ ++

मुगति पंथ नह भिन्न । एक पंथ अधिकारिय ।।

सामाजिक जीवन में परम्परा-ग्राह्य 'सलाम' करने की प्रथा हिन्दू और मुसलमान दोनों में ही प्रचलित हो गई थी । मुसलमान, मुसलमानों को,[27] हिन्दू मुसलमानों को[28] तथा मुसलमान हिन्दुओं को[29] शिष्टाचार - स्वरूप आपस में सलाम करते थे । हिन्दुओं की भांति मुसलमानों में भी पूज्य व्यक्तियों का चरण-संस्पर्श करने की प्रथा प्रचलित थी । मुहम्मद गोरी और उसके उमराव शेख चमन का चरण स्पर्श करते हुए चन्दने चित्रित किए हैं ।[29(क)]

राजनीतिक दृष्टि से राजा और सुलतान दोनों की ही राज्य-शक्ति एक जैसी थी । दोनों में ईश्वर या खुदा का अंश विद्यमान समझा जाता था ।[30] हिन्दू राजाओं के प्रधान अथवा प्रधानमंत्री और बादशाहों के वजीर का कर्तव्य और अधिकार समकक्ष था ।[31] हिन्दू एवं मुस्लिम राजनीति में राजदूत अवध्य समझा जाता था । पृथ्वीराज रासो में मुहम्मदगोरी के वजीर ततारखां द्वारा बादशाह को यह परामर्श दिया जाता है कि राजदूत का वध न किया जाय ।[32] हिन्दू तथा मुसलमान दोनों में ही स्वामिभक्ति चरमकोटि की थी । मुहम्मद गोरी का चचेरा भाई मीर हुसेन पृथ्वीराज चौहान की ओर से युद्ध क्षेत्र में मुहम्मद गोरी से युद्ध करता हुआ मारा जाता है ।[33] युद्धभूमि में अपने स्वामी के लिए प्राणोत्सर्ग करना हिन्दू और मुसलमान दोनों ही श्रेयस्कर समझते थे ।[34]

समरा रास के अनुसार, अणहिलपुर का सुलतान अलपखां हिन्दुओं को विशेष आदर की दृष्टि से देखता था ।[35] जयचन्द

के द्वारा जैन धर्म के सप्तक्षेत्र-- श्रावक, श्राविका, साधु, साध्वी, ज्ञान, जिनमन्दिर और जिन प्रतिमा का सेवन किया जाता था[36]।

अस्तु, आदिकालीन हिन्दी रासो काव्य, म्लेच्छ और काफिर के द्वन्द्वात्मक उन्मेष के उपरान्त 'अल्लाह' और 'राम' के एक रूप में सन्तुलन-सन्धि का अभिनिवेश करते हैं[37], जिसका पूर्ण प्रतिफलन हिन्दी साहित्य के सन्तों, सूफियों की वाणी तथा अनेक मतों -- सम्प्रदायों की काव्यधाराओं में हुआ। तत्कालीन संस्कृति का इतिवृत्तात्मक विश्लेषण उक्त कथ्य को पुष्टि करता है[38]।

डॉ० भगवतशरण उपाध्याय के अनुसार भारतीय संस्कृति, वर्ण, विश्वास, धर्म, भाषा, साहित्य, विज्ञान, कला आदि पर असाधारण, व्यापक और गहरा प्रभाव इस्लाम ने डाला। अरब, तुर्क, पठान, मुगल आदि जातियां इस्लाम के झण्डे के नीचे इस देश में प्रविष्ट हुई और क्रूरता, प्रेम, प्रचार सभी प्रकार से अपने विचारों, विश्वासों आदि का प्रसार कर उन्होंने इस देश में दो प्रबल और विभिन्न संस्कृतियों को एक दूसरे के आमने-सामने खड़ा कर दिया[39]। ग्रीक, शक और हूणों की तरह यह अरब, तुर्क और अफगान भारतीयता में पूर्णतः विलीन न हो सके[40]। यद्यपि आठवीं शती से ही जमोरिन आदि हिन्दू राजाओं द्वारा इन्हें पूर्ववत् विवाह, व्यापार, व्यवहार आदि क्षेत्रों में सुविधाएं प्रदान की जाती रहीं[41]। तथापि राम-रहीम, कृष्ण-करीम और ईश्वर-अल्लाह-- एकोऽहंबहुस्याम्-- के रूप में समन्वय की अभिव्यक्ति करने लगे। 'फना' और बौद्धों के निर्वाण में एकरूपता का निदर्शन निकोलसन ने किया है[42]। इश्तियाक हुसेन कुरेशी के अनुसार सूफियों और वेदान्तियों में केवल शब्दों का ही अन्तर है[43]। उपनिषदों के सारतत्व और इस्लाम के

सारतत्व को एक मानते हुए कुरान को उपनिषदों में निहित बताया गया है[४४]। भारतवर्ष में आकर इस्लाम का भी भारतीयकरण हुआ। इस्लाम ने स्थानीय रस्म-रिवाजों, मान्यताओं, उत्सवों, अन्धविश्वासों और यहां तक कि दार्शनिक विचारों तक को आत्मसात् किया[४५]। डॉ० अशरफ के अनुसार भारतीय इस्लाम धीरे-धीरे हिन्दू धर्म के व्यापक लक्षणों को आत्मसात् करने लगा[४६]। भारत में आने पर अरबों, तुर्कों और अफगानों के लिए -- विभिन्न राजनीतिक, सामाजिक और धार्मिक मान्यताओं तथा क्रियाकलापों के बावजूद -- हिन्दू धर्म और इस्लाम धर्म के सह-अस्तित्व को स्वीकार करने के अतिरिक्त कोई अन्य अवलम्ब न था[४७]। तत्कालीन भारत का सामन्ती संस्कृति और सुल्तानी संस्कृति का परिवेश एक जैसा ही था। तदनुकूल राजकीय अनिवार्यता के लिए इस्लाम में भी राजनीतिक दृष्टि-परिवर्तन अपरिहार्य था। सम्राटों और सुल्तानों का एकतंत्रवाद स्वेच्छाचारी - निरंकुश और ऐश्वर्य - विलास का परिपार्श्व एक धरातल पर था। तात्पर्यतः इस्लाम की धार्मिक एवं दार्शनिक चिन्तन-धारा में परिवर्तन के साथ ही राजनयिक आधायिका भी नव्य संस्कारों का समायोजन करता है[४८] --

इसै कुरान पुरै सुलान, महमंद दीन ईमान जान।
आषंड जगो कंटक विहार, आदत्ल रीति ब जालम निहार।
फ कार फरीद रिजकानदार, बगलीस पंनाम कामदार।
औलिया पीर पैगंमरार, इस बीस च्यारि, क्रामति कार।
तबल तबल धालि तबलेश्वर, अंग उपांग भीग मौजेश्वर
कालि क्रांत कल्ह कोलेश्वर जैयौ ईस सुरतान साहवेश्वर।

भारतीय मुसलमान भी हिन्दू जातियों-उपजातियों की भांति 'शरीफ़ जातों' और 'अजलाफ़ जातों' में ऊंच-नीच के भेदभाव से सम्पृक्त हो गए । इनकी अनेक जातियों का उल्लेख पृथ्वीराज रासो में मिलता है[४६] --

षां षुर सान ततार बांय तजार षंधारी ।
हबसी ब रौमी षिलचि, इलचि षुरेस बुषारी ।
सैद सैलानी सेष, बीर भट्टी मैदाना ।
बांगश बिमनोर, पीरजादा लोहानी ।
अन्नेक जात जानैति कुल बिरद नेज अधि ग्रह करद ।
तुरकाण बीच बल्लोच बर, चिंत पुर हासी मरद ।

वस्तुत: ऐतिहासिक, पुरातात्त्विक, अभिलेखीय एवं साहित्यिक साक्ष्यों का निष्कर्ष-निकष, आलोच्यकालीन अन्तर्द्वन्द्वों के अन्तराल में प्रवाहित समन्वय की अन्तर्धारा का निदर्शन करता है और जीवन के प्रत्येक क्षेत्र -- भाषा-भूषा आभरण- आभूषण, वसति-भोजन, वाणिज्य-व्यवसाय , धर्म-दर्शन, साहित्य-विज्ञान, ललितकला-युद्धकला तथा सामाजिक - राजनीतिक निष्पत्तियों में भी सामंजस्य, सह-अस्तित्व और सन्तुलन का इंगन करता है । चन्दवरदायी स्वत: सांस्कृतिक समन्वय का स्वरघोष करता है--

उक्ति धर्म विशालस्य, राजनीति नवै रसं ।
षट्भाषा पुराणं च , कुरानं कथितं मया ।।[५०]

सन्दर्भ-सारणि

(दशम अध्याय)

सन्दर्भ-सारणि

(दशम अध्याय)

१- डॉ० गणपति चन्द्र गुप्त, हिन्दी साहित्य का वैज्ञानिक इतिहास, पृ०४५,प्र० भारतेन्दु भवन,चण्डीगढ़-२,प्र०सं० १९६५ई० ।

२- डॉ० गणपतिचन्द्र गुप्त, साहित्य का वैज्ञानिक विवेचन, पृ०१४-३६, प्र० नेशनल -पब्लिशिंग हाउस,दिल्ली,१९७१ई० ।

३- सम्पादक, डॉ० राजबली पाण्डेय, हिन्दी साहित्य का बृहद् इतिहास, प्रथम भाग, प्रकाशक, ना०प्र० सभा,काशी, पृ० ७२३ ।

४- Elliot and Dowson, The History of India as told by its own Historians, Vol.I Kitab Mahal Publication

५- Cunningham, Reports I, Page 207.

६- Barani, Page 44; Translated by M. Habib, Political Theory of the Delhi Sultanate, Page 139.

७- Rehla, Page 83, Gaekwad Oriental Series.

८- Titus, Islam In India And Pakistan, Page 157, Calcutta, 1959 Edition.

९- Dr. K.M. Ashraf, Life And Conditions of the People of Hindustan, Page 15.

१०- Dr. Tarachand, Influence of Islam on Indian Culture, Page 141-42.

११- Dr. A.L. Srivastava, Medieval Indian Culture, Page 224, Second Edition 1971.

१२- Dr. B.P. Majumdar, The Socio-Economic History of Northern India (1030-1194 A.D.) Page 245-46.

१३- Prof. Mohammad Habib, Some Aspects of Religion and Politics in India, Introduction, Page IV.

१४- Dr. R.C. Majumdar, The History And Culture of the Indian People. VI. Page 624, Bhartiya Vidya Bhavan.

१५- डॉ० युसुफ हुसेन, मध्ययुगीन भारतीय संस्कृति, भारत प्रकाशन मन्दिर, अलीगढ़ ।

१६- डॉ० हजारीप्रसाद द्विवेदी, सन्देश रासक (अब्दुल रहमान कृत), प्रस्तावना, हिन्दी ग्रन्थ रत्नाकर (प्रा०) लि०, बम्बई प्रकाशन ।

१७- डॉ० विपिन बिहारी त्रिवेदी, चन्दवरदायी और उनका काव्य, प्र० हिन्दुस्तानी एकेडेमी, उत्तरप्रदेश, इलाहाबाद, पृ० ३१३-३४६ ।

१८- Dr. A. Rashid, Society and Culture in Medieval India (1206-1556 A.D.) Page 236, Calcutta 1969 Publication.

१९- पृ०रा०, सम्पादक, मोहन सिंह, उदयपुर प्रकाशन, समय १९, छन्द १५ तथा समय ५८, छन्द ४७२ ।

२०- उपरिवत्,समय ५८, छन्द ५६८

२१- उपरिवत्, समय ११, छन्द ७१

२२- उपरिवत्, समय ६१, छन्द २६०

२३- उपरिवत्, समय ६१, छन्द २७७

२४- उपरिवत्, समय ६१, छन्द २०५,२०६ ।

२५- पृ०रा०,सम्पादक डॉ० श्यामसुन्दरदास,काशी प्रकाशन,
पृ०२०३०,छन्द ६ ७३ ।

२६- उपरिवत्, पृ० १३५३,छन्द ३७-३८ ।

२७- उपरिवत्,पृ०१३५७,छन्द ६७ ।

२८- उपरिवत्, पृ०७२२,छन्द २६६ ।

२९- उपरिवत्, पृ०९५५,छन्द ४६ ।

२९(ए) उपरिवत्, पृ०६०७,छन्द ३५ ।

३० उपरिवत्, पृ०२०९४,छन्द ४०७ तथा समय ६७,छन्द २२०--

कसै कुरान मुसै मुलान, महमंददीन ईमान जान
आमंड जमी कंटक विडार, आदल्ल रीति आलम निढार ।
फक्कार फरीद रिच कानदार, बगलीस पंनाम कामदार ।
औलिया पीर पंगंमरार, दस बीस च्यारि क्रायति कार
तबल तबल धाति तब लेश्वर,अंग उपांग मोग मोजेश्वर
कालि क्रान्त कल्ह कोलेश्वर,बैयौं ईस सुरतान साह्बेश्वर ।।

३१- उपरिवत्,पृ०४६९,छन्द १३४ तथा पृ०३९८,छन्द ६३,तथा पृ०७२२
छन्द २९२ ।

३२- उपरिवत्,पृ०४६९,छन्द १३४ ।

३३- पृ०रा०,सम्पादक, मोहनसिंह, उदयपुरप्रकाशन, भाग१,
पृ०२६९,छन्द ७१ ।

३४- उपरिवद,भाग२, पृ०५०८,छन्द २६--

बढ़ि सु बर भिस्त अरु वचन जिय, आनंथो गोरा गरुव ।

३५- अम्बदेव, समरा रास, तृतीय भाषा,छन्द १-६ ।

३६- पृथ्वीराज रासउ,सम्पादक, डॉ० माताप्रसाद गुप्त

२ : १ : २ ।

३७- पृ०रा०,सम्पादक, डॉ० श्यामसुन्दरदास,काशी प्रकाशन,

समय १३, छन्द २५, तथा समय २४,छन्द १२१ ।

३८- डॉ० राममूर्ति त्रिपाठी, आदिकालीन हिन्दी साहित्य की

सांस्कृतिक पीठिका, प्रकाशक, मध्यप्रदेश, हिन्दी ग्रन्थ एकेडमी

पृ०२०६ ।

३६- सम्पादक डॉ० राजबली पाण्डेय, हिन्दी साहित्य का वृहत्

इतिहास, प्रभाग, पृ०७२३,ना०प्र० सभा,प्रकाशन,संवत्२०१७ ।

४०- Dr. A.L. Srivastava, Mediaval Indian Culture,

Agra Publication, Second Edition 1971, Page 232.

४१- उपरिवत्,पृ०२३२-२३३-२३४ ।

४२- रेनौल्ड व निकोलसन इन्साइक्लोपीडिया आफ रिलीजन

एण्ड एथिक्स,खण्ड१२,पृ०१२ ।

४३- इश्तियाक हुसेन कुरेशी : दि मुस्लिम कम्युनिटी आफ दि

इण्डो पाकिस्तान सब कान्टिनेन्ट,पृ०१३२ ।

४४- विक्रमाजीत हसरत : दारा शिकोह : लाइफ एण्ड

वर्क्स, शान्ति निकेतन, १९५३ ।

४५- डॉ० ताराचन्द : इन्फ्लुयेन्स आफ इस्लाम आन इण्डियन कल्चर, पृ०१४१-१४२ ।

४६- डॉ० के० एम० अशरफ : लाइफ एण्ड कण्डीशन्स ऑफ दि पीपुल आफ हिन्दुस्तान, पृ०७८ ।

४७- के० दामोदरन, भारतीय चिन्तन परम्परा, पृ०३०३, पीपुल्स पब्लिशिंग हाउस(प्रा०)लि० रानी झांसी रोड नई दिल्ली ।

४८- डा० के० एम० अशरफ : लाइफ एण्ड कण्डीशन्स ऑफ दि पीपुल ऑफ हिन्दुस्तान, पृ०१५ ।

तथा

पृ०रा० सम्पादक, डॉ० श्यामसुन्दरदास, काशी प्रकाशन, समय ६७, छन्द २२० ।

४९- उपरिवत्, समय ५१, छन्द ६६ ।

५०- उपरिवत्, आदि पर्व, छन्द ८३

-0-

सुझाव एवं उपसंहार

अनुवाक्

संस्कृति-तत्वों एवं संस्कृति-संकुलों की विशिष्टता से ही सांस्कृतिक निर्मिति सम्भाव्य है । एक ही संस्कृति के अंतराल में अनेक उप-संस्कृतियां तथा इन उप-संस्कृतियों में भी विविध स्थानीय संस्कृतियों का समावेश, संस्कृति-क्षेत्रों तथा संस्कृति-संरूपों के रूप में आवृत रहता है । प्रत्येक संस्कृति में अन्तर्भूत अनिवार्य प्रेरक तत्व, मानव और समाज के पर्यावरण को प्रभावित करते हैं । मानवीय उद्देश्यों की समष्टि ही संस्कृति है[1] । मर्डाक के द्वारा[2] संस्कृति के सर्वमान्य तथ्यों का निरूपण किया गया है, जिसमें सामुदायिक जीवन, वर्ग-विभाजन, परिवार-गठन, विभिन्न संबंधों, विवाह-प्रकार, उत्तराधिकार, सामाजिक-स्तरीकरण, क्रीड़ा-विनोद, साज-सज्जा, नृत्य-गीत-कला, शिक्षा-शिष्टाचार, भोजन-पेय, अतिथि-सत्कार, जन्म-मरण-संस्कार, अदृश्य जगत्, उत्सव-पर्व, लोकविश्वास, सम्पत्ति तथा वाणिज्य-व्यवसायादि मान्यताओं का परिगणन किया गया है । भारतीय जीवन-दृष्टि एवं सांस्कृतिक उपादानों का

विश्लेषण निष्णात विद्वज्जनों द्वारा प्रस्तुत किया गया है[3]। उक्त आधारपीठिका पर ही आदिकालीन हिन्दी रासो काव्यों में सांस्कृतिक उन्मेष का आकलन अनुसंधित्सु का अभीष्ट है।

लगभग एक हजार अद्यावधि उपलब्ध रासो ग्रन्थों की समीक्षा करते हुए अनुसंधायक-सीमा का निर्धारण किया गया है, जिसमें संस्कृत भाषा के सं० ६६२ में विरचित रिपुदारण रास तथा दसवीं शती में उल्लिखित चार रासो काव्यों-- मुकुट सप्तमी रास, माणिक्य प्रस्तारिका रास, अंबिकादेवी रास और अन्तरंग रास की आधारपीठिका पर आदिकालीन हिन्दी रासो काव्य-परम्परा की सीमा में संदेशरासक से लेकर वीसलदेवरास तक लगभग चालीस रासो काव्यों को अभीष्ट अन्वेषण हेतु आधार बनाया गया है और इनका कालक्रमानुसार विवरण दिया गया है। इसके साथ ही इसमें सांस्कृतिक समायोजन की अभिव्यक्ति, शोध-लक्ष्य-निरूपण और शोधित्सु के निष्कर्ष का अंकन है, जिससे यह स्पष्ट है कि आदिकालीन हिन्दी रासो काव्य-परम्परा के कवि केवल राजाश्रित, प्रशस्तिमूलक रचनाकार नहीं, वरन् लोकजीवन और लोक-चेतना के प्रतिनिधि बनकर समष्टि और व्यष्टि का सांस्कृतिक समन्वय करते हैं। स्पष्टतः राजनीतिक घातों-प्रतिघातों, द्विधा धर्म-साधनाओं, परस्पर विरोधी संस्कृतियों और दो समाज-पद्धतियों के संघर्ष का सावयव प्रतिबिम्बन तथा उनके आदान-प्रदान का प्रतिफलन आदिकालीन हिन्दी रासो काव्य-परम्परा में निहित है, जिन्हें प्राणतत्त्व, रूप-तत्त्व और स्वरतत्त्व के रूप में अभिहित

किया गया है । प्रबन्ध की प्रस्तुतीकरण- पद्धति का आधार विकासवादी प्रक्रियामूलक है, यह भी विवेचित है । तात्पर्यतः विकास के पांच सोपान-- उद्भूति, परम्परा, परिवेश, द्वन्द्व और सन्तुलन की प्रवृत्यात्मक व्याख्या तात्कालीन संस्कृति के मूल उपादानों में समवेत है । प्रबन्ध की मौलिकता के सन्दर्भ में अब तक इस विषय पर अध्ययन के अभाव का द्योतन करते हुए शोधार्थी के यत्किंचित् नवीन दृष्टिकोणों का ज्ञापन किया गया है ।

रासो काव्य और `रासो` शब्द की निसर्गतः उद्भूति का विश्लेषण करते हुए इसे प्रागैतिहासिक काल की लोक नृत्यात्मक प्रवृत्ति से सम्बद्ध किया गया है । तदुपरान्त वेदों से लेकर आज तक प्रवर्तित सामूहिक नृत्य-गान परम्परा के विविध विकासशील आयामों में इसके विकास का इतिवृत्त आकलित किया गया है । संस्कृति और विकृति के विभिन्न उत्स, विविध काल-सीमाएं लांघकर नव्य संस्कारों में प्रस्फुटित होते रहे हैं और रासो काव्य भी अनेक अस्पष्ट स्वरूपों में संस्कृत,प्राकृत, अपभ्रंश, अवहट्ठ तथा हिन्दी में तत्कालीन संस्कृति की अभिव्यक्ति करते हैं । इस मन्तव्य के लिए रासो की पद-निष्पत्ति , परिभाषा प्रकार-पद्धति, प्रयोजन-प्रयोग, विषयवस्तु और अभिव्यक्ति तथा प्रकृति-प्रवृत्ति- प्रभावादि की विकासमान विवक्षा अनिवार्यतः अभीष्ट रूप में दी गई है ।

भारत की आदि हिन्दी रासो काव्य-काल में साहित्येतर स्रोताधारित सांस्कृतिक पीठिका का निर्वचन किया गया है, जिसमें अभिलेखों -- स्तम्भ, शिला, गुहा, मूर्ति,मुद्रा, पात्र प्राकार- लेखादि -- स्मारकों, यात्रा- विवरणों,इतिवृत्तात्मक साक्ष्यों के आधार पर तत्कालीन भारत का राजनय, समाजदर्शन, पारिवारिक- आर्थिक- धार्मिक जीवन आदि का अभ्यंकन है । साहित्येतर कलाओं का निदर्शन है । राजपूत-युग और मुस्लिम-युग के सांस्कृतिक मूल्यों का चित्रण है । विघटन-विभाजन, आक्रमण-विप्लव और चार सौ वर्षों के इतिहास में अव्यवस्था एवं अस्तव्यस्तता का मूर्त रूप है । प्रतीति यह है कि आतीतिक गरिमा, समसामयिक उच्चावच परिधान और भावी संघटनाओं का युगनिर्देशक भारत इन संक्रमण-संक्रान्ति के क्षणों में भी उदात्त संस्कृति का केन्द्रस्थल था । परम्परा-विहित संस्कृति के समस्त उपादानों का निदर्शन इसकाल में उद्घाटित हुआ है और उस समय के उत्सव-संकीर्तन? मृगया-मिलन, वैभव- विलास, वीरता-विनोद, प्रशस्ति-चाटुकारिता तथा सामन्तों एवं लोकजीवन का काव्यात्मक इतिहास ही आदिकालीन हिन्दी रासो साहित्य है ।

भारतीय समाज-संगठन, वर्ण, जाति, कुलकर्म, आश्रम आदि का वातावरणजन्य युगबोध के रूप में रासो काव्यों के अन्तर्गत प्रारूप प्रस्तुत किया गया है । वस्तुत: तत्कालीन संस्कृति की रासो साहित्य में संयोजना का यह आधार है । सामाजिक जीवन की अभिव्यक्ति के लिए हिन्दू और मुस्लिमों की

समाज-व्यवस्था का यह मेरुदण्ड है । जातियों- उपजातियों के रूप में वर्ण व्यवस्था-- षट्-वर्ण, अट्ठारह वर्ण, छत्तीस-क्षत्रियवंश, ब्रह्म-क्षत्रिय, विविध ब्राह्मण, वैश्य, शूद्र, नाई, माली, चारण , दसौंधी, अहीर, गूजर, कायस्थ, आदि में विभाजन- उपविभाजन की ओर उन्मुख थी । आश्रम-व्यवस्था टूट चुकी थी । मुसलमान अथवा म्लेच्छ भी कई जातियों में विभाजित हो गए थे । गुण और कर्म के आधार पर प्रारम्भ हुई वर्ण-व्यवस्था अब जन्म और जाति का आश्रय ग्रहण कर चुकी थी । विभिन्न जातियों के वंशानुरूप कर्म, चरित्र, स्वभाव तथा सामाजिक श्रेष्ठता के मानदण्ड बन गए थे ।

परिवार-प्रणाली, पारिवारिक सदस्य, स्वजन संबंधी, विविध पर्व, उत्सव, व्रत, त्योहार, संस्कार एवं पारस्परिक व्यवहार-विधि का द्योतन किया गया है । संयुक्त पारिवारिक व्यवस्था का परंपरागत स्वरूप अक्षुण्ण था ।पिता,माता, काका, अग्रज, जेठ, चाचा, पत्नी, सास, सौत(सपत्नी),बहन,पुत्र-पुत्री, साला-बहनोई,नाना और धाय आदि स्वजन- सम्बन्धियों में थे । जन्मोत्सव, जातकर्म, शुद्धि-कर्म, नामकरण आदि संस्कार सम्पन्न किए जाते थे । स्वयंवर-प्रथा प्रचलित थी । हरण-वरण खड्ग-विवाहादि पर विश्वास था । विवाह के सम्बन्ध में सगाई, लगन,टीका, कंकरण, अगवानी, तोरण-बन्दन,जनवासा,द्वाराचार, मण्डप, पटा बैठना, गणेश-पूजा, गांठ बांधना, भांवर-कन्यादान, दहेज, कुलदेवतापूजनादि क्रियाएं निष्पन्न होती थीं । बहु-विवाह

प्रथा प्रवर्तित थी । अन्त्येष्टि क्रिया होती थी । सती-प्रथा सविधि सम्पादित की जाती थी । हिन्दू और मुसलमान दोनों ही अनेक पर्व तथा त्योहार सोल्लास मनाते थे, जिनमें होली, दीपावली, दशहरा, सलोना अथवा कजरी लोटना, नवदुर्गा, शिवरात्रि, बसन्तपंचमी, ईद, रोज़ा आदि प्रमुख थे । पारस्परिक अभिवादन के लिए चरण-स्पर्श, प्रणाम, आशीर्वचन आदि विधियां थीं । अतिथि-सत्कार के लिए रास्ते में पांवड़े बिछाना, आरती लेना, खड़ा होना, गले मिलना, चरण धोना, उपहार भेंट करना आदि कार्य प्रचलित थे ।

भोजनपेय, वस्त्राभूषण, वसति-विन्यास, यातायात, विनोद, मनोरंजन, खेलकूद, साज-सज्जादि का चित्रण करते हुए जन-जीवन की अभिरुचियों का उल्लेख अनुस्यूत है । जीवन की अनिवार्य आवश्यकताओं की पूर्ति के साथ ही उक्त अध्ययन से तत्कालीन जीवन-दृष्टि का ज्ञान होता है । संस्कृति के उदात्त पक्ष के साथ-साथ कु-संस्कारों, विलासमुखी एषणाओं, सम्पन्नता-विपन्नता और आचार-विचार की अधोमुखी स्थिति का सम्यक् स्वरूप जीवनचर्या और जीवन-यापन के विश्लेषण से स्पष्ट होता है । यद्यपि उच्च अट्टालिकाओं, अटारियों और गवाक्षों से सामन्ती जीवन की झांकी ही अधिक दृष्टिगोचर होती है, किन्तु नगरों की हाटों, शृंगार-सज्जाओं और सामान्य भोजन-पेय पदार्थों में लोकजीवन भी झलकता है ।

तत्कालीन अर्थतंत्र, आर्थिक नीति, कृषि-उद्योग, वाणिज्य-व्यवसाय, व्यापार-स्थल, वाणिज्य-वस्तुएं, व्यावसायिक साधन, राष्ट्रीय एवं अन्तर्राष्ट्रीय व्यापारिक सम्बन्ध, अनेक व्यवसायों , उत्पादित वस्तुओं, कृषि के संसाधनों, जीविका उपार्जन के स्रोतों और साधनों, बुद्धिजीवी एवं श्रमजीवी वर्गों,राजकीय आय के साधनों, आय-व्यय, वस्तुओं के मूल्यों, प्रयुक्त सिक्कों आदि पर प्रकाश डालते हुए तत्कालीन चरमराती अर्थ-व्यवस्था अथवा वैषम्यपूर्ण आर्थिक जीवन का अंकन करता है । सामान्यत: आकस्मिक अकाल-काल के अतिरिक्त प्रजाजन को धन-धान्य से पूर्ण चित्रित किया गया है । राजन्यवर्ग के समक्ष निरन्तर युद्धरत रहने पर भी धन का अभाव कहीं भी चित्रित नहीं किया गया ।

राजनयिक पर्यावरण का निदर्शन किया गया है । राजनीतिक दृष्टि से विघटन-विभाजन, आक्रान्ताआक्रान्त और कारण-अकारण युद्धभेरियों का काल था । राजपूत राजवंशों में अहं का विस्फोट हो रहा था । राजपूत-युग और मुस्लिम युग में आलोच्यकाल को विभाजित करके राज्य के विविध अंगों-उपांगों, राज्याधिकारियों, राज्यपरिवार और उसके सम्बन्धियों, राजा तथा सुलतानों के प्रति जनभावनाओं, राजा के दायित्वों, आदिका आकलन किया गया है ।राजधानी, राजचिन्ह, राजसभा और राजमहिषी का विवरणात्मक उल्लेख है । रानी मल्हना और संयोगिता शासन-संचालन में हस्तक्षेप करती थीं । राजा और सुलतान में दैवी अंश माना जाता था । चतुरंगिणी सेना थी । केन्द्रीय सेना के साथ ही सामन्तों की सेनाएं थीं । तोपखाना का

प्रयोग संदिग्ध है। सेनाओं की पृथक्-पृथक् पताकाएं रहती थीं। विविध रणवाद्य थे। रणक्षेत्र में शरीर-रक्षा हेतु टोप और जिरह धारण किए जाते थे। कुरुक्षेत्र में व्यूह-रचना की जाती थी। युद्ध में अनेक प्रकार के अस्त्र-शस्त्र प्रयुक्त होते थे। दण्ड के रूप में मृत्युदण्ड, आँखें निकलवाना, कोल्हू से पिलवाना, आदि प्रचलित थे। जागीरें देने की प्रथा थी। पान का बीड़ा देकर शत्रु से संघर्ष के लिए सेनापतित्व का भार सौंपा जाता था। गुप्तचर प्रथा थी। युद्धक्षेत्र में भी हरम ले जाने का प्रचलन था। धर्म-द्वार से निकलने की प्रार्थना शत्रु-पक्ष से हार जाने पर की जाती थी।

धर्म, दर्शन, भक्ति, मत, सम्प्रदाय, धार्मिक कृत्य, धार्मिक विश्वास, लोकमान्यताओं, तंत्र-मंत्र-ज्योतिष, धर्मावलम्बियों का पारस्परिक व्यवहार तथा आचरण की अभिव्यक्ति करता है। वैदिक, बौद्ध, जैन, इस्लाम आदि धर्मों का, विष्णु, शिव, शक्ति, कृष्ण, राम, सरस्वती, गणेश, इन्द्र, वरुण-वीर, गन्धर्व, यक्ष, नारद, भूत, भैरव, प्रेत, वैताल, पिशाच, पलचर, योगिनी, गोरखनाथ, साधु, कापालिक, अल्लाह, भिजुमो, फरिश्ता, नबी, पैगंबर, हजरत इमाम, काजी, हाजी तथा गाजी का अनेक स्थलों पर विवरण मिलता है। गंगा, यमुना और गोमती में स्नान पुण्य-फलदायक माना जाता था। धर्म-ग्रन्थों का पढ़ना, दान देना, तपश्चर्या आदि पर विश्वास था। व्रत, तीर्थ, सत्संग, वरदान, शाप, अवतार शकुन, स्वप्न पर आस्था थी। सप्तक्षेत्र-- जिन प्रतिमा, जिन मंदिर,

ज्ञान, साधु, साध्वी, श्रावक और श्राविका का सेवन जैनमतावलम्बी ही नहीं, वरन् ब्राह्मण-धर्मावलम्बी भी करते थे । जैन रासो काव्यों में उपदेश, उपासना, संघवर्णन, दीक्षा, आत्मविजय, चित्तशुद्धि, ९ सम्यक् तत्व, आचार-विचार, तीर्थस्थल, गुरु-प्रशस्ति संयमश्री, अहिंसा, सत्य, तप, चार संस्थान, १६ सोपान, वीत-रागिता, शील-रक्षा, सत्याग्रह, जिनालय, पट्टाभिषेकादि जैन-धर्मतत्वों का उन्मेष किया गया है । माया, ब्रह्म, जगत्, जीव-दशा, मुक्ति आदि के सम्बन्ध में परम्परा-विहित विचार थे । यह युग आस्था, विश्वास और अतीतिक मान्यताओं का युग था ।

भारतीय वाङ्मय, ललित कलाओं और वैज्ञानिक उपलब्धियों के प्रतिबिम्बन का संश्लिष्ट चित्रांकन हुआ है । वेद-वेदांग, उपनिषद्, रामायण, महाभारत, पुराणादि इन काव्यों में परोक्ष और अपरोक्ष रूप में प्रभाव- परिणति की अमिट छाप छोड़ते हैं । वास्तु,स्थापत्य, उत्खनन, मूर्ति, चित्र, संगीत, गायन-वादन, नृत्य, नाट्य आदि कलाओं के मूर्तिमान स्वरूप के साथ ही ललित विस्तर, प्रबन्धकोश, शुक्रनीतिसार तथा कामसूत्र में निदर्शित अधिकांश कलाओं के अवशेष खोजने का प्रयास किया गया है । विज्ञान के क्षेत्र में जीव विज्ञान, वनस्पति विज्ञान,ज्योतिर्विज्ञान, धातु-विज्ञान, नक्षत्रविज्ञान, भौतिक विज्ञान, गणित और रसायन विज्ञान आदि की उपलब्धियों का समाहार किया गया है ।

शोध-प्रबन्ध के अन्तर्गत, प्रकृत उद्भूतियुक्त उच्छ्वासों, चार शताब्दियों की विच्छिन्न परम्पराओं और विविधमुखी सांस्कृतिक परिवेशों के उपरान्त, जीवनगत द्वन्द्वात्मक निदर्शनों के अन्तराल में सन्तुलन एवं सह-अस्तित्व का उद्घाटन हुआ है । सांस्कृतिक द्वन्द्व और समन्वयवादिता ही इस युग की चरम चिति है और यही प्रस्तुत प्रबन्ध का निष्कर्ष-निकष भी है ।

-0-

सन्दर्भ - सरणि

-०-

(अनुवाद)

१- प्रो० श्यामाचरण दुबे, मानव और संस्कृति, राजकमल प्रकाशन, दिल्ली, पृ० २०७, द्वि०सं०, १६६६ई० ।

२- ओ०पी० महांकि, सोशल स्ट्रक्चर, न्यूयार्क प्रकाशन, १६५६ ई० ।

३-(अ) डॉ० रामजी उपाध्याय, प्राचीन भारतीय साहित्य की सांस्कृतिक भूमिका, पृ० १-२७, लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद ।

(ब) डॉ० गुलाबराय, भारतीय संस्कृति, रवीन्द्र प्रकाशन, आगरा, पृ०३-३१ ।

(स) डॉ० देवराज, भारतीय संस्कृति, हिन्दी समिति उत्तर प्रदेश, प्रकाशन, पृ० १७-३६ ।

(द) डॉ० बैजनाथ पुरी, भारतीय संस्कृति और इतिहास, राजकमल प्रकाशन, पृ० १-२३ ।

(य) डॉ० रामखेलावन पाण्डेय, भारतीय संस्कृति और सांस्कृतिक चेतना, राधाकृष्ण प्रकाशन, पृ०७-२७ ।

(र) साने गुरु जी, भारतीय संस्कृति, सस्ता साहित्य मण्डल प्रकाशन, तृ०सं०, १६६४ई० ।

(ल) डॉ० भगवतशरण उपाध्याय, भारतीय संस्कृति के स्रोत, पोपुलर पब्लिशिंग हाउस प्रकाशन, १६७३ई० ।

(व) आचार्य क्षितिमोहन सेन, संस्कृति-संगम, साहित्य भवन, इलाहाबाद प्रकाशन आदि प्रस्तुत शोध-प्रबन्ध के प्रथम परिशिष्ट में संस्कृति-सम्बन्धी ग्रन्थ विवरणिका द्रष्टव्य ।

परिशिष्ट

(१) प्रथम परिशिष्ट : संस्कृति सम्बन्धी सहायक ग्रन्थ ।

(२) द्वितीय परिशिष्ट : आदिकालीन हिन्दी रासो साहित्य ग्रन्थ । (कालक्रमानुसार)

(३) तृतीय परिशिष्ट : हिन्दी साहित्येतिहास सन्दर्भ ग्रन्थ ।

(४) चतुर्थ परिशिष्ट : उपजीव्य सांस्कृतिक आधार ग्रन्थ ।

(५) पंचम परिशिष्ट : पत्र-पत्रिका--पाण्डुलिपियां एवं अन्य सहायक ग्रन्थ ।

(६) षष्ठ परिशिष्ट : आदिकालीन हिन्दी रासो साहित्य-भंडार तथा पुरातत्व संस्थान ।

-0-

प्रथम परिशिष्ट

संस्कृति सम्बन्धी सहायक ग्रन्थ

(१) अलबेरूनी का भारत : अनु० रजनीकान्त शर्मा, सचाउकृत अंग्रेजी अनुवाद से अनुदित।

(२) आदिकालीन हिन्दी साहित्य की सांस्कृतिक पीठिका। : डॉ० राममूर्ति त्रिपाठी

(३) आर्य जीवन दर्शन : पं० मोहनलाल महतो

(४) इस्लाम धर्म की रूपरेखा : श्री राहुल सांकृत्यायन

(५) इब्नेखल्दून का मुकदमा : अनु० डॉ० सैयद अतहर

(६) उत्तरी भारतीय अभिलेखों का सांस्कृतिक अध्ययन : श्री रामप्रकाश ओझा

(७) कला और संस्कृति : डॉ० वासुदेवशरण अग्रवाल

(८) कला विवेचन : डॉ० कुमार विमल

(९) चन्देलकालीन बुन्देलखण्ड का इतिहास : डॉ० अयोध्याप्रसाद पाण्डेय

(१०) जाति-भेद का उच्छेद : डॉ० बी०आर० अम्बेदकर

(११) जाति, वर्ण और व्यवसाय : श्री गोविन्द सदाशिव घुर्ये

(१२) जैन काव्य दोहन, भाग-१ : श्री पोपटलाल शाह

(१३) टॉडकृत राजस्थान का इतिहास : अनु० श्री केशवकुमार ठाकुर

(१४) धर्मनिरपेक्ष भारत की प्रजातन्त्रात्मक परम्पराएं : श्री यदुनन्दन कपूर

(१५) धर्म और समाज : डॉ० राधाकृष्णन

(१६) धर्मशास्त्र का इतिहास, भाग १-२-३ : डॉ० पी०वी० काणे अनु० अर्जुन चौबे

(१७) नाथ सम्प्रदाय : डॉ० हजारी प्रसाद द्विवेदी

(१८) प्राचीन भारत : डॉ० राजबली पाण्डेय

(१६) प्राचीन भारत का इतिहास : श्री वी०डी० महाजन
(२०) प्राचीन भारतीय शिक्षण पद्धति : डॉ० अनंतसदाशिव अलतेकर
(२१) परमार राजवंश का इतिहास : डॉ० डी०सी० गांगुली
(२२) पूर्व मध्यकालीन भारत : डॉ० अवधबिहारी पाण्डेय
(२३) प्राचीन भारत : डॉ० रमेशचन्द्र मजूमदार, अनु० परमेश्वरीलाल गुप्त
(२४) प्राचीन भारतीय साहित्य की सांस्कृतिक भूमिका : डॉ० रामजी उपाध्याय
(२५) प्राचीन भारत में रसायन का विवेचन : डॉ० सत्यप्रकाश
(२६) प्राचीन भारतीय अभिलेखों का अध्ययन : डॉ० वासुदेव उपाध्याय
(२७) प्राचीन लोकोत्सव : श्री मन्मथराय
(२८) प्राचीन भारत में जनतंत्र : डॉ० देवीदत्त शुक्ल
(२६) प्राचीन भारत की संस्कृति और सभ्यता : श्री डी०डी० कौशाम्बी
(३०) प्राचीन भारत : डॉ० राधाकुमुद मुकर्जी
(३१) प्राचीन भारत में नगर तथा नगर जीवन : डॉ० उदयनारायण राय
(३२) प्राचीन भारत में कलात्मक विनोद : डॉ० हजारी प्रसाद द्विवेदी
(३३) प्राचीन भारतीय मूर्ति विज्ञान : डॉ० वासुदेव उपाध्याय
(३४) प्राचीन भारत के प्रसाधन : श्री अत्रिदेव विद्यालंकार
(३५) प्राचीन सिक्के : श्री रामप्रकाश ओझा
(३६) प्राचीन भारतीय शासन-पद्धति : प्रो० अनंतसदाशिव अलतेकर
(३७) ब्रज का सांस्कृतिक इतिहास : श्री प्रभुदयाल मीतल
(३८) भारतीय संस्कृति : श्री हंसराज अग्रवाल
(३६) भारतीय संस्कृति के मूल तत्व : डॉ० बैजनाथ पुरी
(४०) भारत का सांस्कृतिक इतिहास : श्री हरिदत्त वेदालंकार
(४१) भारतीय संस्कृति : डॉ० लल्लन जी गोपाल
(४२) भारतवर्ष में विवाह और परिवार : श्री के०एम० कापड़िया

(४३) भारत दर्शन की रूपरेखा : श्री एम० हिरियन्ना
(४४) भारतीय संस्कृति के मौलिक तत्व : डॉ० सत्यनारायण पाण्डेय
(४५) भारतीय धर्म-व्यवस्था : श्री वाचस्पति गैरोला
(४६) भारतीय संस्कृति का इतिहास : डॉ० वासुदेव विष्णु
(४७) भारतीय इतिहास और संस्कृति : श्री विशुद्धानन्द पाठक तथा श्री जयशंकर मिश्र ।
(४८) भारतीय संस्कृति और उसका इतिहास : डॉ० सत्यकेतु विद्यालंकार
(४९) भारत में समाजशास्त्र, प्रजाति और संस्कृति : श्री गौरीशंकर भट्ट
(५०) भारत की संस्कृति और कला : डॉ० राधाकमल मुकर्जी
(५१) भारतीय सामाजिक व्यवस्था : श्री रामबाबू गुप्त
(५२) भारतीय पुरातत्व : श्री पुरुषोत्तम शर्मा चतुर्वेदी
(५३) भारतीय संस्कृति और इतिहास : डॉ० बैजनाथ पुरी
(५४) भारतीय संस्कृति : बाबू गुलाबराय
(५५) भारतीय चित्रकला का संक्षिप्त इतिहास : श्री वाचस्पति गैरोला
(५६) भारतीय संस्कृति : श्री शिवदत्त शास्त्री
(५७) भारतीय संस्कृति : श्री साने गुरु जी
(५८) भारतीय संस्कृति और सांस्कृतिक चेतना : डॉ० रामलेखावन पाण्डेय
(५९) भारतीय वास्तु शास्त्र : डॉ० द्विजेन्द्रनाथ शुक्ल
(६०) भारतीय संस्कृति और सभ्यता : डॉ० प्रसन्नकुमार आचार्य
(६१) भारतीय चित्रकला की कहानी : डॉ० भगवतशरण उपाध्याय
(६२) भारतीय दर्शन : आचार्य बलदेवप्रसाद उपाध्याय
(६३) भारतीय संस्कृति : डॉ० देवराज
(६४) भारतीय मूर्तिकला की कहानी डॉ० भगवतशरण उपाध्याय
(६५) भारतीय मूर्तिकला : श्री रायकृष्णदास
(६६) भारतीय चिन्तन परम्परा : श्री के० दामोदरन
(६७) भारतीय धर्मों का इतिहास : डॉ० आर०जी० भण्डारकर

(६८) भारतीय साहित्य और संस्कृति : डा० हरिदत्त शास्त्री

(६९) भारतीय संस्कृति का इतिहास : श्री दिनेशचन्द्र भारद्वाज

(७०) भारतीय ज्योतिष : डा० नेमिचन्द्र शास्त्री

(७१) भारत के पक्षी : श्री राजेश्वरप्रसाद नारायणसिंह

(७२) भारतीय कला के पदचिह्न : डा० जगदीश गुप्त

(७३) भारत की चित्रकला : श्रीरायकृष्णदास

(७४) भारतीय संस्कृति का प्रवाह : डा० कृपाशंकर

(७५) भारत का इतिहास : डा० ईश्वरी प्रसाद

(७६) भारतवर्ष का नवीन इतिहास : डा० ईश्वरीप्रसाद

(७७) भारतीय विचारधारा : श्री हरिहरनाथ त्रिपाठी

(७८) भारतीय संस्कृति के स्रोत : डा० भगवतशरण उपाध्याय

(७९) भारतीय संस्कृति के आधार : महर्षि अरविन्द, अनु० डा० मीरा श्रीवास्तव ।

(८०) मानव और संस्कृति : श्री श्यामाचरण दुबे

(८१) मध्यदेश : डा० धीरेन्द्र वर्मा

(८२) मध्यकालीन भारतीय संस्कृति(६००-१२००ई०) : म०म० गौरीशंकर हीराचन्द ओझा

(८३) मध्यकालीन धर्म साधना : डा० हजारीप्रसाद द्विवेदी ।

(८४) मध्ययुगीन भारतीय संस्कृति : डा० यूसुफ हुसेन

(८५) राजपूत राजवंश : डा० अवधबिहारीलाल अवस्थी

(८६) राजनिवेश और राजसी कलायें : डा० द्विजेन्द्रनाथ शुक्ल

(८७) संस्कृति के चार अध्याय : श्री रामधारी सिंह 'दिनकर'

(८८) सांस्कृतिक भारत : डा० भगवतशरण उपाध्याय

(८९) संस्कृति संगम : आचार्य क्षितिमोहन सेन

(९०) सांस्कृतिक निबन्ध : डा० भगवतशरण उपाध्याय

(९१) समाज और राज्य भारतीय विचार : डा० सुरेन्द्र नाथ मीतल

(९२) हिन्दू राजतंत्र : स्व०काशीप्रसाद, अनु०श्री रामचन्द्र वर्मा

(९२) हिन्दुस्तान की पुरानी सभ्यता : डा० बेनीप्रसाद

(९३) हिन्दू संस्कार : डा० राजबली पाण्डेय

(९४) हिन्दुत्व : श्री सावरकर

(९५) हिन्दू सभ्यता : डा० राधाकुमुद मुकर्जी

(९६) हिन्दू विवाह का संक्षिप्त इतिहास : श्री हरिदत्त वेदालंकार

(९७) हर्ष चरित : एक सांस्कृतिक अध्ययन : डा० वासुदेवशरण अग्रवाल

(९८) हरिवंश पुराण का सांस्कृतिक विवेचन : श्रीमती वीणापाणि

(९९) हिन्दी साहित्य की दार्शनिक पृष्ठभूमि : श्री विश्वम्भर उपाध्याय

(१००) हिन्दुओं का जीवन-दर्शन : डा० राधाकृष्णन

(१०१) हिन्दू संस्कृति में राष्ट्रवाद : डा० राधाकुमुद मुकर्जी

(102) A Comprehensive History of India, Volume Five : Prof. Mohd. Habib Khaliq Ahmad Nizami.

(103) The Ground work of Ancient Indian History : Prof. J.S. Negi

(104) Historians of Medieval India : Mr. M. Hasan

(105) Historical & Literary Inscriptions : Dr. Rajbali pandey.

(106) India As Described by The Arab Travellers : Dr. A.K. Srivastava.

(107) Influence of Islam on Indian Culture. : Dr. Tara Chand.

(108) Life And Contitions of The Peoples of Hindustan : Dr. K.M. Asharaf.

(109) Life In Ancient India as Depicted in The Jain Canons. : Dr. Jagdish Chandra Jain.

(110) Later Hindu Civilization : Sri Romesh Chandra Dutta.

(111) Military History of India : Shri Jadunath Sarkar.

(112) Medieval Indian Culture. : Dr. A.L. Srivastava.

(113) Man And Society In Indian Philosophy : Mr. K. Damodaran.

(114) Our Culture : Mr. C. Rajgopalachari.

(115) Political History of Northern India : Dr. Gulab Chandra Chaudhari.

(116) State And Government In Ancient India. : Dr. A. S. Altekar.

(117) Rajput Polity. : Dr. A.B.L. Awasthy.

(118) Society And Culture In Northern India. : Dr. B.N.S. Yadava.

(119) Studies In Indian Art. : Dr. V.S. Agrawala.

(120) Society And Culture In Medieval India. : Dr. A. Rashid.

(121) The Age of Imperial Kannauj. : General Ed. Dr. R.C. Majumdar

(122) The Struggle For Empire. : "

(123) The Delhi Sultanate : "

(124) The History of Chahmans : Dr. R.B. Singh.

(125) The Women of India : Raja Ram Mohan Roy.

(126) The Foundation of Muslim Rule In India. : Prof. A.B.M. Habibullah.

(127) The Wonder that was India. : Prof. A.L. Basham.

द्वितीय परिशिष्ट

-0-

आदिकालीन हिन्दी रासो साहित्य ग्रन्थ (कालक्रमानुसार)

(१) सन्देश रासक : अब्दुल रहमान

(२) उपदेश रसायन रास : जिनदत्त सूरि

(३) भरतेश्वर बाहुबलिघोर रास : वज्रसेन सूरि

(४) भरतेश्वर बाहुबलि रास : शालिभद्र सूरि

(५) बुद्धिरास : शालिभद्र सूरि

(६) जीव दयारास : आसगु

(७) चन्दन बाला रास : आसगु

(८) पृथ्वीराज रासो भाग १-६ : चन्दबरदायी सं०डॉ०श्यामसुंदरदास

(९) जम्बू स्वामी रास : धर्मसूरि

(१०) स्थूलिभद्ररास : धर्म कलश

(११) रेवंतगिरि रास : विजयसेन सूरि

(१२) आबू रास : पाल्हण

(१३) नेमिनाथ रास : सुमतिगणि

(१४) महावीर रास : अभय तिलक

(१५) शान्तिनाथ रास : अज्ञात रचनाकार

(१६) शान्तिनाथ देव रास : लक्ष्मी तिलक

(१७) गय सुकुमाल रास : देल्हण

(१८) सप्त क्षेत्री रास : अज्ञात रचनाकार

(१६) सालिभद्ररास : राजतिलक गणि

(२०) जिनेश्वर सूरि विवाह वर्णन रास : सोममूर्ति

(२१) बारव्रत रास : विनयचंद सूरि

(२२) बीस विरह मान रास : अखिलग

(२३) ावक विधि रास : गुणाकर सूरि

(२४) पेथड रास : मंडलिक

(२५) कच्छूलि रास : प्रजातिलक सूरि

(२६) जिनसूरि वर्णन रास : लखामसीहसु

(२७) जिन कुशल सूरि महाभिषेक रास : धर्मकलश

(२८) मयणरेहा रास : रयणु

(२६) रत्नशेखर या चतु: पर्वीरास : अज्ञात लेखक

(३०) जिनपद्मसूरि पट्टाभिषेकरास : सारमूर्ति

(३१) पांच पाण्डवचरित रास : शालिभद्रसूरि

(३२) गौतमस्वामी रास : विनयप्रभ

(३३) त्रिविक्रमरास : जिनोदयसूरि

(३४) श्री जिनोदयसूरि पट्टाभिषेक रास : ज्ञानकलश

(३५) शालिभद्ररास : राजतिलक

(३६) हमीर रासो,शाङ्र्गधर रचित : प्राकृतपैंगलम् में आठ छंद

(३७) बीसलदेवरास,नरपति नाल्ह : सं० डॉ० माताप्रसाद गुप्त

(३८) बीसलदेवरास,नरपति नाल्ह : सं०श्री राजनाथ शर्मा

(३६) बीसलदेव रास,नरपति नाल्ह : सं० सत्यजीवन वर्मा

(४०) बीसलदेव रास, नरपति नाल्ह : सं० डा० तारकनाथ अग्रवाल

(४१) बीसलदेवरास, नरपति नाल्ह : सं० श्री सीताराम शास्त्री

(४२) हम्मीर रास , महेश : सं० डा० माताप्रसादगुप्त

(४३)पृथ्वीराज रासो भाग१-४ : चंदबरदायी, सं०कविराव मोहनसिंह

(४४)पृथ्वीराज रासउ : चंदबरदायी,सं०डॉ०माताप्रसाद गुप्त

(४५)पृथ्वीराज रासो, : चंदबरदायी, सं० डॉ०बी०पी० शर्मा

(४६) संक्षिप्त पृथ्वीराज रासो	: चंदवरदायी, सं० डा०हजारीप्रसाद द्विवेदी ।
(४७) पृथ्वीराज रासो और उसकी ग्रन्थ संख्या	: आचार्य श्री सदाशिव दीक्षित
(४८) पृथ्वीराज रासो तथा अन्य निबन्ध	: डॉ० पुरुषोत्तमलाल मेनारिया
(४९) चन्दवरदायी और उनका काव्य	: डॉ० विपिन बिहारी त्रिवेदी
(५०) रासो साहित्य और पृथ्वीराज रासो	: श्री नरोत्तमदास स्वामी
(५१) पृथ्वीराज रासो की विवेचना	: सं० कविराव मोहन सिंह
(५२) पृथ्वीराज रासो एक समीक्षा	: डॉ० विपिन बिहारी त्रिवेदी
(५३) पृथ्वीराज रासो की भाषा	: डॉ० नामवर सिंह
(५४) पृथ्वीराज रासो में कथानक रूढ़ियां	: डॉ० ब्रजविलास श्रीवास्तव
(५५) पृथ्वीराज रासो के पात्रों की ऐतिहासिकता	: डॉ० कृष्णचन्द्र अग्रवाल
(५६) वीर काव्य	: डॉ० उदयनारायण तिवारी
(५७) रेवातट	: डॉ० भगीरथ मिश्र
(५८) रेवा तट	: सं० डॉ० गोवर्धननाथ शुक्ल
(५९) रासो समीक्षा	: आचार्य श्री सदाशिव दीक्षित
(६०) पृथ्वीराज रासो इतिहास और काव्य	: डॉ० राजमल बोरा
(६१) रासो साहित्य विमर्श	: डॉ० माताप्रसाद गुप्त
(६२) परमाल रासो, अज्ञात रचयिता	: सं०डॉ० श्यामसुन्दरदास
(६३) हिन्दी रासो काव्य परम्परा	डॉ०सुमन राजे
(६४) आदिकाल के अज्ञात हिन्दी रास काव्य	: डॉ० हरिशंकर शर्मा 'हरीश'
(६५) आदिकालीन हिन्दी साहित्य शोध	: डॉ० हरिशंकर शर्मा 'हरीश'
(६६) रास और रासायन्वी काव्य	: डॉ० दशरथ ओझा तथा डॉ० दशरथ शर्मा
(६७) रासो सार	: सं० डॉ० श्यामसुन्दरदास
(६८) रासमाला, फार्बसकृत	: अनु० श्री गोपालनारायण बहुरा
(६९) अपभ्रंश काव्यत्रयी	: सं० लालचन्द्र भगवानदास गांधी
(७०) प्राचीन गुर्जर काव्य संग्रह	: सं० डॉ०सी०डी० दलाल

तृतीय परिशिष्ट

-0-

हिन्दी साहित्येतिहास सन्दर्भ ग्रन्थ

(१) हिन्दी साहित्य का आदिकाल : डा० हजारीप्रसाद द्विवेदी
(२) हिन्दी साहित्य की भूमिका : डा० हजारीप्रसाद द्विवेदी
(३) हिन्दी साहित्य का अद्यतन इतिहास : डा० मोहन अवस्थी
(४) हिन्दी साहित्य का इतिहास : डा० लक्ष्मीसागर वार्ष्णेय
(५) हिन्दी साहित्य का उद्भव और विकास : डा० हजारीप्रसादद्विवेदी
(६) हिन्दी साहित्य का प्रारम्भिक युग : डा० राजकिशोर पाण्डेय
(७) हिन्दी साहित्य का उद्भव और विकास : डा० भगीरथ मिश्र तथा श्री रामबहोरी शुक्ल
(८) हिन्दी साहित्य का वृहत इतिहास(प्रथम भाग) : सं० डा० राजबली पाण्डेय
(९) हिन्दी साहित्य का सुबोध इतिहास : बाबू गुलाबराय
(१०) हिन्दी साहित्य का संक्षिप्त इतिहास : आचार्य नन्ददुलारे बाजपेयी
(११) आदिकालीन हिन्दी साहित्य : डा० शम्भुनाथ पाण्डेय
(१२) हिन्दी साहित्य का नया इतिहास : डा० रामखेलावन पाण्डेय
(१३) हिन्दी काव्य-धारा : महापण्डित राहुल सांकृत्यायन
(१४) हिन्दी साहित्य : डा० श्यामसुन्दरदास
(१५) हिन्दी साहित्य का अतीत : पं० विश्वनाथ प्रसाद मिश्र
(१६) हिन्दवी साहित्य का इतिहास : गार्सा दातासी,अनु०डा० लक्ष्मीसागर-वार्ष्णेय
हिन्दी साहित्य की प्रवृत्तियां : डा० जयकिशन प्रसाद

(१८) हिन्दी नाटक उद्भव और विकास : डा० दशरथ ओझा

(१९) हिन्दी की काव्य शैलियों का विकास : डा० हरदेव बाहरी

(२०) हिन्दी साहित्य का वैज्ञानिक इतिहास : डा० गणपतिचन्द्र गुप्त

(२१) हिन्दी साहित्य का आलोचनात्मक इतिहास : डा० रामकुमार वर्मा

(२२) सिद्ध साहित्य : डा० धर्मवीर भारती

(२३) भारतीय साहित्य की रूपरेखा : डा० भोलाशंकर व्यास

(२४) राजस्थानी साहित्य का इतिहास : डा० पुरुषोत्तमलाल मेनारिया

(२५) हिन्दी वीर काव्य : श्री टीकम सिंह तोमर

(२६) भाषा साहित्य और संस्कृति : डा० रामविलास शर्मा

(२७) राजस्थानी साहित्य की गौरवपूर्ण परम्परा : श्री अगरचन्द नाहटा

(२८) हिन्दी साहित्य-भाग१, : प्रधान सं०डा०धीरेन्द्र वर्मा

(२९) हिन्दी साहित्य भाग-२ : ,, ,,

(३०) हिन्दी साहित्य कोश,भाग१ : ,, ,,

(३१) हिन्दी साहित्य कोश,भाग-२ : ,, ,,

(३२) साहित्य का वैज्ञानिक विवेचन : डा० गणपतिचन्द्र गुप्त

-0-

चतुर्थ परिशिष्ट

-0-

उपजीव्य सांस्कृतिक आधार - ग्रन्थ

(१) ऋग्वेद

(२) यजुर्वेद

(३) रामायण

(४) महाभारत

(५) तैत्तिरीय उपनिषद्

(६) कठोपनिषद्

(७) छान्दोग्य उपनिषद्

(८) बृहदारण्यक उपनिषद्

(९) याज्ञवल्क्य स्मृति

(१०) मनुस्मृति

(११) वाजसनेयी संहिता

(१२) हरिवंश पुराण

(१३) विष्णु पुराण

(१४) वायु पुराण

(१५) शिवपुराण

(१६) मत्स्य पुराण

(१७) श्रीमद्भागवत

(१८) आपस्तम्बधर्मसूत्र

(१६) वैशेषिक सूत्र

(२०) गौतम धर्मसूत्र

(२१) पूर्व मीमांसा सूत्र

(२२) कामसूत्र

(२३) शतपथ ब्राह्मण

(२४) ऐतरेय ब्राह्मण

(२५) शुक्र नीति सार

(२६) बुद्ध चरित

(२७) पंचतंत्र

(२८) अर्थशास्त्र

(२६) दीघनिकाय

(३०) अंगुत्तर निकाय

(३१) सुत्त निपात

(३२) महावग्ग

-0-

पंचम परिशिष्ट

-o-

पत्र-पत्रिका-- पाण्डुलिपियां एवं अन्य सहायक ग्रन्थ

(१) भारतीय विद्या, भाग२, अंक१, सं० १९९७ (भारतेश्वरबाहुबलि रास)

(२) राजस्थान भारती, भाग३, अंक ४ (चन्दनबाला रास)

(३) राजस्थानी, भाग३, अंक २ (आबुरास)

(४) हिन्दी अनुशीलन, वर्ष७, अंक ३, पृ०४० (स्थूलिभद्ररास)

(५) हिन्दी अनुशीलन, वर्ष६, अंक १-४, पृ०९६-१०३ (मयणरेहा रास)

(६) परम्परा, भाग १२ (शान्तिनाथ रास तथा श्री अगरचंद नाहटा का लेख)

(७) नागरी प्रचारिणी पत्रिका, वर्ष४५, अंक२, संवत् १९९७, पृ०१६३-१७१

पाण्डुलिपियां

(८) गौतमस्वामी श्री रीरासु (दो पाण्डुलिपियां), पाण्डुलिपि विभाग, हिन्दी साहित्य सम्मेलन, प्रयाग ।

(९) वृद्ध गौतम रास (दो पाण्डुलिपियां) उपरिवत्

(१०) गौतम रास(६ पाण्डुलिपियां) , उपरिवत्

अन्य सहायक ग्रन्थ

(११) हिन्दी के स्वीकृत शोध-प्रबन्ध : डॉ० उदयभानु सिंह

(१२) साहित्य का विश्लेषण : डॉ० वासुदेवनन्दनप्रसाद

(१३) साहित्य का मनोवैज्ञानिक अध्ययन : डॉ० देवराज उपाध्याय

(१४) काव्य-विवेचन : डॉ० विपिन विहारी त्रिवेदी

(१५) नाट्य दर्पण : आचार्य भरत

(१६) भाव प्रकाश : आचार्य शारदातनय

(१७) काव्यालंकार : आचार्य भामह

(१८) काव्यादर्श : आचार्य दण्डी

(१९) ध्वन्यालोक : आनन्दवर्धनाचार्य

(२०) काव्यमीमांसा : आचार्य राजशेखर

(२१) काव्यालंकार : आचार्य रुद्रट

(२२) साहित्य दर्पण : आचार्य विश्वनाथ

(२३) काव्यानुशासन : आचार्य हेमचन्द्र

(२४) शब्द कल्पद्रुम, चतुर्थ भाग

(२५) वाचस्पत्यम् बृहद् संस्कृताभिधानम्, षष्ठो भाग:

-०-

षष्ठ परिशिष्ट

-o-

आदिकालीन हिन्दी रासो साहित्य-भंडार तथा पुरातत्व संस्थान

१. बृहत् ज्ञान भण्डार, बीकानेर ।
२. बड़ा उपाश्रय भण्डार, बीकानेर ।
३. क्षमा कल्याण भण्डार, बीकानेर ।
४. अभय जैन ग्रन्थालय, बीकानेर ।
५. अमर साहित्य भण्डार, जयपुर ।
६. जैन साहित्य शोध संस्थान, जयपुर ।
७. ओरियण्टल इन्स्टीट्यूट, बड़ौदा ।
८. जैन ज्ञान मन्दिर, बड़ौदा ।
९. सेण्ट्रल लाइब्रेरी, बड़ौदा ।
१०. गायकवाड़ ओरियण्टल सीरिज, बड़ौदा ।
११. उज्जैन भण्डार, उज्जैन ।
१२. जयपुर दीवान मन्दिर, जयपुर ।
१३. विवेक विजय भण्डार, उदयपुर ।
१४. जिनानन्द पुस्तकालय, सूरत ।
१५. जैन भण्डार, बाराबंकी ।
१६. जैन सरस्वती भवन, दिल्ली ।
१७. जैसलमेर बड़ा भण्डार, जैसलमेर ।
१८. तपागच्छ उपाश्रय भण्डार, जैसलमेर ।
१९. पंचायती भण्डार, जैसलमेर ।
२०. बड़ा पंचायती भण्डार, जैसलमेर ।

२१. डोसाभाई अभयचन्द्र भण्डार, भावनगर ।

२२. पंचायती मन्दिर, भरतपुर ।

२३. पटना भण्डार, पटना ।

२४. संघ भण्डार, पटना ।

२५. प्रिंस ऑफ वेल्स म्यूजियम, बम्बई ।

२६. मोहनलाल दलीचन्द देसाई संग्रह, बम्बई ।

२७. मानकचन्द दिगम्बर ग्रन्थमाला, बम्बई ।

२८. भण्डारकर इन्स्टीट्यूट, पूना ।

२९. मुनिविजय सागर संग्रह, कोटा ।

३०. विजय धर्मसूरि भण्डार, पटना ।

३१. राजस्थान पुरातत्व मन्दिर, जयपुर ।

३२. शान्तिभण्डार, खम्भात ।

३३. नेशनल लाइब्रेरी, कलकत्ता ।

३४. श्री महावीर जैन विद्यालय,बम्बई ।

३५. जैन मन्दिर, राजा बाजार, लखनऊ ।

३६. गुजरात विद्यासभा, अहमदाबाद ।

३७. सिंघी जैन ज्ञानपीठ, विश्वभारती ,शांतिनिकेतन ।

३८. पुनर्वसु, श्रीकृष्णापुरम स्ट्रीट, मद्रास ।

३९. बड़ा दरबार लाइब्रेरी, काठमाण्डू, नेपाल ।

४०. ब्रिटिश म्यूजियम, लन्दन ।

४१. रायल एशियाटिक सोसाइटी, लन्दन ।

-0-